इस्लाम धर्म

की

दर्शन-भूमि

लेखक :—

हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद

संस्थापक अहमदिया सम्प्रदाय

क़ादियान

…क :—

…वतो तब्लीग़

(अध्यक्ष प्रचार विभाग)

सदर अन्जुमन अहमदिया

क़ादियान (पंजाब)

इस्लाम धर्म

की

दर्शन-भूमि

लेखक :—

हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद

संस्थापक अहमदिया सम्प्रदाय

क़ादियान

प्रकाशक :—

नाज़िर दावतो तब्लीग़

(अध्यक्ष प्रचार विभाग)

सदर अञ्जुमन अहमदिया

क़ादियान (पंजाब)
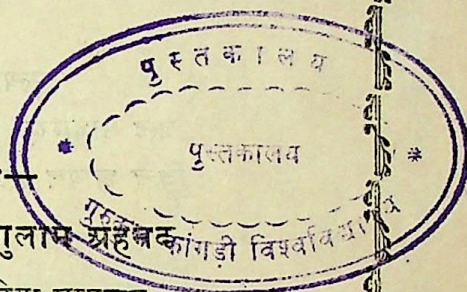
द्वितीय सन्सकरण सन् १९६४ — ५०००

मूल्यः—

जिल्द साधारण — ३.००

जिल्द आयल क्लाथ — ३.५०

मुद्रक : श्री रोशन लाल सेठ कीपर आफ़ जयहिन्द प्रिंटिंग प्रैस,
नेहरू गार्डन रोड जालन्धर नगर

निष्कलङ्क अवतार हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब
मसीह माऊद व मेहदी मसऊद

विषय सूचि

प्रश्न संख्या	विषय	पृष्ठ

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

आमुख

दिसम्बर सन् १८९६ ई० में पंजाब प्रांत की राजधानी लाहौर में सुप्रसिद्ध धार्मिक नेता स्वामी शोगनचन्द्र जी की प्रेरणा से एक "सर्व-धर्म-सम्मेलन" हुआ, जिस में निम्न लिखित पांच प्रश्नों पर विभिन्न धर्मों के विद्वानों को अपने अपने विचार प्रकट करने के लिए आमन्त्रित किया गया।

१—मानव की शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक अवस्थाएं।

२—मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की अवस्था।

२—इस संसार में मानव जीवन का लक्ष्य क्या है और वह लक्ष्य किस प्रकार प्राप्त होगा?

४—इस लोक और परलोक में हमारे कर्मों का क्या प्रभाव है?

५—ज्ञान और ब्रह्म-विद्या के क्या साधन हैं?

इस सम्मेलन का प्रबन्ध एक कमेटी को सौंपा गया जिस के प्रेज़ीडैंट श्री दुर्गादास जी तथा सेक्रेट्री लाला धनपत राय एडवोकेट हाईकोर्ट लाहौर नियुक्त हुए।

सम्मेलन की बैठक में विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों ने उक्त पांचों प्रश्नों के उत्तर अपने-अपने धार्मिक दृष्टिकोण से उपस्थित किए। इस्लाम धर्म की ओर से अहमदिया सम्प्रदाय के संस्थापक हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम

अहमद साहिब क़ादियानी ने भी इन प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में वहां भिजवाए जो उर्दू भाषा में "इस्लामी उसूल की फ़िलासफ़ी" के नाम से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

सम्मेलन में इस निबन्ध के पढ़े जाने से पूर्व आपने एक विज्ञापन "सच्चाई के तालिबों के लिए एक अज़ीमुश्शान खुश-खबरी" अर्थात् सत्य धर्म के जिज्ञासुओं के लिए एक शुभ-सूचना के शीर्षक से २१ दिसम्बर सन् १८९६ ई० को प्रकाशित किया जिसमें आप ने कहा—

"लाहौर टाऊन हाल में २६,२७ तथा २८ दिसम्बर सन् १८९६ ई० को एक सर्व-धर्म-सम्मेलन होगा, जिसमें पवित्र क़ुरान की सर्वतोमुखापेक्षी- सर्वरूप-सम्पूर्ण व्याख्या एवं-सुनीति-सम्पन्न चमत्कारिता पर आधारित प्रार्थी का भी एक लेख पढ़ा जाएगा। यह वह निबन्ध है जो मानवीय शक्ति स्तर से महान् तथा परमेश्वर के अद्भुत चमत्कारों का एक प्रतीक है क्योंकि यह लेख उसी की विशेष सहायता (उसकी विशेष इच्छा और प्रेरणा) से लिखा गया है। इस में पवित्र क़ुरान की उन गूढ़ तात्विकताओं एवं तथ्यानुदर्शिनी मार्मिकताओं का उल्लेख किया गया है, जिस से मध्याह्नादित्य के समान यह प्रमाणित हो जाएगा कि यह ग्रन्थ निश्चय ही ईश्वर प्रणीत तथा उसकी अमोघ वाणी एवं उसी जगन्यता सृष्टिकर्त्ता का सच्छाच है। जो व्यक्ति पाँचों प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए

इस निबन्ध को आद्योपान्त श्रवण करेगा, मुझे पूर्ण विश्वास है कि उस व्यक्ति के मानस-पटल में एक नवीन आत्मीयता का प्रादुर्भाव तथा एक अलौकिक ज्योत्स्ना का स्रोत फूट पड़ेगा............मुझे सर्वान्तिर्यामी परमेश्वर ने अपनी पवित्र ईशवाणी द्वारा यह भी बताया है कि यह वह निबन्ध है जो सब पर विजयी होगा।"

अतः यह गूढ़ तत्वों और गम्भीर विचारों तथा सूक्ष्म अर्थों से परिपूर्ण निबन्ध दिसम्बर सन् १८९६ ई० को जब सभा में पढ़ा गया तो श्रोताओं में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और उन्हें उस से पर्याप्त ज्ञान और आध्यात्मिक शान्ति मिली। चूँकि यह निबन्ध नियत समय में समाप्त न हो सका इस लिए सभा के प्रबन्धकों ने श्रोताओं की रुचि, उत्सुकता और उनकी बलवती इच्छा के उपलक्ष केवलमात्र इस निबन्ध के लिए सम्मेलन का एक और दिन बढ़ा दिया, इस प्रकार यह निबन्ध दिसम्बर को समाप्त हुआ। परमेश्वर की ओर से की हुई भविष्य वाणी के अनुसार यह लेख अन्य सभी लेखों पर विजयी रहा तथा इसमें दिए गए आकाट्य तर्कों और आध्यात्मिक तत्वों की समस्त देश में धूम मच गई। देश के लगभग बीस सुविख्यात पत्र-पत्रिकाओं ने इस पर प्रशंसनीय टीकाएँ लिख कर इसकी सराहना की। श्लाघनीय टीकाएँ लिखने वाले कुछेक पत्र पत्रिकाओं के नाम यह हैं—(१) सिविल एण्ड म्लेट्री गज़ट लाहौर (२) पैसा अख़बार (३) चौदहवीं सदी (४) सिराजुल अख़बार (५) मशीरे हिन्द (६) सादेकुल अख़बार (७) मुख़बरे दकन (८) पंजाब ओब्ज़र्वर (९) वज़ीरे हिन्द इत्यादि।

इन में से कुछ पत्र-पत्रिकाओं की सम्मतियाँ नीचे दी जाती हैं।

"इस पुस्तक के विचार गम्भीर, उज्जवल और ठोस हैं और पढ़ने वाले के मुख से स्वाभावतया उसके लिए श्लाघा के शब्द निकलते हैं।"

(इण्डियन रेव्यू)

"यह पुस्तक मानव समाज के लिए एक शुभ सन्देश है।"

(स्प्रीचुअल जरनल बोस्टन)

"यह पुस्तक (हज़रत) मुहम्मद (साहिब) के धर्म अर्थात् इस्लाम का सर्वश्रेष्ठ और मनमोहक चित्र है।"

(थ्यूसोफ़िकल बुक नोट्स)

यह ब्रह्म-ज्ञान का स्रोत है।"

(बी० ओ० कदा जज़ीर कल्पानी)

"निश्चय ही वह व्यक्ति जो इस ढंग से यूरोप व अमरीका को सम्बोधित करता है, कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता।"

(ब्रिस्टल टाइम्ज़ एण्ड मिरर्)

"इन व्याख्यानों में सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ट व्याख्यान जो सभा के प्राण था, मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब क़ादियानी का व्याख्यान था जिसको सुविख्यात वक्ता मौलवी अब्दुल करीम साहिब सियालकोटी ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से पढ़ कर सुनाया.......अपने समस्त जीवन में हमारे कानों ने ऐसा सुन्दर और प्रभावोत्पादक व्याख्यान नहीं सुना। विभिन्न धर्मानुयाइयों में जिन लोगों ने व्याख्यान दिये, सच तो यह है कि सम्मेलन के निश्चित प्रश्नों के उत्तर भी नहीं थे।"

(चौदहवीं सदी)

"इस सम्मेलन में श्रोताओं की हार्दिक उत्सुकता एव विशेष रुचि मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब क़ादियानी के व्याख्यान के साथ थी जो इस्लाम का समर्थन करने और रक्षा करने में निपुण हैं।"

(सिविल एण्ड म्लेट्री गज़ट और ओब्ज़र्वर)

इस समय तक इस अनुपम निबन्ध का अनुवाद निम्नलिखित स्वदेशीय एवं विदेशीय भाषाओं में हो चुका है जो इसकी लोकप्रियता और आध्यात्मिक प्रभावोत्पादकता का ज्वलन्त प्रमाण है :—

आंगल, अरबी, फ़ारसी, जर्मनी, इण्डोनेशियन, अस्पानवी, ब्रह्मी, चीनी, फ्रैंच, स्वाहेली, कीन्यारी, हिन्दी, पञ्जाबी, गुजराती इत्यादि।

आगे के पृष्ठों में ब्रह्मज्ञान से ओत प्रोत इस निबन्ध का हिन्दी अनुवाद जिसको "इस्लाम धर्म की दर्शन भूमि" नया शीर्षक दिया गया है, पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। यह अनुवाद साहित्यालंकार सैयद शहामत अली साहित्यरत्न प्रभाकर, अध्यापक तालीमुल इस्लाम स्कूल क़ादियान ने किया है। यद्यपि आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व सन् १९३३ ई० में इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद ANJUMAN-E-TARAQQI ISLAM Secondrabad (Deccon) ने भी प्रकाशित किया था। किन्तु वह हिन्दी भाषा का शैशव काल था और अब वह बच्चा एक बलिष्ठ युवक बन चुका है। हिंदी अब राष्ट्रभाषा की पदवी प्राप्त कर चुकी है अतः राष्ट्रभाषा होने के नाते इसका प्रचार और प्रसार देश के सभी क्षेत्रों में दिनों दिन बढ़ता

जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि ऐसे युग में यह अनुवाद उत्तरप्रदेश और बिहार प्रांत के हिंदी भाषियों में विशेषकर तथा देश के अन्य विद्वानों में साधारणतया इस्लाम धर्म के सिद्धांत और उसकी शिक्षा के प्रचार एवं उनमें ब्रह्मज्ञान की ज्योति जगाने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर से विनती है कि वह ऐसा ही करे। तथास्तु।

पाठक महोदयों से निवेदन है कि इस पुस्तक का स्वयं अध्ययन करें तथा अपने मित्रों को भी इस के स्वाध्याय की प्रेरणा दें ताकि पवित्र क़ुरान की शिक्षाओं और उसके सिद्धान्तों के विषय में हमारे प्रिय देशवासियों को शुद्ध और वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सके।

इस पुस्तक के प्रकाशन के सम्पूर्ण व्यय सेठ महमूद अहमद साहिब, सेठ अनवार अहमद साहिब तथा सेठ मुनव्वर अहमद साहिब सुपुत्र स्वर्गीय सेठ मुहम्मद सिद्दीक़ साहिब कलकत्ता निवासी ने वहन किए हैं। परमेश्वर उनकी इस धार्मिक सेवा को स्वीकार करते हुए उन्हें इसका सुन्दर और मधुर फल प्रदान करे। एवमस्तु।

भवदीय :

क़ादियान। **मिर्ज़ा वसीम अहमद**

दिनाङ्क १९ जून सन् १९६४ ई०

नाज़िर दावतो तब्लीग़
(अध्यक्ष प्रचार विभाग)
अहमदिया सम्प्रदाय

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

सत्य धर्म के जिज्ञासुओं के लिए

एक

शुभ-सूचना

** लाहौर टाऊन-हाल में २६, २७ तथा २८ दिसम्बर सन् १८९६ ई० को एक सर्व-धर्म-सम्मेलन होगा जिसमें पवित्र-क़ुरान की सर्वतोमुखापेक्षी-सर्वरूप-सम्पूर्ण व्याख्या एवं सुनीति सम्पन्न-चमत्कारिता पर आधारित प्रार्थी का भी एक लेख पढ़ा जायगा। यह वह निबन्ध है जो मानवीय-शक्ति-स्तर से महान् तथा परमेश्वर के अद्भुत चमत्कारों का एक प्रतीक है; क्योंकि यह लेख उसी की विशेष सहायता एवं उसकी*

---

* स्वामी शोगन चन्द्र जी ने अपने विज्ञापन में मुसलमानों, ईसाइयों तथा आर्यसमाजियों को शपथ दी थी कि उनके सुविख्यात विद्वान् इस सम्मेलन में अपने अपने धर्म की विशेषताएं अवश्य वर्णन करें। अतः हम स्वामी जी को सूचित करते हैं कि उस अनुपेक्षणीय शपथ की प्रतिष्ठा के लिए तथा आपकी इच्छा को पूरा करने के लिए हम उद्यत हो गए हैं और परमात्मा ने चाहा तो हमारा निबन्ध आपके महोत्सव में पढ़ा जाएगा। इस्लाम वह धर्म है—जिसके मध्य में सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अभिन्न रूप से नाम आने से—जो सच्चे मुसलमान को पूर्ण रूप से आज्ञाकारी की ओर पथ-प्रदर्शन करता है। किन्तु अब हम देखेंगे कि आप के भाई आर्यसमाजियों और पादरियों को अपने परमेश्वर या 'यस्सू मसीह' की प्रतिष्ठा का कहां तक पास है और वे ऐसे पवित्र सर्वशक्तिमान महान् परमेश्वर के नाम पर उपस्थित होने के लिए प्रस्तुत हैं या नहीं। लेखक।

विशेष प्रेरणा और इच्छा से लिखा गया है। इस में पवित्र-क़ुरान की उन गूढ़ तात्विकताओं एवं तथ्यानुदर्शिनी मार्मिकताओं का उल्लेख किया गया है जिन से मध्याह्नादित्य के समान यह प्रमाणित हो जायगा कि यह ग्रंथ निश्चय ही ईश्वर-प्रणीत तथा उसकी वाणी एवं उसी जगन्यता-सृष्टिकर्त्ता का सच्छात्र है। जो व्यक्ति पाँचों प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए इस निबन्ध को आद्योपान्त श्रवण करेगा, मुझे पूर्ण विश्वास है है कि उस व्यक्ति के मानस-पटल में एक नवीव आत्मीयता का प्रादुर्भाव तथा एक अलौकिक ज्योत्स्ना का स्रोत फूट पड़ेगा और परमात्मा की अमोघ वाणी की एक बहुमुखापेक्षी-सम्पूर्ण-व्याख्या उसके हाथ लगेगी। मेरा यह व्याख्यान मानवीय ऊलजलूल विवरणों और निरर्थकताओं से पवित्र तथा अतिशयोक्ति-पूर्ण असंगत प्रतीपों से सर्वथा अछूता शुद्ध और पावन है।

मुझे इस समय एक मात्र मानवीय सहानुभूति ने इस विज्ञापन के लिखने के लिए प्रेरित किया है ताकि मानव समाज पवित्र-क़ुरान में निहित 'सुन्दरम्' तत्व के दर्शन कर सके तथा इस बात का भी निरीक्षण करे कि हमारे विरोधियों की कितनी बड़ी भूल है कि वे अन्धकार से तो प्रेम और प्रकाश से घृणा करते हैं। मुझे सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ने ईश-वाणी द्वारा यह भी बताया है कि यह वह निबन्ध है जो सब पर विजयी होगा। इसमें ऋत एवं तात्विकता और सूक्ष्मता की वह अलौकिक उद्दीप्त ज्योत्स्ना है जिसके द्वारा अन्य वे सभी धर्मानुयायी जो यदि वहाँ श्रवणार्थ पण्डाल में वधारे हों, और इसको आद्योपान्त श्रवण करें, लज्जा-वनत हो जायेंगे तथा अपने धर्म ग्रन्थों से ऐसे चमत्कार दिखलाने में

सर्वथा असमर्थ रहेंगे। चाहे वे सज्जन ईसाई धर्म से सम्बन्ध रखने वाले हों अथवा आर्यसमाजी, सनातन धर्मानुयायी हों अथवा कोई अन्य धर्मानुयायी; क्योंकि परमेश्वर की यही शुभेच्छा है कि इस दिन उसके पवित्रतम-ग्रन्थ-क़ुरानशरीफ़ की महानता स्पष्ट हो जाए। मैंने कश्फ़* की अवस्था में देखा कि मेरे भवन पर दैवी सत्ता की ओर से एक हाथ मारा गया तथा उस कर-स्पर्श मात्र से मेरे भवन में से एक ज्योतिस्तम्भ उदित हुआ जो चतुर्दिक फैल गया। मेरे हाथों पर भी उसकी प्रकाश रश्मियाँ पड़ीं। तब एक व्यक्ति जो मेरे पास खड़ा था उसने उच्च स्वर से इन शब्दों का जयघोष किया कि :—

اَللّٰهُ اَكْبَرُ خَرِبَتْ خَيْبَرُ

अल्लाहो अकबरो ख़रेबत ख़ैबरो।

इस कश्फ़ का भावार्थ यह है कि वह भवन मेरा हृदय-पटल है, तथा जो ज्योतिस्स्रोत है वह ज्योति पवित्र क़ुरान के गूढ़ तत्व हैं एवं ख़ैबर का तात्पर्य वे 'समस्त विकृत धर्म' हैं जिन में बहुदेववाद और द्वैतवाद तथा ईश्वरेत पूजापाठ एवं अनृत का समिश्रण है तथा उनमें मनुष्य को ईश्वर का स्थान दे दिया गया है अथवा परमेश्वर को उसकी यथोचित शक्तियों और विशेषताओं से पतित कर दिया गया है।

अस्तु, ईश्वरीय वाणी द्वारा मुझे यह भी बता दिया गया है कि इस लेख के बृहत् प्रसार व प्रचार के पश्चात् अनृत और असद्धर्मों की असत्यता और उनका झूठ नग्न होकर सामने आ जायगा तथा पवित्र-

*कश्फ़=अर्द्ध जागृतावस्था में परमेश्वर की चमत्कारिता के दर्शन अथवा उसका वार्ता प्राप्त करना।

.क़ुरान की सत्यता एवं प्रामाणिकता का प्रसार भूमण्डल पर दिन प्रति-दिन बढ़ता जायगा यहां तक कि समस्त मानव समाज उसके सद् प्रभाव की छत्रछाया में आकर सन्तोष का श्वास लेगा।

अन्ततोगत्वा 'कश्फ़' की अवस्था के पश्चात् मुझे ईशवाणी द्वारा परमात्मा ने सूचित किया कि—

إِنَّ اللّٰهَ مَعَكَ إِنَّ اللّٰهَ يَقُوْمُ أَيْنَمَا قُمْتَ۔

इन्नल्लाहा मअका इन्नल्लाहा यक़ुमो ऐनमा .क़ुम्तो

अर्थात् 'परमेश्वर तेरे साथ है, परमेश्वर वहीं खड़ा होता है जहां तू खड़ा होता है।' ये शब्द ईश्वरीय सहायता के सूचक हैं और उसी की सहायता की ओर संकेत करते हैं।

अब अतिरिक्त कुछ न लिख कर प्रत्येक को यह सूचना दी जाती है कि इन चमत्कारयुक्त तथ्यों को श्रवण करने के लिये यदि कुछ हानि उठा करके भी आना पड़े तो भी सम्मेलन की नियत तिथि पर अवश्य लाहौर पधारें क्योंकि इस लेख से आगन्तुकों को वह आशातीत लाभ पहुँचेगा जिसका वे अनुमान नहीं लगा सकते।

परमात्मा आपके सहाय हो और सन्मार्ग की ओर आप का पथ-प्रदर्शन करे। तथास्तु।

भवदीय

.क़ादियान .ग़ुलाम अहमद

तिथि २१ दिसंबर सन् १८९६ ई०

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

इस्लाम

मान्यता और तर्क ईश्वरीय ग्रन्थ पर आधारित होना चाहिए।

आज इस परमशुभ सर्वधर्म सम्मेलन में—जिस का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक आमन्त्रित सज्जन निश्चित घोषित प्रश्नों के अनुसार अपने अपने धर्म की विशेषतायें वर्णन करें—मैं इस्लाम धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालूंगा।

अपने वास्तविक विषय को प्रारम्भ करने से पूर्व यह बता देना अनिवार्य समझता हूँ कि मैं ने इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि जो कुछ उपस्थित करूं परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरानशरीफ़ से उपस्थित करूं क्योंकि मेरे निकट यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति जो किसी धर्मग्रन्थ का अनुयायी हो और वह उस धर्मग्रन्थ को ईश्वरीय ग्रन्थ समझता हो, वह उक्त प्रश्नों से सम्बन्धित प्रत्येक विषय का समाधान उसी धर्मग्रन्थ के उदाहरणों और उद्धरणों द्वारा करे तथा अपने व्याख्यान को इतना न फैलाए कि जैसे वह एक नवीन धर्मग्रन्थ की रचना कर रहा है।

अस्तु, आज हमें पवित्र क़ुरान के महात्मय और उसकी विशेषताओं को सिद्ध करना है तथा उसके चमत्कारों को भी प्रदर्शित करना है। यह आवश्यक है कि हम किसी बात के उपस्थित करने में उसके अपने तथ्य से इधर उधर न जाएं तथा उसके संकेत या उस की अपनी व्याख्या के अनुसार और उसी के सूत्रों, मन्त्रों, उपमन्त्रों, आयतों और उद्धरणों को प्रमाण रूप में उपस्थित करते हुए प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डालें ताकि श्रोताओं को विभिन्न विचारों की तुलना करने में सुगमता रहे।

चूंकि प्रत्येक सज्जन जो अपने धर्मग्रन्थ के अनुयायी हैं अपने अपने उस ईश्वरीय धर्मग्रन्थ के कथन की सीमा के अन्दर रहते हुए प्रमाण के लिए उसी के उद्धरणों को उपस्थित करेंगे। अतएव हमने यहाँ पर हदीसों* के कथन को स्थान नहीं दिया, चाहे समस्त शुद्ध हदीसें पवित्र क़ुरान से ही ली गई हैं तथापि पवित्र क़ुरान जो हर प्रकार से सम्पूर्ण और समस्त ग्रन्थों में शिरोमणि और अनुपमेय ग्रन्थ है, आज उसी पवित्र ग्रन्थ की महानता उद्दीप्त होने का शुभ दिन है और उस सर्वान्तर्यामी परमेश्वर से हमारा सानुरोध निवेदन है कि वह इस कार्य में हमारा सहायक हो। एवमस्तु!

*हदीस = हज़रत मुहम्मद साहिब के पवित्र कथन अथवा उनके क्रिया कलाप जो लिखित रूप में सुरक्षित हैं हदीस कहलाते हैं। अनुवादक

प्रश्न नं० १

मानव की शारीरिक, नैतिक एवं आत्मिक अवस्थाएं—

मान्यवर श्रोताओं को इस बात का ध्यान रहे कि इस विषय के प्रारम्भिक पृष्ठों में प्राक्कथन के रूप में कुछ ऐसे विचारों का उल्लेख हुआ है जो बाह्यरूप से कुछ अप्रासंगिक से दिखाई देते हैं किन्तु वास्तविक उत्तर समझने के लिये पहले उनका समझना अत्यावश्यक है। अतएव अपने व्याख्यान को यथेष्ट सरल और सुगम बनाने के लिए इष्ट विषय को उपस्थित करने से पूर्व इन विचारों का उल्लेख किया गया है ताकि वास्तविक विषय समझने में कोई कठिनाई उपस्थित न हो।

अस्तु, प्रथम प्रश्न मानव की शारीरिक, नैतिक एवं आत्मिक अवस्थाओं के विषय में है। इस सम्बन्ध में ज्ञात होना चाहिए कि परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरान शरीफ़ ने इन तीन अवस्थाओं का इस प्रकार विभाजन किया है कि इन तीनों के लिए पृथक् २ तीन स्रोत या तीन उद्गम स्थान निश्चित किए हैं जिन से इन तीन विभिन्न अवस्थाओं का स्फुरण होता है।

प्रथम अवस्था तामसिक वृत्ति—

प्रथम स्रोत जो समस्त शारीरिक और प्राकृतिक अवस्थाओं

का मूल और इकाई है। उसका नाम पवित्र क़ुरान ने तामसिक वृत्ति रखा है। जैसा कि पवित्र क़ुरान का कथन है—

إِنَّ النَّفْسَ لَأَمَّارَةٌ بِالسُّوءِ

इन्ननफ़्सा ल अम्मारतुन बिस्सूए।

अर्थात् तामसिक वृत्ति का यह स्वभाव है कि वह मनुष्य को बुराई की ओर जो उसके कौशल के विरुद्ध और उसकी नैतिक अवस्थाओं के विपरीत है झुकाती है और अनुचित मार्ग पर चलाना चाहती है। सारांश यह कि पतन और गिरावट की ओर जाना मनुष्य की एक ऐसी अवस्था है जो उसकी नैतिक और चारित्रिक अवस्था से पूर्व स्वाभावतया उस पर छायी रहती है। यह अवस्था उस समय तक स्वाभाविक और प्राकृतिक कहलाती है जब तक मनुष्य बुद्धि और आत्मबल की छत्रछाया में नहीं चलता अपितु पशुओं के समान खाने पीने, शयन करने, जागने, क्रुद्ध होने, आवेग प्रदर्शित करने इत्यादि विषयों में प्राकृतिक उद्वेगों का अनुयायी रहता है परन्तु जब मानव बुद्धि और आत्मिक बल के परामर्श से प्रकृति-जन्य अवस्थाओं में नियन्त्रण लाकर मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करने लग जाता है। उस समय उन तीनों दशाओं का नाम प्राकृतिक अवस्थाएं नहीं रहता अपितु उस समय उन्हें चारित्रिक अवस्था की संज्ञा दी जाती है। अग्रिम पृष्ठों में उदाहरण के रूप में इसका कुछ न कुछ ब्यौरा अवश्य आएगा।

द्वितीय अवस्था राजसिक वृत्ति—

चारित्रिक अवस्थाओं के दूसरे स्रोत का नाम पवित्र .कुरान में

राजसिक वृत्ति है जैसा कि पवित्र .कुरान में परमेश्वर का कथन है कि :

وَلَآ اُقْسِمُ بِالنَّفْسِ اللَّوَّامَةِ

वला उक़्सिमो बिन्नफ़्सिल्लव्वामते ।

अर्थात् (परमेश्वर का कथन है कि) मैं उस वृत्ति की शपथ खाता हूँ जो असत्कर्मों और कुकर्मों की प्रत्येक दशा में अपने स्वयं को धिक्कारती है। यह मनकी दूसरी अवस्था अर्थात् राजसिक वृत्ति मानवीय अवस्थाओं का दूसरा स्रोत है जिस से चारित्रिक अवस्थाओं का विकास होता है और इस स्तर पर पहुँच कर मनुष्य अन्य पाशविक वृत्तियों से मुक्ति पाता है।

इस स्थान पर राजसिक वृत्ति की शपथ खाना उसको मान, प्रतिष्ठा और महानता प्रदान करने के लिए है।

तात्पर्य यह है कि उसकी आत्मा तामसिक गुणों से उन्नति करके रजोगुण-युक्त अपेक्षाकृत उच्चासन को प्राप्त करने के कारण पूर्ण परब्रह्म परमेश्वर के दरबार में सम्मान प्राप्त करने के योग्य हो गई। मन की इस अवस्था का नाम राजसिक वृत्ति इस लिए रखा कि यह मनुष्य को कुमार्ग से रोकती और अपने स्वयं को धिक्कारती है और इस पर कदापि सहमत नहीं होती कि मनुष्य अपने प्राकृतिक छिछले स्वभावों में निरंकुश चले तथा पशुओं के समान जीवन यापन करे। अपितु उसे इस बात की उत्कण्ठा रहती है कि उस से महान् चरित्र एवं उच्चादर्श का प्रदर्शन हो तथा जीवन के क्षेत्रों में कोई भी अनुचित कार्य न होने पाये एवं प्राकृतिक उद्वेग तथा स्वाभाविक इच्छाएं बुद्धि के अंकुश के नीचे तथा उसी के परामर्श से प्रगट हों।

अस्तु, चूंकि वह वृत्ति अनैतिक चञ्चलता पर धिक्कारती है अतः मनकी उस वृत्ति का नाम राजसिक वृत्ति अर्थात् यथेष्ट धिक्कारने वाली वृत्ति रखा है। राजसिक वृत्ति को प्राकृतिक उद्वेग और संवेग रुचिकर नहीं, अथच अपने आप को धिक्कारती रहती है, किन्तु पुण्यों और सत्कर्मों को पूर्ण रूप से परिणत करने में असमर्थ रहती है और यदा कदा प्राकृतिक उद्वेग उस पर अपना आंतक जमा लेते हैं तब उसका पतन हो जाता है फलतः वह पथभ्रष्ट हो जाती है। सारांश यह कि उस समय वह एक ऐसे कोमल शिशु के समान होती है जो गिरना नहीं चाहता किन्तु अपनी दुर्बलता के कारण गिर पड़ता है। पुनः अपनी दुर्बलता पर प्रायश्चित करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मन की वह अवस्था है कि जब मन महान चरित्र को अपने भीतर एकत्र करता है और चञ्चलताओं तथा शरारतों से तंग आकर उनको तिलाञ्जलि देने का निर्णय करता है परन्तु पूर्ण रूप से उनपर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

तृतीय अवस्था सात्विक वृत्ति--

इसके पश्चात् एक तीसरा स्रोत है जिसको आध्यात्मिक अवस्थाओं का उद्गम स्थान कहना चाहिए उसका नाम पवित्र क़ुरान मजीद ने सात्विक वृत्ति रखा है। जैसा कि उसका कथन है :—

يَآاَيَّتُهَا النَّفْسُ الْمُطْمَئِنَّةُ ۝ ارْجِعِيْٓ

اِلٰى رَبِّكِ رَاضِيَةً مَّرْضِيَّةً ۝ فَادْخُلِيْ

فِيْ عِبَادِيْ وَادْخُلِيْ جَنَّتِيْ ۝

या अय्यतो हन् नफ़सुल् मुत्मइन्नातोजेंई एला रब्बे
के राज़ेयतम्म ज़ेंयः फ़द्ख़ोली एबादी वद्ख़ोली जन्नती।

अर्थात् हे पूर्ण शांतिमय और सन्तोष-युक्त आत्मा जो पूर्ण परब्रह्म से शान्ति और सन्तोष प्राप्त कर चुकी है अपने परमेश्वर की ओर वापस चली आ। तू उससे प्रसन्न तथा वह तुझ से प्रसन्न है। अतः तू मेरे भक्तों में शामिल हो जा और मेरी स्वर्गपुरी में प्रविष्ट हो जा। यह वह स्थिति हैं जिस में मन और आत्मा समस्त दुर्बलताओं से मुक्ति पाने के पश्चात् और आध्यात्मिक बल की पूर्ति के पश्चात् परमेश्वर से घनिष्ठ और अटूट सम्बन्ध स्थापित कर लेता है क्योंकि उसके बिना वह एक क्षण जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार जल का स्वभाव ऊपर से नीचे गिरने का है और अपनी अधिकता और निर्विघ्नता के कारण उसका प्रवाह अति तीव्र गति से होता है उसी प्रकार वह आत्मा भी क्षिप्र गति से परमेश्वर की ओर चली जाती है। पवित्र क़ुरान में परमेश्वर का उक्त संकेत इसी ओर है कि वह आत्मा जिसे अपने परमेश्वर की ओर से पूर्ण सन्तोष और शान्ति मिल गई उसी (अपने परमेश्वर) की ओर वापस चली आ। तात्पर्य यह कि वह आत्मा मृत्योपरान्त नहीं, अपितु इसी जीवन में एक महान परिवर्तन लाती है; और मृत्योपरान्त नहीं, अपितु इसी जीवन में उसे एक स्वर्ग की उपलब्धि होती है। जैसा कि पवित्र क़ुरान का यह कथन है कि अपने पालनहार परमेश्वर की ओर आ जा। ऐसा ही उस समय उसका परमेश्वर की ओर से लालन पालन होता है और परमेश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा उसका भोजन बन जाता है और उसी जीवनदाता स्रोत से जलपान करती है। फलतः उसे मृत्यु से मुक्ति मिल जाती है। जैसा कि एक अन्य स्थान पर परमेश्वर का कथन है कि :—

قَدْ أَفْلَحَ مَن زَكَّاهَا ۝ وَقَدْ خَابَ مَن دَسَّاهَا ۝

क़द् अफ़्लह मन ज़क्काहा व क़द् ख़ाबा मन दस्साहा।

अर्थात् जिसने पार्थिव उद्वेगों से और संवेगों से अपने मन और अपनी आत्मा को शुद्ध रखा, वह मुक्ति पा गया और वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा। परन्तु जिसने भौतिक और पार्थिव संवेगों के पंकिल गर्त में जो स्वाभाविक हैं, गिरा दिया वह जीवन से निराश होगया।

सारांश यह कि यह तीन अवस्थाएं हैं जिनको दूसरे शब्दों में स्वाभाविक, चारित्रिक और आत्मिक अवस्थाएं कह सकते हैं। चूँकि स्वाभाविक इच्छाएं अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर अति भयानक रूप धारण कर लेती हैं तथा चरित्र और आध्यात्मिकता का विनाश कर देती हैं। अतः परमेश्वर के पवित्र ग्रन्थ क़ुरान शरीफ़ में उनको तामसिक वृत्ति की अवस्थाओं से अभिहित किया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मानव की प्राकृतिक अवस्थाओं पर पवित्र क़ुरान का क्या प्रभाव है? और इस विषय में उसका क्या आदेश है? और क्रियात्मक रूप में किस सीमा तक उसको रखना चाहता है? इसका उत्तर यह है कि पवित्र क़ुरान के अनुसार मानव की प्राकृतिक अवस्थाओं का उसकी चरित्रगत और आध्यात्मिक अवस्थाओं से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, यहाँ तक कि मनुष्य केखाने पीने के ढंग भी मानव की चारित्रिक और आत्मिक अवस्थाओं पर प्रभाव डालते हैं और यदि इन प्राकृतिक अवस्थाओं से शास्त्रीय आदे-शानुसार अर्थात् पवित्र क़ुरान के नियमानुसार काम लिया जाए तो

जिस प्रकार नमक की खान में पड़ कर प्रत्येक वस्तु लवण ही बन जाती है उसी प्रकार ये सभी अवस्थाएं चरित्र का रूप धारण कर लेती हैं और आध्यात्मिकता पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इसी लिए पवित्र क़ुरान ने सर्व प्रकार की उपासनाओं और आन्तरिक शुद्धताओं के प्रयोजन और चित्त की एकाग्रता और शम के उद्देश्यों में शारीरिक पवित्रता, शिष्टता एवं शारीरिक सन्तुलन को महान् स्थान दिया है। विचार करने के पश्चात् यही फ़िलासफ़ी उपयुक्त मालूम होती है कि शारीरिक नियमों का मन और आत्मा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा कि हम देखते हैं कि हमारी स्वाभाविक क्रियाएं यद्यपि वाह्यरूप से शारीरिक हैं किन्तु हमारी आध्यात्मिक अवस्थाओं पर अवश्य ही उनका प्रभाव है। उदाहरणतया जब हमारे नेत्र रोना प्रारम्भ करें, चाहे वे कृत्रिम रूप से ही रोएँ, परन्तु तत्क्षण उन अश्रुओं की एक धारा हृदय पर जा कर गिरती है तब हृदय भी नेत्रों का अनुसरण करके करुणार्द्र हो जाता है। इसी प्रकार जब हम कृत्रिम भाव से हंसना प्रारम्भ करें तो हृदय में भी एक आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। यह भी देखा जाता है कि शारीरिक सज्दा (दण्डवत) भी आत्मा में नम्रता और विनय की अवस्था उत्पन्न कर देता है। इसके विपरीत हम यह भी देखते हैं कि जब हम गर्दन को ऊपर खींचकर और वक्ष को उभार कर चलें तो यह अवस्था हमारे मन में एक गर्व और अहंभाव उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार इन उदाहरणों से भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि शारीरिक गतिविधियों और उस की नाना अवस्थाओं से आत्मिक और मानसिक अवस्थाओं का प्रभावित होना असन्दिग्ध है।

ठीक इसी प्रकार नाना अनुभवों से यह स्पष्ट हो गया है कि भांति २ के भोजनों का भी बुद्धि, आत्मा और मन पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतया तनिक विचार कीजिए कि जो लोग

कभी मांस नहीं खाते, शनैः २ उनकी वीर-भावना का ह्रास हो जाता है, यहाँ तक कि वे हृदय के अति दुर्बल हो जाते हैं और एक ईश्वर प्रदत्त और श्लाघनीय शक्ति को खो बैठते हैं। इसका प्रमाण परमेश्वर के प्राकृतिक विधान से इस प्रकार मिल सकता है कि पशुओं में जितने घास खाने वाले पशु हैं कोई भी उन में से वह वीरता नहीं रखता जो एक मांसाहारी में होती है। यही प्राकृतिक विधान पक्षियों में भी देखा जाता है।

अतः यह बात निर्णीत है कि चरित्र पर भोजन और खाद्य-पदार्थों का प्रभाव अवश्य है। परन्तु जो लोग अहर्निश मांस-भक्षण पर बल देते हैं तथा शाक और भाजियों का प्रयोग बहुत कम करते हैं उनमें दया और नम्रता आदि चरित्र की विशेषताएं न्यून मात्रा में होती हैं जबकि मध्य मार्ग का अनुसरण करने वाले दोनों प्रकार की चारित्रिक विशेषताओं के स्वामी बनते हैं। इसी तथ्य के उपलक्ष्य परमात्मा ने पवित्र क़ुरान में कहा है।

كُلُوْا وَاشْرَبُوْا وَلَا تُسْرِفُوْا ط

'कुलू व श्रबू व ला तुसरेफ़ू'

अर्थात् मांस भी खाओ और अन्य शाक भाजी भी खाओ परन्तु किसी वस्तु की अति सर्वत्र वर्जित है ताकि उसका चारित्रिक अवस्था पर कुप्रभाव न पड़े तथा यह सीमा का अतिक्रमण स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक न हो।

जिस प्रकार शारीरिक क्रिया-कलापों का मन और आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार मन और आत्मा का प्रभाव भी शरीर पर पड़ता है। जिस व्यक्ति को कोई दुःख या कष्ट पहुँचे तो उस के

नेत्रों में मेघों की घटा दृष्टिगोचर होने लगती है और जिस को प्रसन्नता हो तो वह मुस्कराता है। हमारा खाना पीना, जागना शयन करना, विश्राम करना, स्नान करना अथवा अन्य कोई क्रिया करना इत्यादि जितनी भी स्वाभाविक क्रियाएं हैं, यह सभी आवश्यक क्रियाएं हमारी मानसिक और आत्मिक अवस्थाओं पर प्रभाव डालती हैं। हमारी शारीरिक बनावट का हमारी मानवता से प्रगाढ़ सम्पर्क है। मस्तिष्क के एक विशेष स्थान पर प्रहार होने से स्मरण शक्ति का सर्वथा ह्रास हो जाता है और दूसरे स्थान पर प्रहार होने से होश और चेतना समाप्त हो जाती है। रोग की विभीषिका की एक विषैली वायु शरीर पर कितनी शीघ्र प्रभाव डाल कर पुनः हृदय को प्रभावित करती है और क्षणमात्र में वह आन्तरिक व्यवस्था जिस से चरित्र की सम्पूर्ण व्यवस्था सम्बन्धित है, अस्त व्यस्त होने लगती है यहां तक कि मनुष्य पागल सा हो कर कुछ ही क्षणों में काल का ग्रास बन जाता है। सारांश यह कि शारीरिक कष्ट या रोग भी आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया दिखलाते हैं, जिन से सिद्ध होता है कि आत्मा और शरीर का एक ऐसा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है कि इस भेद को खोलना मनुष्य का कार्य नहीं। इसके अतिरिक्त इस अटूट सम्बन्ध के प्रमाण में यह उक्ति दे सकते हैं कि विचार करने पर विदित होता है कि जीवात्मा की जननी शरीर ही है। गर्भवती महिला के गर्भ में जीवात्मा कभी ऊपर से नहीं गिरती अपितु वह एक प्रकार की ज्योति है जो वीर्य में ही गुप्त रूप में निहित रहती है और शरीर के विकास के साथ वह भी विकसित होती जाती है। परमेश्वर की पवित्र वाणी हमें समझाती है कि आत्मा उस शरीर में से ही उत्पन्न हो जाती है जो वीर्य द्वारा गर्भ में तैयार होता है। जैसा कि परमेश्वर का अपनी पवित्र वाणी क़ुरान शरीफ़ में कथन हैं।

ثُمَّ اَنْشَاْنٰهُ خَلْقًا اٰخَرَ ؕ فَتَبٰرَكَ اللّٰهُ

اَحْسَنُ الْخٰلِقِيْنَ ؕ

सुम्मा अनशानाहो खल्क़न आख़रा।
फ़तबारकल्लाहो अहसनुल ख़ालेक़ीन।

अर्थात् पुनः हम उस शरीर को जो गर्भ में तैयार हुआ था एक अन्य रूप में परिवर्तित करते हैं और एक नवीन सृष्टि का रूप उसे प्रदान करते हैं जिसे जीवात्मा की संज्ञा दी जाती है। परमेश्वर असीम वरदानों का स्रोत और अद्वितीय महान् स्रष्टा है। ऐसा महान् स्रष्टा है कि उस सदृश अन्य कोई नहीं। परमात्मा ने यह जो कहा है कि हम उसी शरीर में से एक अन्य सृष्टि का निर्माण करते हैं, यही गूढ़ रहस्य जीवात्मा के तथ्य को अभिव्यक्त कर रहा है और उन अति घनिष्ठ सम्बन्धों की ओर संकेत कर रहा है जो आत्मा और शरीर के मध्य स्थित हैं और यह संकेत हमें इस बात की भी शिक्षा देता है कि मनुष्य की समस्त शारीरिक एवं प्राकृतिक और स्वाभाविक क्रियाएं और कथन जब परमेश्वर के लिये और उसी के मार्ग में प्रदर्शित होने लगें तो उन से भी इसी अलौकिक (परमेश्वरीय) दर्शन का अटूट सम्बन्ध है अर्थात् उन हार्दिक क्रियाओं में भी प्रारम्भ ही से एक आत्मा निहित होती है जैसे वीर्य में निहित थी; और जैसे जैसे इन क्रियाओं से एक शरीर का निर्माण होता जाए, वह जीवात्मा उद्दीप्त होती जाती है और जब वह शरीर पूर्ण रूप से तैयार हो सकता है तो सहसा ही एक बार वह जीवात्मा अपने पूर्ण बल से उद्भासित होने लगती है और अपने जीवात्मीय रूप से अपने अस्तित्व को दिखा देती है और जीवन के स्पष्ट चिह्न अर्थात् स्पन्दन प्रारम्भ हो जाता है। अस्तु,

जैसे ही क्रियाओं का सम्पूर्ण शरीर तैयार हो जाता है वैसे ही तुरन्त विद्युत के समान एक वस्तु भीतर से अपनी खुली खुली चमक दिखलाना प्रारम्भ कर देती है। यह वही समय होता है जिस के विषय में परमेश्वर ने अपने पवित्र ग्रन्थ क़ुरान शरीफ़ में दृष्टान्त रूप में कहा है—

فَاِذَا سَوَّيْتُهٗ وَنَفَخْتُ فِيْهِ مِنْ رُّوْحِيْ

فَقَعُوْا لَهٗ سَاجِدِيْنَ

फ़इज़ा सव्वैतोहू व नफ़रूतो फ़ीहे,
मिंरूही फ़ा क़ऊलहू साजिदीन।

अर्थात् जब मैंने उसका शरीर बना लिया और उसके कौशल की पूर्ण अभिव्यक्ति कर ली और जीवात्मा उस में प्रविष्ट कर दी तो तुम सब लोग उसके लिए पृथ्वी पर सजदा (दण्डवत) करते हुये गिर जाओ। इस आयत (क़ुरान शरीफ़ के पवित्र कथन) में यही संकेत है कि क्रियाओं के शरीर का जब पूर्ण रूप से निर्माण हो जाता है तो उस पञ्जर में जीवात्मा का उदय होता है जिस को परमेश्वर अपनी सत्ता से सम्बन्धित बतलाता है क्योंकि भौतिक जीवन के विनाश के पश्चात् वह ढाँचा निर्मित होता है। अतएवं दैवी अर्थात् परमेश्वरीय ज्योति जो पहले धीमी थी एक बार उद्दीप्त हो उठती है और यह अनिवार्य हो जाता है कि परमेश्वर की ऐसी अद्भुत लीला देख कर प्रत्येक नतमस्तक हो और उस की ओर बहता चला जाए। अतः प्रत्येक इस अलौकिक लीला को देख कर उस के सम्मुख नतमस्तक होता है और स्वाभावतया उसकी ओर आता है परन्तु इब्लीस (शैतान अर्थात् वक्र-स्वभाव वाला व्यक्ति) आज्ञा का पालन नहीं करता क्योंकि उसे प्रकाश के विपरीत अन्धकार से एक विशेष प्रकार का प्रेम और लगाव है।

जीवात्मा परमेश्वर की सृष्टि है—

फिर मैं अपनी पिछली वात की ओर आता हूं। यह एक तथ्य है कि जीवात्मा एक सूक्ष्म ज्योति है जिसकी उत्पत्ति शरीर के भीतर से ही होती है और जिस का गर्भ में पोषण होता रहता है। उत्पत्ति से तात्पर्य यह है कि उसकी प्रथम अवस्था अस्पष्ट एवं अव्यक्त रहती है पुनः स्पष्ट रूप से उस का रूप व्यक्त हो जाता है। प्रारम्भ में बीज रूप में वह वीर्य में ही विद्यमान होती है और यह वात निर्णीत है कि जगत स्रष्टा परमेश्वर की इच्छा, आज्ञा और आदेशानुसार उसका सम्बन्ध एक अज्ञात रूपांतर द्वारा वीर्य से है। वह वीर्य का देदीप्यमान ज्योतिर्मय अंश है। कहना न होगा कि वह वीर्य का ऐसा ही अभिन्न अंश है जैसे शरीर शरीर का अंश होता है। किन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि उस का उद्भव कहीं बाहर से होता है अथवा पृथ्वी पर गिर कर वीर्य से। अपितु वह वीर्य में इसी प्रकार निहित होता है जैसे पत्थर के गर्भ में अग्नि।

परमेश्वर की पवित्र वाणी कुरान मजीद का यह मत नहीं कि जीवात्मा पृथक् रूप से आकाश से अथवा वायु-मण्डल से पृथ्वी पर गिरती है और फिर सहसा किसी घटना से वीर्य के साथ मिलकर गर्भ के भीतर चली जाती है। यह मत और यह विचार कभी भी युक्ति-संगत और तर्क-युक्त नहीं हो सकता। यदि हम ऐसा मान लें तो प्राकृतिक विधान हमें अनृत पर ठहराता है। हम नित्य देखते हैं कि बासी और विकृत भोजनों तथा सड़े हुए घावों में सहस्रों कीड़े पड़जाते हैं। मैले वस्त्रों में सैंकड़ों जुएं पड़ जाती हैं। मनुष्य के पेट के भीतर भी कद्दूदाने इत्यादि कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। अब क्या हम कह सकते हैं कि

वे बाहर से आते हैं अथवा आकाश से उतरते किसी को दिखाई देते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि जीवात्मा शरीर के भीतर से ही निकलती है और तर्क से उस का सृष्टि होना भी सिद्ध होता है।

जीवात्मा का पुनर्जन्म---

अब इस समय हमारे वक्तव्य का यह तात्पर्य है कि जिस सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने जीवात्मा को पूर्ण शक्तियों के साथ शरीर में से ही निकाला है। उसकी यही इच्छा मालूम होती है कि जीवात्मा के पुनर्जन्म को भी शरीर द्वारा ही व्यक्त करे। जीवात्माकी क्रियाएं हमारे शरीर की क्रियाओं पर आधारित हैं। जिस ओर हम शरीर को खींचते हैं, जीवात्मा भी अवश्यमेव अनुसरण करती है। अतएव मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं की ओर विशेष ध्यान देना परमेश्वर की पवित्र वाणी .कुरान मजीद का कार्य है। यही कारण है कि पवित्र कुरान ने मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं के सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान दिया है और मानव का हंसना, खाना-पीना, पहनना, शयन करना, जागना, बोलना मौन रहना, विवाह करना, अविवाहित रहना, चलना-ठहरना, बाह्यस्वच्छता और स्नानादि के नियमों पर चलना और रोग की अवस्था, निरोग की अवस्था में विशिष्ट नियमों का पालन करना इन सभी विषयों पर आदेशों का उल्लेख किया है और मानव की शारीरिक अवस्थाओं का आध्यात्मिक अवस्थाओं पर प्रभावशालिनी ठहराया है। यदि इन आदेशों की पूर्ण व्याख्या की जाए तो मैं यह नहीं कह सकता कि इस वक्तव्य को सुनाने के लिए कोई यथेष्ठ समय उपलब्ध हो सके।

मनुष्य का क्रमिक विकास–

मैं जब परमेश्वर की पवित्र वाणी .कुरान पर विचार करता हूँ और देखता हूं कि उस ने किस प्रकार अपनी शिक्षाओं में मनुष्य को

उस की प्राकृतिक अवस्थाओं के सुधार के नियम प्रदान करके पुनः शनैः शनैः विकास की ओर अग्रसर किया है और आध्यात्मिक अवस्था के महान् स्तर तक पहुंचाना चाहा है तो मुझे यह गूढ़ रहस्य इस प्रकार विदित होता है कि प्रथम परमेश्वर ने यह चाहा कि मनुष्य को बैठने-उठने और खाने-पीने तथा बातचीत इत्यादि समस्त प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करके उस को अमानुषिक रीति-रिवाजों से मुक्ति देवे और पाशविकता की पहचान की पूर्ण शक्ति प्रदान करके एक साधारण स्तर की चारित्रिक अवस्था जिसको शिष्टाचार और विनय की संज्ञा दे सकते हैं, सिखलावे, पुनः मनुष्य के प्राकृतिक उद्वेगों (स्वभाव) को जिन को दूसरे शब्दों में दुराचार कह सकते हैं, साधारण माध्यमिक स्तर पर लावे ताकि वे जीवन की माध्यमिकताओं को पा कर सदाचार का रूप धारण करें। परन्तु यह दोनों विधियां वास्तव में एक ही हैं क्योंकि प्राकृतिक अवस्थाओं के सुधार से सम्बन्धित हैं। केवल उच्च और निम्न के अन्तर ने उनको दो भागों में विभक्त कर दिया है और उस परम विधाता सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने चरित्र के विधान को इस ढंग से उपस्थित किया है जिस से मानव, चरित्र के निम्नस्तर से उठकर सर्वोच्च शिखर पर पहुंच सके।

इस के अतिरिक्त तृतीय स्तर उन्नति और विकास का यह रखा है कि मनुष्य अपने वास्तविक स्रष्टा (परमेश्वर) के प्रेम और उस की इच्छा में अपने को लीन कर ले और उसका पूर्ण व्यक्तित्व परमेश्वर के लिए हो जाये। यह वह अवस्था है जिस को स्मरण कराने के लिए मुसलमानों के धर्म का नाम इस्लाम रखा गया है; क्योंकि इस्लाम इस बात को कहते हैं कि अपने को इस प्रकार परमेश्वर के सुपुर्द कर दे कि अपना कुछ भी शेष न रहे जैसा कि परमेश्वर का कथन है:—

بَلٰى مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ

فَلَهٗ اَجْرُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ

وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ قُلْ اِنَّ صَلٰوتِیْ وَ

نُسُكِیْ وَمَحْيَایَ وَمَمَاتِیْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ

لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَبِذٰلِكَ اُمِرْتُ وَاَنَا اَوَّلُ

الْمُسْلِمِيْنَ ۝ وَاَنَّ هٰذَا صِرَاطِیْ مُسْتَقِيْمًا ۝

فَاتَّبِعُوْهُ وَلَا تَتَّبِعُوا السُّبُلَ فَتَفَرَّقَ بِكُمْ

عَنْ سَبِيْلِهٖ قُلْ اِنْ كُنْتُمْ تُحِبُّوْنَ اللّٰهَ

فَاتَّبِعُوْنِیْ يُحْبِبْكُمُ اللّٰهُ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوْبَكُمْ

وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝

बला मन अस्लमा वज्हहू लिल्लाहे व होवा मोह-सेनुन फ़ लहू अजरोहू व इंदा रब्बेही व ला ख़ौफ़ुन अलैहिम व ला हुम यहज़नून।

क़ुल इन्ना सलाती व नोसोकी व मह्याय व ममाती लिल्लाहे रब्बिल आलमीन। ला शरीक लहू व बे ज़ालेका उमितों व अना अव्वलुल मुस्लेमीन। व अन्ना हाज़ा

सिराती मुस्तक़ीमा । फ़त्तबेऊहो व ला तत्तबेउस्सबील: व तफ़र्रक़ा बे कुम अन सबीलेही । क़ुल इन् कुन् तुम् तोहेब्बूनल्लाहा फ़त्तबेऊनी योहबेबकोमुल्लाहो व यग़फ़ेरलकुम् ज़ोनूबकुम वल्लाहो ग़फ़ूरुर्रहीम ।

इस्लाम का तात्विक अर्थ—

अर्थात् मुक्ति पाने वाला वह व्यक्ति है जो परमेश्वर की इच्छानुसार उसके मार्ग में अपने को तन-मन-धन से समर्पित कर दे। केवल मौखिक रूप से नहीं अपितु अपने सत्कर्मों से अपनी सत्यता और पवित्रता का प्रदर्शन करे। ऐसे आचरणों के स्वामी निश्चय ही परमेश्वर के यहां सम्मानित होंगे और उन के लिए परमेश्वर के दरबार में पुरस्कार सुरक्षित हो चुका है। ऐसे व्यक्तियों को किसी प्रकार का कोई भय नहीं और न ही वे उदासीन और शोकयुक्त होंगे। परमेश्वर हज़रत मुहम्मद साहिब को सम्बोधित करते हुए कहता है कि आप इन लोगों से कह दें कि मेरी उपासना और मेरा बलिदान और मेरी भेंटें, मेरा जीवित रहना अथवा मेरा मरना उस परमेश्वर के लिए है जो समस्त ब्रह्मांड का पालनहार है। कोई वस्तु और कोई व्यक्ति उस की समानता नहीं कर सकता और न ही सृष्टि का कोई अंश अथवा सम्पूर्ण सृष्टि उस के समकक्ष हो सकती है। इस मत पर विश्वास रखने और इस पर आचरण करने का मुझे परमेश्वर की ओर से आदेश मिला है। अतएव इस्लाम का सच्चा अनुयायी और उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाला तथा अपना सम्पूर्ण अस्तित्व उस पर समर्पित करने वाला सर्वप्रथम मैं हूं। परमेश्वर का कथन है कि मुझ तक पहुँचने का एक मात्र यही मार्ग है। अत: आओ! और मेरे इस पथ का अनुसरण करो और इस के विरुद्ध कोई अन्य मार्ग मत अपनाओ

अन्यथा परमेश्वर से दूर जा पड़ोगे। आप इन लोगों को कहदें कि यदि परमेश्वर से श्रद्धा और प्रेम है तो आओ और मेरा अनुसरण करो तथा मेरे बताये मार्ग पर चलो ताकि परमात्मा भी तुम से प्रेम करे और तुम्हारे पापों को क्षमा करे। वह बहुत ही क्षमा करने वाला तथा बार बार दया करने वाला है।

अब हम मनुष्य की उक्त तीनों अवस्थाओं का पृथक् २ उल्लेख करेंगे परन्तु सर्वप्रथम यह स्मरण कराना आवश्यक है कि प्राकृतिक अवस्थाओं का उद्गम स्थान तामसिक वृत्ति एवं तमोगुण है। परमेश्वर की पवित्र वाणी में दर्शाए गए संकेत के अनुसार चारित्रिक अवस्थाओं से कोई वस्तु पृथक् नहीं है क्योंकि परमेश्वर के पवित्र कथन ने समस्त प्राकृतिक शक्तियां और शारीरिक इच्छाओं आकांक्षाओं को प्राकृतिक अवस्थाओं के अन्तर्गत रखा है। यह वही प्राकृतिक अवस्थाएं हैं जिन्हें सुन्दर क्रम देने और अवसर के अनुकूल उन्हें प्रयोग में लाने के उपरांत वे आचरण और चरित्र का रूप धारण कर लेती है। ठीक इसी प्रकार चारित्रिक अवस्थायें आत्मिक अवस्थाओं से भिन्न नहीं हैं अपितु यही चारित्रिक अवस्थाएं—परमेश्वर के प्रेम में पूर्ण रूप से खोए जाने से, आत्मा की पूर्ण परिशुद्धि से और इस जगत में रहते हुए इस से निर्लिप्त होकर परमेश्वर से नाता जोड़ने से तथा उसीके प्रति असीम श्रद्धा, आत्मविलय और तत्परता से, चित्तवृत्ति की पूर्ण स्थिरता से शांति और आत्म-तुष्टि से और उसी की इच्छा के आगे शीश झुकाने से—आध्यात्मिकता का रूप धारण कर लेती हैं।

प्राकृतिक अवस्थाओं और चरित्र में अन्तर—

प्राकृतिक अवस्थाएं जब तक चरित्र में रूपांतरित न हों जाएं किसी प्रकार मानव को प्रशंसनीय नहीं बनाती क्योंकि वे अन्य जीवों

अपितु ठोस पदार्थों में भी पाई जाती हैं। ऐसा ही केवल सदाचार की उपलब्धि भी मानव को आध्यात्मिक जीवन प्रदान नहीं कर सकती। बल्कि एक व्यक्ति परमेश्वर की सत्ता का इनकारी और नास्तिक रह कर भी महान् चरित्र का प्रदर्शन कर सकता है। दीनता, विशाल-हृदयता, मैत्रीभाव रखना अथवा कलह को त्यागना तथा झगड़ालू और दुष्ट मनुष्यों के मुकाबले में न आना और उन से उपेक्षा का व्यवहार करना इत्यादि यह सभी प्राकृतिक अवस्थाएं हैं और ऐसी बातें हैं जो ऐसे आयोग्य व्यक्ति को भी प्राप्त हो सकती हैं जो मुक्ति के वास्तविक द्वार से सर्वथा अनभिज्ञ और वंचित रहता है। कतिपय पशु भी दीन स्वभाव के होते हैं तथा अपने स्वामी से घुल-मिल जाने और सिधाए जाने से मैत्री-भाव दिखलाते हैं और सोटे पर सोटे मारने पर भी कोई मुकाबला नहीं करते। किन्तु फिर भी उन्हें मानव नहीं कहा जा सकता। यह तो सर्वथा असम्भव है कि उन विशेषताओं के कारण उन्हें महान मानव की पदवी दे दी जाए। ठीक इसी प्रकार एक बिल्कुल निराधार अशुद्ध विश्वास रखने वाला, यहां तक कि एक व्यभिचारी और कुकर्मी भी इन बातों पर चल सकता है।

जीव हत्या का खण्डन—

सम्भव है कि मनुष्य इतना दयालु बन जाए कि यदि उस के अपने ही शरीर के घाव में कीड़े पड़ जाए तो उन्हें भी मारना उचित न समझे और जीव-जन्तुओं का इतना हितैषी हो कि जुएं जो सिर में पड़ती हैं अथवा वे कीड़े जो आमाशय और अन्तड़ियों में पड़ जाते हैं अथवा मस्तिष्क में पैदा होते हैं उन को भी कष्ट पहुँचाना उचित न समझे अपितु यहां तक स्वीकार किया जा सकता है कि किसी की दया इस सीमा तक पहुँच जाए कि वह मधु (शहद) खाना त्याग दे क्योंकि

वह वहुत से प्राणियों की हत्या करने और निरपराध मधु-मक्खियों को उन के अधिकार से वंचित करने के पश्चात् प्राप्त होता है। इसी प्रकार यह भी मान सकता हूँ कि कोई व्यक्ति कस्तूरी का भी सेवन करना छोड़ दे क्योंकि वह निरीह हिरण का रक्त है जो उस बेचारे का वध करने और उस के बच्चों को अनाथ बनाने से उपलब्ध होता है। इसी प्रकार मैं यह भी स्वीकार कर सकता हूं कि कोई महाशय मोतियों के प्रयोग को भी तिलांजलि दे दे, वह रेशम को भी पहनना त्याग दे क्योंकि यह दोनों वस्तुएं निरीह कीड़ों का हनन करने से ही प्राप्त होती हैं। अपितु मैं यहां तक स्वीकार कर सकता हूँ कि कोई व्यक्ति कष्ट के समय जोंकों के लगाने से भी संकोच करे और स्वयं दुःख उठाए एवं निरीह जोंकों के प्राणों का घातक न बने। कोई स्वीकार करे या न करे, मैं तो यहां तक स्वीकार करता हूँ कि कोई व्यक्ति अपनी दयालुता को इतना अतिशय करे कि जल पीना त्याग दे और इस प्रकार जल में निहित कीटाणुओं को बचाने के लिए अपने आपको समाप्त कर ले। मैं यह सब कुछ स्वीकार करता हूँ परन्तु यह कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता कि ये सभी आचरण चरित्र कहलाते हैं, अथवा यही वे क्रियाएं हैं जिनसे भीतरी दुर्गन्ध धोई जा सकती है जो ईश्वर मिलन में बाधक है। यह बात मेरी कल्पना में भी नहीं आ सकती कि इस प्रकार का अहिंसा-प्रिय बन जाना—जिसमें कई पशु और पक्षी मानव की अपेक्षा अधिक अहिंसा-प्रिय हैं—सहज मानवता की प्राप्ति का कारण बन सकता है। मेरे निकट यह क्रिया प्राकृतिक विधान के सर्वथा विपरीत है अथवा उस दैवी वरदान की अवज्ञा है जो प्रकृति की ओर से हम को मिला। वह महान आध्यात्मिकता, प्रत्येक उच्च आचरण को उचित अवसर पर काम में लाने तथा परमेश्वर के लिए उसकी आज्ञा का पालन करते हुए अपना तन-मन-

धन सर्वस्व अर्पित करने पर ही प्राप्त होती है। जो उस परमेश्वर का हो जाता है उस के चिन्ह ये हैं कि वह उस के बिना एक क्षण जीवित नहीं रह सकता। ब्रह्मज्ञानी एक मच्छली है जो परमेश्वर के हाथ से बलि दी गई और उसका जल ईश्वर-प्रेम है।

अब मैं अपने पहले विषय की ओर लौटता हूं। मैं अभी बता चुका हूं कि मानव की विभिन्न अवस्थाओं के स्रोत तीन हैं अर्थात तामसिक-वृत्ति (तमोगुण) राजसिक-वृत्ति (रजोगुण) तथा सात्विक-वृत्ति (सतोगुण)। इसी प्रकार सुधार की भी तीन विधियां हैं।

प्रथम—यह कि असभ्य और उच्छृङ्खल लोगों को जो भले बुरे में कोई अन्तर नहीं कर सकते, उन्हें इस साधारण प्रकार के आचरण की दीक्षा दी जाए कि वे खाने-पीने तथा विवाह आदि सामाजिक बातों में मानवता के नियमों पर चलें। वे न तो शरीर को नग्न रखे और न ही कुत्तों (और गृद्धों) के समान मृतक शरीर को खाने वाले हों और न कोई अन्य नीच व्यवहार का प्रदर्शन करें। यह प्राकृतिक अवस्थाओं के सुधार में से निम्नस्तर का सुधार है। यह इसी प्रकार है जैसे यदि पोर्टब्लेयर के जंगली मनुष्यों में से किसी मनुष्य को मानवता की दीक्षा देनी हो तो सर्वप्रथम मनुष्यता के प्रारम्भिक छोटे २ आचरणों और शिष्टाचार के ढंगों की उन्हें दीक्षा दी जाएगी।

सुधार का **दूसरा ढंग**—यह है कि जब कोई मानवता के बाह्य शिष्टाचार ग्रहण कर ले तो उस को मानवता के महान् आचरणों की दीक्षा दी जाए तथा मनुष्य में जितनी भी शक्तियां निहित हैं उनका क्रमिक विकास करते हुए उन्हें उचित समय और उचित अवसर पर प्रयोग में लाने की शिक्षा दी जाए।

सुधार का **तीसरा साधन**—यह है कि जो व्यक्ति सदाचार और आदर्श चरित्र से विभूषित हो चुके हैं, ऐसे योगियों और शुष्क उपदेशकों को प्रेम और मधुर-मिलन का मधुपान कराया जाए।

सुधार के ये तीन साधन हैं जिनका निर्देश पवित्र कुरान में हुआ है।

परमेश्वरके महानतम अवतार हज़रत मुहम्मद साहिब (परमात्मा उनपर अपनी विशेष अनुग्रह, कृपा, दया और वरदानों की अपार वृष्टि करे) का ऐसे समयपर प्रादुर्भाव हुआ था जब कि संसार में हर प्रकार के विकार, पतन और विनाश की विभीषिकाएं प्रज्वलित हो चुकी थीं। जैसा कि परमेश्वर का पवित्र .कुरान में कथन है—

ظَهَرَ الْفَسَادُ فِي الْبَرِّ وَالْبَحْرِ

ज़हरल फ़सादो फ़िल बर्रेवल् बहर।

अर्थ—समस्त खुश्की और तरी में अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विकार आ चुका था। यह इस बात की ओर संकेत है कि जो जातियां अहले किताब अर्थात् ईश्वर प्रणीत धर्मग्रन्थों से विभूषित समझी जाती हैं वे भी पथभ्रष्ट हो गईं और जिन के पास धर्म और समाज का कोई निश्चित विधान शास्त्र नहीं और यूं ही अनियमित जीवन व्यतीत कर रही थीं, न ही उन्हें ईश्वरीय वाणी का अमृत मिला था, वे भी विकारग्रस्त हो गई थीं।

अस्तु, पवित्र .कुरान का कार्य वास्तव में मृतकों को जीवनदान देना था। जैसा कि उस का कथन है कि—

اِعْلَمُوْا اَنَّ اللّٰهَ يُحْيِى الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا

एमलू अन्नल्लाहा योहयिल्
अर्ज़ा बादा मौतेहा ।

अर्थात् यह तुम्हें भली प्रकार विदित हो जाना चाहिये कि अब परमेश्वर, जब कि समस्त पृथ्वी की जीवन शक्ति का ह्रास हो चुका था, उस पृथ्वी को पुनः जीवित करने लगा है।

उस समय अरब देश की दशा पशुता के स्तर पर पहुंच चुकी थी और मनुष्यता का कोई अंश शेष न रहा था। हर प्रकार के पाप और दुराचार उनकी दृष्टि में गौरव का स्थान रखते थे। एक-एक व्यक्ति सैंकड़ों स्त्रियों से विवाह कर लेता था। हर प्रकार की निषिद्ध कमाई तथा हर प्रकार का निषिद्ध भोजन उनके लिए शिकार था। माताओं के साथ विवाह कर लेना शास्त्रीय आज्ञा के अनुकूल समझते थे। इसी लिए परमेश्वर को कहना पड़ा—

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهَاتُكُمْ

होर्रेमत अलैकुम उम्महातोकुम।

अर्थात् तुम्हारे लिए अपनी माताओं के साथ विवाह करना शास्त्र विरुद्ध घोषित किया जाता है।

इसी प्रकार वे लोग मरे हुए पशुओं का मांस भी खा जाते थे। यही नहीं अपितु मनुष्य का मांस भी खा जाते थे। संसार का कोई भी पाप ऐसा नहीं जो वे नहीं करते थे। उनमें से अधिकांश परलोक पर विश्वास नहीं रखते थे। कतिपय उनमें से ईश्वर की सत्ता को भी नहीं

मानते थे और नास्तिक जीवन व्यतीत करते थे। कन्याओं का अपने हाथ से वध कर देते थे। अनाथों को मार कर उनका धन खा जाते थे। वाह्य दृष्टि से तो वे मानव थे परन्तु बुद्धिबल से वे सर्वथा वंचित थे। न उनमें लज्जा थी, न संकोच। जल के समान मद्यपान होता था। व्यभिचार में जिसका नाम प्रथम श्रेणी में होता था, वही जाति का सरदार कहलाता था। अज्ञानता इतनी बढ़ी हुई थी कि आस पड़ोस की समस्त जातियों ने उनका नाम "उम्मी" (अर्थात् नितान्त अज्ञानी) रख दिया था। ऐसे समय में और ऐसी जातियों के सुधार के लिए हमारे परम प्रिय पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब का मक्का की पवित्र भूमि में प्रादुर्भाव हुआ।

अस्तु, वे तीन प्रकार के सुधार जिनका हम अभी उल्लेख कर चुके हैं, उनका वास्तव में यही समय था। यही कारण है कि परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरानशरीफ़ संसार के समस्त धर्म-ग्रन्थों की अपेक्षा प्रत्येक प्रकार से सम्पूर्ण है तथा जगत की भूत-वर्तमान-भविष्य सभी कालों की सभी आवश्यकताओं और समस्याओं का पूर्ण सन्तोषजनक समाधान उपस्थित करता है क्योंकि संसार के अन्य धर्मग्रन्थों को इन तीन प्रकार के सुधार सम्बन्धी कार्यों का अवसर नहीं मिला अपितु यह स्वर्णिम अवसर पवित्र क़ुरान को ही मिला। क़ुरानशरीफ़ का यह उद्देश्य था कि मनुष्य जो पशुता की सीमा तक पहुँच चुका था उसे अमानुषिकता से निकाल कर पुनः मनुष्य बनावे, फिर मनुष्य से महान् चरित्रवान मानव बनावे तदनन्तर ईश्वर-भक्त मानव बनावे। यही कारण है कि पवित्र क़ुरान के मूल में यही तीन उद्देश्य निहित हैं।

पवित्र क़ुरान का मूल उद्देश्य
तीन प्रकार के सुधार

उक्त तीनों प्रकार के सुधारों का विस्तार पूर्वक वर्णन करने से पूर्व यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि पवित्र क़ुरान में कोई ऐसी शिक्षा नहीं जिनको गृहण करने में बल-प्रयोग की आवश्यकता पड़े अपितु सम्पूर्ण क़ुरानशरीफ़ का उद्देश्य यही तीन सुधार हैं और उसकी समस्त शिक्षाओं का सार यही तीन सुधार हैं, शेष सभी नियम और उपनियम इन सुधारों के निमित्त साधन मात्र हैं। जिस प्रकार एक रोगी के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए डाक्टर को कभी चीड़-फाड़ करने और कभी शीतल मरहम (विलेपन) लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार पवित्र क़ुरान की शिक्षा ने भी मानवीय सहानुभूति के लिए इन उपसाधनों को अपने अवसरों पर प्रयुक्त किया है। उसके सम्पूर्ण गूढ़ तत्वों अर्थात् ज्ञान की बातों और उपदेशों-निर्देशों और साधनों का वास्तविक अर्थ यह है कि मनुष्य को उसकी प्राकृतिक अवस्थाओं से—जिनमें निश्चय ही अमानुषिकता का स्वरूप होता है—ऊपर उठा कर चरित्र के उच्च स्तर पर पहुँचाए तत्पश्चात् चारित्रिक अवस्था का विकास करके उसे आध्यात्मिकता के अकूल सागर तक पहुँचाए।

प्राकृतिक अवस्थाएं विकसित होकर चरित्र का रूप धारण कर लेती हैं।

अभी हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि प्राकृतिक अवस्थाएं और चरित्र परस्पर विरोधी और भिन्न नहीं हैं अपितु

प्राकृतिक अवस्थाएं ही उचित समय और उचित स्थान तथा उचित अवसर पर बुद्धि की अनुमति और उस के परामर्श से प्रयोग में लाई जाने के पश्चात् चरित्र का रूप धारण कर लेती हैं। वे अवस्थाएँ चरित्र के समरूप कितनी ही क्यों न हों जाएँ; बुद्धि की अनुमति और उसके परामर्श के बिना चरित्र का निखरा हुआ स्वरूप कभी नहीं बन सकतीं, अपितु वह स्वभाव की एक स्वतन्त्र गति मात्र होती है। उदाहरणतया यदि एक कुत्ते या बकरी से अपने स्वामी के प्रति प्रेम और नम्रता का प्रदर्शन होता है तो उस कुत्ते को चरित्रवान नहीं कहेंगे और न ही उस बकरी को चरित्रवान कहा जाएगा। इसी प्रकार एक भेड़िये या शेर को उसकी हिंसावृत्ति के कारण असभ्य और दुराचारी नहीं कहा जा सकता अपितु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि समय और स्थिति तथा अवसर के पहचानने और गम्भीर चिन्तन के पश्चात् ही चारित्रिक अवस्था का प्रारम्भ होता है और एक ऐसा मनुष्य जिसके हृदय पर और मस्तिष्क पर विचार शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ा अर्थात् जिसमें विचार शीलता और चिन्तनशीलता नहीं वह उन नन्हें-मुन्ने बच्चों के समान है जिनके हृदय और मस्तिष्क को अभी बौद्धिक बल का वरदान नहीं मिला अथवा उन पागलों के समान जो बुद्धि और विचार शक्ति को खो बैठते हैं। स्पष्ट है कि जो व्यक्ति दुधमुहाँ शिशु और पागल न हो वह कभी कभी ऐसी क्रियाओं का प्रदर्शन करता है जो चरित्र के अनुरूप होती हैं परन्तु कोई बुद्धिमान उनका नाम चरित्र नहीं रख सकता क्योंकि वे क्रियाएँ निर्णायक-शक्ति और अवसरवादिता के स्रोत से नहीं निकलती अपितु स्वाभाविक और प्राकृतिक याचनाओं के समय स्वयं ही व्यक्त हो जाती है। जैसा कि मनुष्य का बच्चा जन्म लेते ही माता के स्तनों की ओर झुकने लगता है और एक मुर्गी का बच्चा अण्डे से निकलते ही दाना चुगने के लिए दौड़ता है। जोंक

का बच्चा जोंक के आचरण अपने भीतर रखता है और सर्प के बच्चे से सर्प के आचरण प्रगट होने लगते हैं। इसी प्रकार सिंह के बच्चे से सिंह का स्वभाव अभिव्यक्त होता है। विशेष कर मनुष्य के बच्चे को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि वह किस प्रकार जन्म लेते ही मानवीय स्वभाव प्रदर्शित करने लगताहै और जब वह वर्ष डेढ़ वर्ष का हो जाता है तो वे स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ पर्याप्त-मात्रा में अभिव्यक्त हो जाती है। उदाहरणार्थ पहले जैसे रोता था, अब रोना पहले की अपेक्षा उच्च स्वर में हो जायगा। इसी प्रकार हँसना ठहाके की सीमा तक पहुँच जाता है और नेत्रों में भी उत्सुकता के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। इस आयु में एक प्राकृतिक क्रिया उत्पन्न हो जाती है, और वह यह कि बच्चा अपनी रुचि-अरुचि, सहमति-असहमति का प्रदर्शन विशेष क्रियाओं द्वारा करने लगता है। कभी किसी को मारना और कभी किसी को कुछ देना चाहता है परन्तु वे सभी क्रियाएँ वास्तव में प्राकृतिक ही होती हैं। अस्तु, ऐसे बच्चे की तरह एक जंगली या असभ्य मनुष्य भी जिसे मानवता का लेशमात्र भी प्राप्त नहीं हो सका वह भी अपने मन-वचन-कर्म और अपने प्रत्येक क्रियाकलाप में स्वाभाविक क्रिया और स्वाभाविक इंगितों का ही प्रदर्शन करता है और अपनी प्रवृत्ति तथा प्राकृतिक संवेगों के अधीन होता है। कोई बात उसके आन्तरिक विचार और विमर्श से नहीं निकलती। अपितु जो कुछ प्रकृति की ओर से उसके अन्तर में उत्पन्न हुआ है वह बाह्य चेष्टाओं के अनुसार निकलता चला जाता है। यह सम्भव है कि उस के प्राकृतिक संवेग जो किसी विशेष प्रतिक्रिया से भीतर से बाहर निकल आते हैं। सबके सब बुरे न हों अपितु कुछेक उनके सदाचार के अनुरूप हों परन्तु गम्भीर चिन्तन और सूक्ष्म विचार के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यदि कुछ होता भी है तो वह प्राकृतिक उद्वेगों के

प्रकोप के कारण इस योग्य नहीं होता कि उस पर विश्वास किया जाए अपितु जिस ओर अधिकता है उसी ओर विश्वास का पात्र समझा जाएगा।

वास्तविक चरित्र—

अस्तु, ऐसे व्यक्ति के साथ शुद्ध और वास्तविक चरित्र का सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते जिस पर प्राकृतिक संवेग पशुओं, बच्चों और पागलों की नाई आतंक जमा लेते हैं; और जो अपना जीवन लगभग वन्य पशुओ के समान विताता है। वास्तव में उच्च या निम्न आचरण का काल उस समय प्रारम्भ होता है जब कि मनुष्य की ईश्वर प्रदत्त बुद्धि परिपक्व हो कर उसके द्वारा भलाई और बुराई अथवा दो भलाइयों और दो बुराइयों की श्रेणियों में अन्तर कर सके। पुनः सत्य मार्ग से विचलित होने पर अपने अन्तःकरण में एक प्रकार का खेद का अनुभव करे और दुष्कर्म करने से अपने अन्तः-करण में ग्लानि का अनुभव करे। यह मनुष्य के जीवन का दूसरा काल है जिस को परमेश्वर की पवित्रवाणी क़ुरान करीम ने नफ़्से-लव्वामा अर्थात् राजसिक वृत्ति की संज्ञा दी है।

किन्तु स्मरण रहे कि एक नीच मनुष्य को राजसिक अवस्था तक पहुँचाने के लिये केवल साधारण उपदेश पर्याप्त नहीं होते अपितु आवश्यक है कि उसको इतना ब्रह्मज्ञान मिले जिस से वह अपने जन्म को व्यर्थ और निरुद्देश्य न समझे ताकि ईश्वरीभ ज्ञान से उसके अन्दर शुद्ध आचरणों का प्रादुर्भाव हो। यही कारण है कि परमेश्वर ने साथ ही साथ सच्चिदानन्देश्वर के शुद्ध ज्ञान के लिए सचेत किया है और विश्वास दिलाया है कि प्रत्येक कर्म और आचरण का एक परिणाम होता है जो उस के जीवन में आध्यात्मिक सुख या दैवी प्रकोप और

अभिशाप का कारण बनता है और इस जीवन के पश्चात् परलोक में स्पष्ट रूप से अपना प्रभाव दिखाएगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि राजसिक स्तर पर मानव का बौद्धिक-ज्ञान और पवित्र आत्मीयता से इतना सम्बन्ध होता है कि उसे बुरे कर्म पर ग्लानि होती है और अपने आप को धिक्कारता है तथा सत्कर्म करने का आकांक्षी रहता है। यह वही अवस्था है जिस में मानव महान चरित्र का अधिष्ठाता बन जाता है।

इस स्थान पर मैं उचित समझता हूँ कि 'ख़ुल्क़' (अर्थात् चरित्र) शब्द की कुछ व्याख्या कर दूँ।

ख़ुल्क़ और ख़ल्क़:—

"ख़ुल्क़" और "ख़ल्क़" ये दोनों अरबी शब्द हैं। 'ख़ल्क़' का अर्थ है भौतिक (स्थूल) उत्पत्ति और 'ख़ुल्क़' का अर्थ है आध्यात्मिक (सूक्ष्म) उत्पत्ति। चूंकि आध्यात्मिक (सूक्ष्म) उत्पत्ति केवल प्राकृतिक उद्वेगों से ही विकसित नहीं होती अपितु इस के पूर्ण विकास के लिए सदाचार की परम-आवश्यकता है। इस लिये इस शब्द का चरित्र के अर्थों में ही प्रयोग हुआ है, प्राकृतिक संवेगों पर नहीं बोला गया।

यह बात भी स्पष्ट कर देने के योग्य है कि जिस प्रकार जन-साधारण का विचार है वि 'ख़ुल्क़' अर्थात् चरित्र केवल सहृदयता, नम्रता और विनय का ही नाम है, यह उनकी भूल है। अपितु बाह्य शारीरिक कुशलता के समानान्तर मानव के भीतर गुप्त रूप में जो व्यवस्था और प्रेरक शक्तियाँ निहित हैं उन सभी शक्तियों की प्रेरणाओं और अवस्थाओं का नाम 'ख़ुल्क़' अर्थात् चरित्र है। उदाहरणतया मनुष्य नेत्र से रोता है इसका प्रेरक उस के हृदय में एक करुणा का

स्थायीभाव है। जब वह शक्ति ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि के द्वारा अपने अवसर पर प्रयुक्त होती है तो उसे एक 'ख़ल्क़' अर्थात् आचरण की संज्ञा दी जायेगी।

इसी प्रकार मनुष्य हाथों से शत्रु का मुक़ाबला करता है तो उस क्रिया के पीछे हृदय में एक विशेष प्रकार का बल है जिस को वीरता कहते हैं। जब मनुष्य समय और स्थिति के अनुसार उस शक्ति का प्रयोग करता है तो उसका नाम भी 'खुल्क़' (आचरण) है। ठीक इस प्रकार ममुष्य कभी हाथों के द्वारा अत्याचारों से पीड़ित जनता को आक्रान्ताओं और अत्याचारियों से बचाना चाहता है अथवा निर्धनों और भूखों को कुछ देना चाहता है। अथवा किसी और प्रकार से मानव समाज की सेवा करना चाहता है। तो इस क्रिया के पीछे हृदय में एक शक्ति है जिस को दया कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य कभी अपने हाथों से अत्याचारी को दण्ड देता है तो इस क्रिया के पीछे हृदय में एक शक्ति है जिसे प्रतिहिंसा और प्रतिशोध कहते हैं। कभी मनुष्य आक्रमण का प्रत्युत्तर आक्रमण द्वारा नहीं देना चाहता और अत्याचारी को क्षमा करना चाहता है तो इस क्रिया के पीछे हृदय में एक शक्ति है जिसको क्षमा और सहिष्णुता कहते हैं। कभी कोई व्यक्ति मानव को लाभ पहुँचाने के लिये अपने हाथों से काम लेता है। वह पैरों से, हृदय अथवा मस्तिष्क से उसके कल्याण के निमित्त धन व्यय करता है तो इस क्रिया और संवेग के पीछे एक शक्ति होती है जिसे दान कहते हैं।

अस्तु, जब मनुष्य इन समस्त शक्तियों को समय और स्थिति और अवसर के अनुसार प्रयोग में लाता है तो उस समय उनको 'खुल्क़' अर्थात् चरित्र की संज्ञा दी जाएगी। परम ज्योतिस्स्रोत

सर्वान्तर्यामी परमेश्वर अपनी पवित्र वाणी क़ुरान शरीफ़ में कहता है—

इन्नका ल अला ख़ोलोक़िन अज़ीम।

अर्थात् हे हज़रत मुहम्मद साहिब ! आप महान् आचरण पर स्थित हैं। उक्त व्याख्या के अनुसार इसका अर्थ यही है कि महान् चरित्र की सभी विधाएं अर्थात् सत्य, दया, धैर्य, न्याय, वीरता, दान, उपकार तथा अनुग्रह इत्यादि सभी आप में एकत्र हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के भीतर जितनी शक्तियाँ निहित हैं जैसे शिष्टता, संकोच, ईमानदारी, प्रेम, लज्जा, दृढ़ प्रतिज्ञा, मर्यादापालन, बुद्धिमत्ता मध्यमिकता, सहृदयता और सहानुभूति तथा इसी प्रकार वीर भावना, दान, क्षमा, सहिष्णुता और धैर्य, अनुग्रह, सत्य एवं आज्ञापालन इत्यादि ये जब सभी प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ बुद्धि और ज्ञान के अंकुश और उसी के निर्देश के अनुसार अपने २ समय और स्थिति तथा अवसर पर व्यक्त की जाएंगी तो सब का नाम आचरण होगा। यह सभी आचरण वास्तव में मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाएं और प्राकृतिक संवेग हैं। ये केवल उस समय आचरण के नाम से अभिहित होते हैं जब स्थिति अवसर के अनुसार दृढ़ सङ्कल्प हो कर उनका प्रयोग किया जाए। चूंकि मनुष्य की प्राकृतिक विशेषताओं में से एक यह भी विशेषता है कि वह उन्नतिशील प्राणी है यही कारण है कि वह सत्य धर्म का अनुसरण करने और सत्संगों तथा उत्तम शिक्षा द्वारा ऐसे प्राकृतिक संवेगों को आचरण के रूप में रूपान्तरित कर देता है और यह कला मानव के अतिरिक्त किसी अन्य प्राणी के भाग्य में नहीं है।

तीन प्रकार के सुधार

प्रथम सुधार : प्राकृतिक अवस्था

अब हम पवित्र क़ुरान के तीन प्रकार के सुधारों में से प्रथम प्रकार के सुधार का जो निम्नकोटि की प्राकृतिक अवस्थाओं से सम्बन्धित है—उल्लेख करते हैं। यह सुधार चरित्र के विभिन्न क्षेत्रों में से वह क्षेत्र है जिसे शिष्टाचार कहा जाता है, अर्थात् वह शिष्टता जो पूर्ण रूप से जीवन में अपनाई जा कर राक्षसों को, उनकी प्राकृतिक अवस्थाओं, खाने-पीने, विवाह आदि का सम्बन्ध जोड़ने के सामाजिक कार्य क्षेत्रों में जीवन के माध्यमिक केन्द्र पर ले आती है और उस निकृष्ट जीवन से मुक्ति दिलाती है जो राक्षसों, पशुओं या अन्य हिंस्र पशुओं इत्यादि के समान होता है। जैसा कि इन समस्त शिष्टाचारों के विषय में परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरान शरीफ़ में कथन है—

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ وَبَنٰتُكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ
وَعَمّٰتُكُمْ وَخٰلٰتُكُمْ وَبَنٰتُ الْاَخِ وَبَنٰتُ
الْاُخْتِ وَاُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِىْٓ اَرْضَعْنَكُمْ وَ
اَخَوٰتُكُمْ مِّنَ الرَّضَاعَةِ وَاُمَّهٰتُ
نِسَآئِكُمْ وَرَبَآئِبُكُمُ الّٰتِىْ فِىْ حُجُوْرِكُمْ

مِنْ نِّسَآئِكُمُ الّٰتِيْ دَخَلْتُمْ بِهِنَّ فَاِنْ

لَّمْ تَكُوْنُوْا دَخَلْتُمْ بِهِنَّ فَلَا جُنَاحَ

عَلَيْكُمْ وَحَلَآئِلُ اَبْنَآئِكُمُ الَّذِيْنَ مِنْ

اَصْلَابِكُمْ وَ اَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ

اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ۚ وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا

النِّسَآءَ كَرْهًا ؕ وَلَا تَنْكِحُوْا مَا نَكَحَ

اٰبَآؤُكُمْ مِنَ نِّسَآءِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ط

اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ وَالْمُحْصَنٰتُ

مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ

اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَآ اٰتَيْتُمُوْا

هُنَّ اُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ

وَلَا مُتَّخِذِيْٓ اَخْدَانٍ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ

وَلَا تَقْتُلُوْا اَوْلَادَكُمْ لَا تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ

بُيُوْتِكُمْ حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَتُسَلِّمُوْا عَلٰى

اَهْلِهَا فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِيْهَا اَحَدًا فَلَا

تَدْخُلُوْهَا حَتّٰى يُؤْذَنَ لَكُمْ وَاِنْ قِيْلَ لَكُمُ

ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا هُوَ اَزْكٰى لَكُمْ ط وَاْتُوا الْبُيُوْتَ

مِنْ اَبْوَابِهَا وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا

بِاَحْسَنَ مِنْهَا اَوْ رُدُّوْهَا ۔ اِنَّمَا الْخَمْرُ

وَالْمَيْسِرُ وَالْاَنْصَابُ وَالْاَزْلَامُ رِجْسٌ

مِّنْ عَمَلِ الشَّيْطٰنِ فَاجْتَنِبُوْهُ لَعَلَّكُمْ

تُفْلِحُوْنَ ۔ حُرِّمَتْ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةُ وَالدَّمُ

وَلَحْمُ الْخِنْزِيْرِ وَمَآ اُهِلَّ لِغَيْرِ اللّٰهِ بِهٖ

وَالْمُنْخَنِقَةُ وَالْمَوْقُوْذَةُ وَالْمُتَرَدِّيَةُ

وَالنَّطِيْحَةُ وَمَآ اَكَلَ السَّبُعُ وَمَا ذُبِحَ

عَلَى النُّصُبِ يَسْئَلُوْنَكَ مَاذَآ اُحِلَّ

لَهُمْ قُلْ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ وَاِذَا

قِيْلَ لَكُمْ تَفَسَّحُوْا فِي الْمَجٰلِسِ فَافْسَحُوْا

وَاِذَا قِيْلَ انْشُزُوْا فَانْشُزُوْا وَكُلُوْا وَ

اشْرَبُوْا وَلَا تُسْرِفُوْا وَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا

وَثِيَابَكَ فَطَهِّرْ وَالرُّجْزَ فَاهْجُرْ وَ

اقْصِدْ فِيْ مَشْيِكَ وَاغْضُضْ مِنْ

صَوْتِكَ تَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى

وَاِنْ كُنْتُمْ جُنُبًا فَاطَّهَّرُوْا وَفِيْٓ اَمْوَالِهِمْ

حَقٌّ لِّلسَّآئِلِ وَالْمَحْرُوْمِ ط وَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا

تُقْسِطُوْا فِي الْيَتٰمٰى فَانْكِحُوْا مَا طَابَ لَكُمْ

مِّنَ النِّسَآءِ مَثْنٰى وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ ج فَ

اِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً

اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ط ذٰلِكَ اَدْنٰى اَلَّا

تَعُوْلُوْا وَاٰتُوا النِّسَآءَ صَدُقٰتِهِنَّ نِحْلَةً ط

"होर्रमत अलैकुम उम्महातोकुम् व बनातोकुम् व अख़वातोकुम् व अम्मातोकुम् व ख़ालातोकुम् व बनातुल अख़े व बनातुल-उख़्ते व उम्महातोकोमोल्लाती अर्ज़आना कुम् व अख़वातोकुम् मिनर्रज़ाअते व उम्मातो निसाएकुम् व रोबाएबोकोमोल्लातीफ़ी होजूरेकुम् मिन्निसाएकोमोल्लाती दख़लतुम बेहिन्ना फ़ इल्लम तकूनू दख़लतुम् बेहिन्ना फ़ला जुनाहा अलैकुम् व हलाएलो अबनाएकोमोल्लज़ीना मिन अस्लाबेकुम् व अन तजूमऊ बैनल्उख़्तैने इल्ला मा क़द् सलफ़। ला यहिल्लो लकुम् अन तरेसुन्निसाअ कर्हन । व ला तनूकेहू मा नकहा आबाओकुम् मिनन्निसाए इल्ला मा क़द् सलफ़ ।

ओहिल्ला लकोमुत्तय्येबातो । वल मुहसनातो मिनल् मोमिनाते वल मुहसनातो मिनल्लज़ीना ऊतुल्किताबा मिन क़ब्लेकुम् इज़ा आतैतोमूहुन्ना ओजूरहुन्ना मुहसेनीना ग़ैरा मुसाफ़ेहीना वला मुत्तख़ेज़ी अख़दान । व ला तक़्तोलू अनफ़ोसाकुम व ला तक़्तोलू औलादकुम् । ला तद्ख़ोलू बोयूतन ग़ैरा बोयूतेकुम् हत्ता तस्तानेसू । वला तोसल्लेमू अला अहलेहा । फ़ इल्लम् तजेदू फ़ीहा अहदन फ़ला तद्ख़ोलूहा हत्ता योऽज़ना लकुम् व इन क़ीला लकोमुर्जेऊ फ़र्जेऊ होवा अज़कालकुम । वअतुलबोयूता मिन् अबवाबेहा । व इज़ा हुय्यीतुम् फ़ तह्यतिन फ़ हय्यू बे अहसना मिनहा औ रुद्दूहा । इन्नमल् ख़मरो वल् मैसेरो वल् अन्साबो वल् अज़्लामो रिज़्सुन मिन अमलिश्शैताने फ़जतनेबूहो लअल्लकुम् तुफ़्लेहून । हुर्रेमत अलैको-मुलमैततो वद्दमो व लहमुल् ख़िन्ज़ीरे व मा ओहिल्ला लेग़ैरिल्लाहे बेही वल मुनख़नेक़तो वल् मौक़ूज़तो वल मुतरद्दियतो वन्नतीहतो वमा अकलस्सबोओ वमा ज़ोबेहा अलन्नोसोबे । यस्अलूनका मा ज़ा ओहेल्ला लहुम । क़ुल ओहेल्ला लकोमुत्तैय्येबातो । व इज़ा क़ीला लकुम् तफ़स्सहू फ़िल मजालिसे फ़फ़्सहू व इज़ा क़ीलन्शोज़ू फ़न्शोज़ू । कुलूवश्रबू वला तुस्रेफ़ू व क़ूलू क़ौलन सदीदा । व सियाबका फ़तह्हिर वर्रुज्ज़ा फ़ह्जुर । वग़्ज़ुज़ मिन सौतेका वक़्सिद फ़ी मशयेका । तज़व्वदू फ़ इन्ना ख़ैरज़्ज़ादित्तक़्वा । व इन् कुन् तुम् जोनोबन फ़त्तह्हरू । व फ़ी अमवालेहिम हक़्क़ुन लिस्साएले वल महरूमे । व इन ख़िफ़तुम् अल्ला तुक़्सेतू फ़िल्

यतामा फ़नकेहू मा ताबा लकुम्मिनन्निसाए मस्ना व सुलासा व रुबाग्र व इन ख़िफ़तुम् ग्रल्ला तग्रदेलू फ़वाहिदतन ग्रौ मा मलकत ऐमानोकुम । ज़ालेका ग्रद्ना ग्रल्ला तऊलू । व ग्रातुन्निसाग्र सदोक़ातेहिन्ना नेह्लतन ।"

अर्थात् तुम पर तुम्हारी माताएँ हराम की गईं। इसी प्रकार तुम्हारी पुत्रियाँ, तुम्हारी बहनें, तुम्हारी फूफियाँ, तुम्हारी मासियाँ, तुम्हारी भतीजियाँ, तुम्हारी भांजियाँ, तुम्हारी वे माताएँ जिन्हों ने तुम्हें दूध पिलाया, तुम्हारी दूध की सम्बन्धित बहनें, तुम्हारी सासें, तुम्हारी पत्नियों से पहले पति से लड़कियाँ जबकि उन पत्नियों से तुम सम्भोग कर चुके हो, इन सब से विवाह करना शास्त्र विरुद्ध ग्रौर हराम घोषित किया जाता है ग्रौर यदि तुमने उन पत्तियों से भोग नहीं किया तो (उनके पहले पति से उत्पन्न हुई पुत्रियों से विवाह कर लेने में) कोई दोष नहीं। इसी प्रकार तुम्हारे सगे पुत्रों की पत्नियों तथा दो सगी बहनों से एक ही समय में विवाह करना हराम किया गया। यह सब काम पहले जो होते थे, ग्राज तुम्हारे लिए शास्त्र विरुद्ध (हराम) घोषित किए जाते हैं। यह भी तुम्हारे लिए उचित न होगा कि स्त्रियों के बलात् स्वामी बन जाग्रो। यह भी उचित नहीं कि तुम उन स्त्रियों से विवाह करो जो तुम्हारे बापों की पत्नियां थीं। इस विधान के ग्राने से पहले पहले जो हो चुका सो हो चुका।

पावन ग्रौर चरित्रवान लड़कियों से जो तुम्हारी ग्रपनी सजातीय हों ग्रथवा तुम से पहले की उन जातियों में से हो जिनके पास परमे-

श्वरीय ग्रन्थ है शास्त्रोक्त विधि से अर्थात् महर* निश्चित करके विवाह करने की आज्ञा है। परन्तु व्यभिचार और अभिसार तथा अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने की कदापि आज्ञा नहीं।

नियोग का खण्डन

इस्लाम से पूर्व अरब के अज्ञानियों में जिस व्यक्ति के सन्तान नहीं होती थी उनमें से कतिपय लोगों में यह प्रथा प्रचलित थी कि उनकी पत्नी सन्तान के लिए दूसरे पुरुष से सम्भोग कराती थी। पवित्र क़ुरान ने इस प्रथा को शास्त्र विरुद्ध और हराम घोषित कर दिया। "मुसाफिहत" नियोग की ही इस कुप्रथा का दूसरा नाम है।

इसके अतिरिक्त परमात्मा का कथन है कि तुम आत्महत्या न करो। अपनी सन्तान का वध मत करो। दूसरे के घरों में पशुओं की तरह बिना आज्ञा के न चले जाओ। आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक है। जब तुम दूसरों के घरों में जाओ तो प्रवेश करने से पहले अस्सलाम अलैकुम (अभिवादन) कहो। यदि उन घरो में कोई न हो तो उनमें मत दाखिल हो जब तक कोई घर का स्वामी तुम्हें आज्ञा न दे, उस समय तक उन घरों में मत जाओ। यदि घर का स्वामी यह कहे कि तुम वापस चले जाओ, तो तुम वापस चले जाओ। घरों में दीवारों पर से कूद कर न जाया करो अपितु घरों

---

* महर वह जायदाद या नक़द रक़म है जो पति की ओर से पत्नि को विवाह के समय या विवाह के बाद दी जाती है। इसमें पत्नि को दिये गए अलंकार वस्त्रादि शामिल नहीं। न ही अन्य व्यय जो पत्नि पर होता है तथा प्रत्येक वह जायदाद जिसकी पत्नि स्वामी बनती है महर में शामिल नहीं।

अनुवादक।

में उनके नियत द्वार से जाओ। यदि तुम्हें कोई 'सलाम' कहे तो उस से बढ़कर और उत्तम विधि से उसको 'सलाम' कहो। मदिरा-पान, द्युत-क्रीड़ा, मूर्ति-पूजा और महूर्त-शकुनादिक का विचार यह सब अपवित्र और राक्षसीय कर्म हैं, इनसे बचो। मृतक पशु का मांस मत खाओ, सुअर का मांस मत खाओ, मूर्तियों के चढ़ावे मत खाओ, लाठी-डण्डे से मारा हुआ शिकार मत खाओ, गिरकर या ठोकर लगाकर स्वयं मरे हुए पशु का मांस मत खाओ, सींग लगाने से मरे हुए का मांस मत खाओ, हिंस्र पशु द्वारा फाड़ा हुआ मांस मत खाओ, मूर्ति पर चढ़ा हुआ मत खाओ; क्योंकि ये सब मृतक और मुर्दार हैं और यदि लोग प्रश्न करें कि फिर खाएँ क्या ? तो इसका उत्तर यह दे कि संसार की सभी पवित्र वस्तुएँ खाओ। केवल मुर्दार, मृतक और मृतक सदृश और अपवित्र वस्तुएँ मत खाओ। यदि सभाओं में तुम्हें खुल कर और विखर कर बैठने के लिए आदेश दिया जाए अर्थात् दूसरों को बैठने के लिए स्थान देने के लिए कहा जाए तो तत्क्षण उन्हें स्थान दे दो ताकि वे यथा विधि बैठ सकें। यदि तुम्हें कहा जाये कि तुम उठ जाओ तो ननु नच किये बिना चुप-चाप उठकर चले जाओ। मांस दालें, सब्जी इत्यादि सब वस्तुएँ जो पवित्र हों तुम्हें खाने की पूर्ण आज्ञा है। परन्तु एक ओर की अतिक्रमणता का निषेध है। आवश्यकता से अधिक खाने तथा अपव्यय से अपने आप को बचाओ। व्यर्थ और असभ्य बातें न करो। समय और स्थिति के अनुकूल बात किया करो। अपने वस्त्र स्वच्छ और पवित्र रखो। घर, गली तथा प्रत्येक वह स्थान जहाँ तुम्हारा बैठना उठना हो, गन्दगी और मैल-कुचैल और दुर्गन्ध से बचाओ अर्थात् स्नान करते रहो और घरों को स्वच्छ रखने की आदत डालो। न ही अधिक उच्च स्वर से बोलो और न ही धीमे स्वर में।

मध्यवर्गी मार्ग को अपनाओ। आवश्यकता और समय की याचना इसमें अपवाद है। पदयात्रा में अतिशीघ्र मत चलो, न ही मन्द गति से। मध्यमता को ध्यान में रखो। जब यात्रा करो तो सर्व प्रथम यात्रा का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया करो तथा यात्रा-सम्बन्धी सामग्री पर्याप्त मात्रा में ले लिया करो ताकि भिक्षा वृत्ति से बचो। पत्नि से भोग करने के उपरान्त अथवा स्वप्नदोष हो जाने पर स्नान कर लिया करो। जब भोजन करने लगो तो याचकों को भी कुछ भोजन दे दिया करो और कुत्ते को भी डाल दिया करो और पक्षियों इत्यादि को भी। यदि सम्भव हो सके तो अनाथ कन्याओं से जिनका तुमने पालन-पोषण किया है विवाह कर लिया करो परन्तु यदि तुम देखो कि चूँकि उनका कोई संरक्षक नहीं, अतः तुम्हारा मन उनपर अत्याचार करने के लिए विचलित हो जाए तो माता पिता और सम्बन्धियों वाली स्त्रियों से विवाह करो जो तुम्हारा मान करें और उनका तुम्हें भय रहे। एक, दो, तीन, चार तक कर सकते हो। परन्तु शर्त यह हैं कि न्याय करो। यदि तुम न्याय नहीं कर सकते तो एक ही करो चाहे तुम्हें आवश्यकता हो क्यों न हो। चार की संख्या जो निश्चित कर दी गई है वह इसलिए कि तुम पुरानी बुरी आदतों के वशीभूत होकर सीमा का उल्लंघन न कर सको अर्थात् सैकड़ों स्त्रियों से विवाह न करने लग जाओ अथवा व्यभिचार की ओर तुम्हारी वृत्ति न चली जाए। और जिन स्त्रियों से तुम विवाह करो उन्हें महर* दे दिया करो।

अस्तु, पवित्र क़ुरान की शिक्षा के अनुसार यह पहला सुधार है

*महर=वह धन अथवा जायदाद जो विवाह के पवित्र बन्धन में बन्ध जाने के पश्चात् पति की ओर से पत्नि को दी जाती है और यह देना अनिवार्य है।

जिसमें मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं को राक्षसीय वृत्तियों से हटा कर मानवीय सभ्यता की ओर प्रवृत्त किया गया है। इस शिक्षा में महान् आचरणों के किसी अंश का उल्लेख नहीं हुआ अपितु ये केवल मानवीय शिष्टाचार हैं।

अभी हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस शिक्षा की अनिवार्यता इसलिए अनुभव की गई थी कि हमारे परम प्रिय हज़रत मुहम्मद साहिब (परमात्मा उनपर विशेष अनुग्रह और कृपा की वृष्टि करे।) का जिस जाति में प्रादुर्भाव हुआ था वह अमानुषिकता में समस्त जगत से बढ़ी हुई थी। उसमें किसी प्रकार से मानवता का कोई भी चिह्न शेष नहीं रहा था। अतः यह आवश्यक था कि सर्व प्रथम उसे मानवता के वाह्य शिष्टाचार सिखाए जाते।

सुअर का निषेध :—

यहाँ पर एक विशेष बात याद रखना चाहिए कि सुअर का मांस खाने का जो निषेध किया गया है, परमात्मा ने प्रारम्भ से उसके नाम में ही हराम और निषेध की ओर संकेत कर दिया है। अरबी भाषा में 'सुअर' को ख़िन्ज़ीर कहते हैं। 'ख़िन्ज़ीर' का शब्द 'ख़िन्ज़' और 'अर' की सन्धि (अरबी भाषा की सन्धि) से बना है जिसके अर्थ यह हैं कि मैं इसको विकृत, नीच और पतित देखता हूँ। अतः इस पशु को आदिकाल से परमेश्वर की ओर से जो संज्ञा दी गई है वही इस की अपवित्रता और विकृति का ज्वलन्त प्रमाण है; और यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी भाषा में इस पशु को "सुअर" कहा जाता है। यह शब्द भी "सू" तथा "अर" इन दो शब्दों की सन्धि से बना है। अरबी शब्दकोष के अनुसार इसका अर्थ यह है कि इसको अत्यधिक अपवित्र और विकृत देखता हूँ।

इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं कि "सू" शब्द अरबी भाषा का हिन्दी में कैसे प्रयुक्त हो सकता है अथवा यह शब्द हिन्दी भाषा का क्योंकर हो सकता है? सो विदित होना चाहिए कि हमने अपनी पुस्तक मिननुर्रहमान में सिद्ध किया है कि संसार की समस्त भाषाओं की माता अरबी भाषा है। अरबी भाषा के शब्द प्रत्येक भाषा में एक दो नहीं अपितु सहस्रों सम्मिलित हैं। अस्तु "सू" अरबी भाषा का शब्द है अतएव हिन्दी में "सुअर" का अनुवाद नीच है, अत: इस पशु को नीच भी कहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस युग में जब कि समस्त संसार की भाषा अरबी थी, इस देश में इस पशु का यह नाम अरबी में प्रसिद्ध था जो "ख़िन्ज़ीर" का समानार्थक है। तत्पश्चात् आधुनिक युग तक वह नाम चला आया। हाँ, सम्भव है कि संस्कृत में इस का निकटवर्ती लगभग यही शब्द परिवर्तित हो कर कुछ और बन गया हो। परन्तु शुद्ध शब्द यही है क्योंकि अपने 'नाम' रखने का कारण साथ ही बताता है जिस पर 'ख़िन्ज़ीर' का शब्द उज्जवल प्रमाण और साक्षी है। इस शब्द के नीच, अपवित्र और अशुद्ध आदि जो अर्थ किए हैं, इन की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इस बात से कौन अनभिज्ञ है कि यह पशु प्रथम कोटि का विष्ठा-भक्षी, निर्लज्ज और अपूत है। अब इस के निषेध का कारण स्पष्ट है कि प्राकृतिक विधान यही चाहता है कि ऐसे अपवित्र, निर्लज्ज और दूषित पशु के मांस का प्रभाव भी शरीर और आत्मा पर अपवित्र और दोषपूर्ण ही हो क्योंकि हम सिद्ध कर चुके हैं कि भोजन का भी मनुष्य की आत्मा पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। अतएव यह बात असन्दिग्ध है कि ऐसे दुष्ट का प्रभाव भी बुरा ही पड़ेगा। उदाहरणतया यूनानी वैद्यों ने इस्लाम

सेपूर्व ही अपना मत दिया था कि इस पशु का मांस विशेष रूप से मानव की लज्जा को कम करके निर्लज्जता और नीचता को बढ़ाता है।

इसी प्रकार मृतक पशु के खाने का भी इसी लिए इस पवित्र धर्म-ग्रन्थ में निषेध है कि मृतक पशु भी खाने वाले को अपने रूप में लाता है और इस के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है। इसी प्रकार जिन पशुओं का रक्त पूर्ण रूप से नहीं निकल पाता और उन के शरीर में ही रहता है जैसे गला घोंटा हुआ या लाठी से मारा हुआ अथवा एक ही झटके में क़त्ल किया हुआ, ये सभी पशु वास्तव में मुर्दार मृतकों के विधान के अन्तर्गत आ जाते हैं। क्या मृतक का रक्त भीतर रहने से अपनी दशा में रह सकता है? नहीं, अपितु जलमिश्रित और आर्द्र होने से शीघ्र ही दूषित हो जाएगा और अपनी दुर्गन्ध से संपूर्ण मांस को विकृत करेगा। इस के अतिरिक्त रक्त के कीटाणु जो नवीन खोज से सिद्ध हुए हैं मर कर विषैली दुर्गन्ध शरीर में फैला देंगे।

दूसरा सुधार : चरित्र निर्माण

दूसरा भाग सुधार का पवित्र .क़ुरान की शिक्षानुसार यह है कि प्राकृतिक अवस्थाओं को उचित शर्तों के द्वारा प्रतिबन्ध लगाकर चरित्र के उच्चस्तर तक पहुँचाया जाए।

अतः स्मरण रहे कि यह भाग बहुत बड़ा है यदि हम इस भाग का विस्तारपूर्वक वर्णन करें अर्थात् समस्त उन आचरणों का इस स्थान पर उल्लेख करना चाहें जो पवित्र क़ुरान में वर्णन किए हैं तो यह लेख इतना विशाल हो जाएगा कि समय इस के दसवें भाग तक के लिए भी पर्याप्त न होगा, अतएव उच्चाचरणों की विभिन्न विधाओं

में से कुछेक का उदाहरण के रूप में यहाँ उल्लेख किया जायेगा।

अब ज्ञात होना चाहिए कि आचरण दो प्रकार के हैं। प्रथम वे आचरण जिन के द्वारा मनुष्य बुराई त्यागने के योग्य हो जाता है। दूसरे वे आचरण जिन के द्वारा मनुष्य कल्याणपथ ग्रहण करने के योग्य और उसके समर्थ हो जाता है।

विपथ और बुराई त्यागने के अन्तर्गत वे आचरण आ जाते हैं जिन के द्वारा मनुष्य प्रयत्न करता है। अपने मन, बचन, कर्म से एवं अपने हाथ, नेत्र, वाणी अथवा अन्य किसी अवयव से दूसरे के धन या मान या प्राणों को हानि पहुँचाने और अपमान करने का विचार न कर सके। इसी प्रकार सुविचार और कल्याण पथ के ग्रहण करने के अन्तर्गत वे आचरण आते हैं जिन के द्वारा मनुष्य प्रयत्न करता है कि अपने मन-वचन-कर्म एवं हाथ या अपने ज्ञान से अथवा किसी अन्य साधन से किसी दूसरे के धन या मान को लाभ पहुंचा सके, अथवा उस के प्रभुत्व और मान को प्रतिष्ठापित करने का निश्चय कर सके, अथवा यदि किसी ने उस पर कोई अत्याचार किया था तो वह अपराधी जो दण्ड का भागी था उस से उसे क्षमा कर सके, और इस प्रकार उस को दुःख, क्लेश, शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड से उसकी सुरक्षा करके उसे लाभ पहुँचा सके, अथवा उसको ऐसा दण्ड दे सके जो वास्तव में उस के लिए सर्वथा वरदान सिद्ध हो।

दुराचार का त्याग : जननेन्द्रिय नियन्त्रण

स्मरण रहे कि वे आचरण जो अविचार और बुराई त्यागने के लिए विधाता ने नियत किए हैं, वे अरबी भाषा में—जिस में समस्त मानवीय विचार, नियम और आचरण इत्यादि की अभिव्यक्ति के लिये पृथक् २ एक २ शब्द विद्यमान है—चार

संज्ञाओं से अभिहित हैं। अतः प्रथम आचरण एहसान (वासना का त्याग) है। "एहसान" (वासना त्याग का) विशेष अर्थ वह पवित्रता है जो स्त्री पुरुष की प्रजनन शक्ति से सम्बन्ध रखती है।

"मोहसिन या मोहसिना" उस पुरुष या स्त्रीको कहा जाएगा जो कि व्यभिचार अथवा उस को निकटवर्ती क्रियाओं से दूर रह कर उस व्यभिचार से अपने आप को नियन्त्रण में रखे क्योंकि जिसका परिणाम दोनों के लिये इस संसार में अपयश, धिक्कार और ताड़ना तथा दूसरे संसार में दैवी प्रकोप तथा अन्य सम्बन्धियों के लिये मानहानि और अप्रतिष्ठा जैसी भयानक हानियां हैं।

उदाहरणतयः जो व्यक्ति किसी की पत्नी से यह अनुचित कर्म करे अथवा व्यभिचार तो नहीं अपितु उस की निकटवर्ती क्रियाएं उस स्त्री-पुरुष दोनों से प्रकट हो जायें तो इस में कोई सन्देह नहीं कि उस लज्जावान सताए हुए पुरुष को ऐसी पत्नि को जो व्यभिचार कराने पर सहमत हो गई थी अथवा व्यभिचार भी हो चुका था तिलांजलि दे देनी पड़ेगी और यदि उस स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई कोई सन्तान होगी तो उन बच्चों के कारण भी भारी कलह का सामना होगा परन्तु घर का स्वामी उस नीच और पतित के कारण यह सब हानि सहन करेगा।

इस स्थान पर स्मरण रखना चाहिए कि यह आचरण जिस का नाम "एहसान" अथवा इफ़्फ़त है। अर्थात् पवित्र जीवन रहना। यह उसी अवस्था में आचरण कहलाएगा जब कि ऐसा व्यक्ति जो कुदृष्टि या व्यभिचार करने की शक्ति रखता हो, प्रकृति ने यह शक्तियां उसे प्रदान की हों जिन के द्वारा अपराध किया जा सकता है, इस दुष्कर्म से अपने को बचाए। यदि बाल्यावस्था होने या नपुंसक और नामर्द होने अथवा वृद्ध और जरठ होने के कारण जिस में यह शक्ति विद्यमान न हो तो ऐसी दशा में हम उस को इस आचरण की संज्ञा नहीं दे सकते जिस का नाम संयम "एहसान" अथवा इफ़्फ़त

है। उस में इतना अवश्य है कि "इफ़्फ़त" और "एहसान" अर्थात् संयम की इस में प्राकृतिक अवस्था है किन्तु हम वार वार लिख चुके हैं कि प्राकृतिक और स्वाभाविक प्रवृत्तियां आचरण और चरित्र की संज्ञा नहीं पा सकती अपितु उस समय चरित्र की सीमा में प्रवेश की जाएंगी जव कि बुद्धि के नियन्त्रण और उसी की छात्रछाया में आकर अपने समय और स्थिति पर प्रकट हों अथवा अभिव्यक्ति की सामर्थ्य उत्पन्न कर लें।

अतएव जैसा कि मैं लिख चुका हूं बच्चे और नपुंसक और ऐसे लोग जो अपने आप को किसी प्रकार नामर्द और नपुंसक वना लें इस आचरण के स्वामी कदापि नहीं कहला सकते। चाहे वह संयमी के रूप में अपना जीवनयापन करें परन्तु उन समस्त अवस्थाओं में इन के संयम और नियन्त्रण को प्राकृतिक स्वाभाविक अवस्था के नाम से ही अभिहित किया जाएगा इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। चूंकि यह घृणित कार्य तथा इस से मिलती जुलती निकटवर्ती क्रियाएं जिस प्रकार पुरुष से हो सकती है वैसे ही स्त्री से भी हो सकती हैं। अतः परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरान शरीफ़ में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही शिक्षा दी गई है :—

قُلْ لِلْمُؤْمِنِيْنَ يَغُضُّوْا مِنْ اَبْصَارِهِمْ وَ

يَحْفَظُوْا فُرُوْجَهُمْ ذٰلِكَ اَزْكٰى لَهُمْ ط وَ

قُلْ لِلْمُؤْمِنٰتِ يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ

وَ يَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَلَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ

إِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلَىٰ

جُيُوبِهِنَّ وَلَا يَضْرِبْنَ بِأَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا

يُخْفِينَ مِنْ زِينَتِهِنَّ وَتُوبُوا إِلَى اللَّهِ جَمِيعًا

أَيُّهَ الْمُؤْمِنُونَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ - وَلَا

تَقْرَبُوا الزِّنَا إِنَّهُ كَانَ فَاحِشَةً ط وَسَاءَ

سَبِيلًا ۝ وَلْيَسْتَعْفِفِ الَّذِينَ - لَا يَجِدُونَ

نِكَاحًا - وَرَهْبَانِيَّةً ابْتَدَعُوهَا مَا كَتَبْنَا

هَا عَلَيْهِمْ ط فَمَا رَعَوْهَا حَقَّ رِعَايَتِهَا ۝

"क़ुललिलमोऽमिनीना यग़ुज़्ज़ू मिन अवसारेहिम व यहफ़ज़ू फ़ुरूजहुम ज़ालिका अज़कालहुम । व क़ुललिल् मोऽमिनाते यग़ज़ुज़ना मिन अवसारेहिन्ना व यहफ़ज़्ना फ़ुरुजहुन्ना व ला युबदीना ज़ीनतहुन्ना इल्ला मा ज़हरा मिनहा । वल् यज़रिबना वे ख़ोमोरेहिन्ना अला जोयूबेहिन्ना व ला यज़रिबना वे अर्जुलेहिन्ना ले योऽलमा मा युख़फ़ीना मिन ज़ीनतेहिन्ना व तूबू

इलल्लाहे जमीअन अय्योहलमोऽमिनूना लअल्लकुम तुफ़्लेहून। वला तक़रबुज़्ज़िना इन्नहू काना फ़ाहिशह व साअ सबीला। वल यस्तअफ़िफ़िल्लज़ीना ला यजेदूना निकाहन व रोहबानियता निब्तदऊहा मा कतब्नाहा अलैहिम फ़ मा रऊहा हक़्क़ा रेयायतेहा।"

अर्थात् सज्जन और भक्तजनों को जा पुरुष हैं कह दो कि अपने नेत्रों को नामहरम* स्त्रियों को देखने से बचाए रखें और ऐसी स्त्रियों को बेपर्दे की दशा में न देखें जो कामवासना को उत्तेजित करने का कारण बन सकती हों और ऐसे अवसरों पर अपनी दृष्टि को इस प्रकार झुका लें मानों नेत्रों में निद्रा आ गई हो और अपने लज्जा के विशेष अंगों को विशेष कर प्रजोत्पादक अंगों को जैसे भी हो सके बचाएं। इसी प्रकार श्रुतपुटों को भी पराई स्त्रियों के स्वरों से सुरक्षित रखें। अर्थात् पराई स्त्रियों के गाने बजाने और मन-मोहक स्वरों को न सुनें। दृष्टि और हृदय की पवित्रता के लिए यह सिद्धान्त अत्युत्तम है। इसी प्रकार ईमानदार और मोमिन स्त्रियों को कह दो कि वे भी अपनी आंखों को नामहरम पुरुषों को देखने से बचाएं अर्थात् कामवासना को उत्तेजित करने वाले स्वरों को न सुने और अपने लज्जा के अंगों को ढांक कर रखें एवं अपने अलंकृत अवयवों को किसी नामहरम के सामने न खोलें तथा अपनी ओढ़नी को इस प्रकार ओढ़ें कि ग्रीवा से होती हुई शीश को भली प्रकार ढांक ले अर्थात् ग्रीवा और दोनों कान तथा शीश और कनपटियां सब चादर के पर्दे में रहें और अपने पैरों को भूमि पर नर्तकियों की तरह न मारें। यह

*नामहरम=वे स्त्रियां जिन से शास्त्रोक्त विधि से विवाह हो सकता है नामहरम कहलाती हैं। इसी प्रकार ऐसे पुरुषों के लिए भी यह "नामहरम" शब्द बोला जायगा। अनुवादक।

वह उपाय है कि जिस पर आचरण करने से पतन नहीं हो सकता। इसी प्रकार पतन से सुरक्षित रहने का दूसरा ढंग यह भी है कि परमेश्वर की ओर ध्यान दें और उस से प्रार्थना करें ताकि पंकिलगर्त में गिरने से वह बचावे और दुर्बलताओं से मुक्ति दे। व्यभिचार के निकट मत जाओ अर्थात् ऐसी बैठकों और सभाओं से दूर रहो जिस से यह विचार हृदय में उत्पन्न हो सकता है और उन ढंगों का प्रयोग न करो जिस से इस प्रकार का पाप या अपराध होने की सम्भावना हो। जो व्यभिचार करता है वह बुराई को उस की पराकाष्ठा तक पहुँचा देता है। व्यभिचार का मार्ग बहुत दूषित मार्ग है अर्थात् इष्ट की प्राप्ति में बाधक है और अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति के लिये भयानक अवरोध है। जो विवाह न कर सके तो वह संयम करे और उसके लिए व्रत रखे, भोजन कम करे अथवा अपनी शक्तियों के लिए कष्टदायक काम करे।

कतिपय विजातीय लोगों ने यह भी साधन निकाले हैं कि वह सदैव जानबूझ कर अविवाहित रहें अथवा नपुंसक बनें या किसी प्रकार से वैराग्य या संन्यास धारण करलें। किन्तु परमेश्वर ने मानव के लिए ऐसे नियम कदापि नहीं बनाए। तभी तो वे इन कुरीतियों और कुप्रथाओं को जीवन में पूर्णरूप से फलीभूत नहीं कर सके।

परमेश्वर का यह कथन है कि हमारा यह आदेश नहीं कि लोग नपुंसक बनें। यह इस बात की ओर संकेत है कि परमेश्वर की आज्ञा होती तो सभी लोग इसी आज्ञा पर चलने में समर्थ होते। इस दशा में मानव जाति की सन्तान की समाप्ति होकर आजसे बहुत पहले संसृति का अन्त होगया होता। यदि इसी प्रकार संयमी और पवित्रात्मी बनना हो कि मनुष्य अपना लिंग काट दे तो अपरोक्ष रूप में उस जगत स्रष्टा पर आक्षेप आता है जिसने वह लिंग बनाया। इसके अतिरिक्त जबकि पुण्य का आधार इस बात पर है कि एक शक्ति विद्यमान हो

और फिर मनुष्य परमेश्वर का भय हृदय में धारण करके उस शक्ति की अनुचित उत्तेजनाओं और दुरुपयोगों से सदैव सतर्क रहे और उससे उचित लाभ प्राप्त करके द्विगुणित पुण्य प्राप्त करे। अतः स्पष्ट है कि ऐसे अंग के नष्ट कर देने से दोनों पुण्यों से वंचित रहना पड़ा। पुण्य तो विरोधी शक्ति के होते हुए और फिर उस के विपरीत संघर्ष करने से मिलता है। किन्तु जिसमें बच्चे की न्याईं वह शक्ति ही नहीं रही, उसे पुण्य क्या मिलेगा ? क्या बच्चे को अपने संयम का पुण्य मिल सकता है ?

सच्चरित्र एवं संयम के पांच उपचार :-

इन आयतों (पवित्र .क़ुरान के श्लोकों) में परमेश्वर ने सच्चरित्रता और शुद्धाचरण की प्राप्ति के लिए केवल उत्कृष्ट उपदेशों द्वारा ही हमारा पथप्रदर्शन नहीं किया अपितु हमें संयमी और सच्चरित्र बनाने के लिए पांच उपचार भी बताए हैं वे यह हैं—

१. अपने नेत्रों को पराई स्त्रियों पर दृष्टि डालने से बचाना।

२. श्रुतपुटों को पराई नामहरम स्त्रियों के स्वर सुनने से बचाना।

३. नामहरमों परायों की कहानियां न सुनना।

४. ऐसी समस्त बैठकों और सभाओं से जिन में इस कुकर्म के होने की सम्भावना हो अपने आप को बचाना।

५. यदि विवाह न हो तो व्रत रखना आदि।

इस स्थान पर हम यह बात पूर्ण निश्चय से कहते हैं कि यह सुन्दर शिक्षा उन सभी साधनों सहित जो पवित्र .क़ुरान ने वर्णन किए हैं केवलमात्र इस्लाम से ही विशिष्ट है। इस स्थान पर यह बात स्मरण रखने योग्य है कि चूँकि मनुष्य की वह प्राकृतिक अवस्था जो काम

वासना का केन्द्र और उसका स्रोत है जिससे मनुष्य किसी महान् क्रांति और आमूल परिवर्तन के बिना विलग नहीं हो सकता, यही है कि इस की कामोत्तेजना और वासना, समय और स्थिति को अपने अनुकूल पाकर अपना नियन्त्रण रख नहीं सकती। अथवा यूँ कहो कि वह उत्तेजना के भयंकर आवेग के आवर्तन में फंस जाती है। इस लिए परमात्मा ने हमें यह शिक्षा नहीं दी कि हम पराई (नामहरम) स्त्रियों को निस्संकोच देख तो लिया करें, तथा उनके सभी अलंकारों और सौन्दर्य के भी दर्शन कर लिया करें, तथा उनके नृत्य आदि सभी उत्तेजक क्रियाकलापों को भी देख लिया करें, परन्तु पवित्र दृष्टि से देखें! इसी प्रकार न ही हमें यह शिक्षा दी कि हम उन पराई स्त्रियों के संगीत नृत्यादि सुन या देख लें। अपितु हमें यह आदेश दिया गया है कि हम नामहरम स्त्रियों को और उन के अलंकारों व सुन्दरता के स्थानों को बिल्कुल न देखें; न पवित्र हृदय से और न अपवित्र हृदय से। उनके मनमोहक स्वरों और उनके किस्से कहानियों को न सुनें। न पवित्र हृदय से और न ही अपवित्र हृदय से। अपितु हमें चाहिए कि न उन्हें देखें, न सुनें, और देखने सुनने से सदैव घृणा करें। उसी प्रकार जैसे मृतक पशु का मांस खाने से घृणा रखते हैं ताकि पथभ्रष्ट न होवें क्योंकि अनियन्त्रित दृष्टि से पतन की सम्भावना सदैव अनिवार्य रूप से बनी रहती है। अतः चूँकि परमात्मा चाहता है कि हमारा मन, हमारे नेत्र हमारा हृदय और हमारी भावनाएँ पवित्र रहें इसीलिए उसने यह सर्वोत्तम शिक्षा दी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि निरंकुशता पतन का कारण बन जाती है। यदि हम एक भूखे कुत्ते के अगे नर्म-नर्म और कोमल-कोमल रोटियां रख दें और फिर आशा यह रखें कि उस कुत्ते के मनमें उन रोटियों को खाने के लिए विचार तक उत्पन्न न होगा तो हमारा

यह विचार और मत अनुचित होगा। अतः परमेश्वर की यही शुभेच्छा थी कि कामेन्द्रियों को लुक छिपकर कुकर्म और व्यभिचार करने का कोई अवसर न दिया जाए और ऐसी कोई स्थिति ही पैदा न होने दी जाय जिससे इस प्रकार का भय उत्पन्न हो सके।

इस्लामी पर्दा की फ़िलासफ़ी--

इस्लामी पर्दा के भीतर यही तत्व छिपा हुआ है और परमेश्वर की पवित्र वाणी कुरान का भी यही आदेश है। पवित्र कुरान में पर्दा का अर्थ यह कदापि नहीं कि केवल स्त्रियों को बन्दियों की न्याईं बन्दी-गृह में रखा जाए। यह उन अल्पज्ञों और अज्ञानियों का मत है जिनको इस्लामी सिद्धांतों का ज्ञान नहीं। अपितु पर्दे का वास्तविक उद्देश्य यह है कि स्त्री, पुरुष दोनों को बिल्कुल (पशुओं के समान) स्वेच्छाचारी आँखें मिलाने और अपने सौंदर्य और अपने अलंकारों को उद्दण्डता पूर्वक दिखाने से रोका जाए क्योंकि इसमें स्त्री-पुरुष दोनों का कल्याण है।

अन्ततोगत्वा यह स्मरण रखना चाहिए कि अर्द्धनिमीलित नेत्रों के द्वारा पराई स्त्रियों पर कुदृष्टि डालने से अपने को बचा लेना तथा उचित दर्शनीय वस्तुओं को देखना, इस विधि को अरबी भाषा में "ग़ज़्ज़ेबसर" कहते हैं। प्रत्येक वह व्यक्ति जो अपने मन और हृदय को पवित्र रखना चाहता है उसके लिए यह उचित नहीं कि पशुओं के समान जिस ओर चाहे निरंकुश होकर दृष्टि उठा उठा कर देखता फिरे अपितु इसके लिए इस सामाजिक जीवन में नेत्रों को अर्द्धनिमीलित और दृष्टि को झुकाए रखने का अभ्यस्त होना अत्यावश्यक है। यह वह सुन्दर स्वभाव है जिससे उसकी यह प्राकृतिक प्रवृत्ति एक उच्च और महान् चरित्र के रूपमें रूपान्तरित हो जाएगी और उसकी सामाजिक अनिवार्यताओं में भी अन्तर नहीं पड़ेगा। यह वह आचरण है जिसको संयम और सच्चरित्रता कहते हैं।

उपनिधि की रक्षा—

बुराई को त्यागने के भेदों में से दूसरा भेद वह आचरण है जिस को उपनिधि की रक्षा, ईमानदारी एवं सत्यव्रत आदि की संज्ञा दी गई है दूसरे शब्दों में नीच और कलुषित विचारों के वशीभूत होकर अथवा धोखे से दूसरे का धन हथिया कर उसे दारुण दुःख देने पर उद्यत न होना ईमानदारी और सत्यव्रती का दूसरा नाम है।

स्मरण रहे कि ईमानदारी और सत्यव्रती होना मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं में से एक अवस्था है। इसी लिए एक दुधमुँहा शिशु अपनी छोटी आयु के कारण अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक सादगी पर होता है और इसी तरह अपनी अल्पायु होने के कारण उसमें अभी बुरी आदतें नहीं होतीं। उस समय दूसरे की वस्तु से उसे इतनी घृणा होती है कि वह दूसरे की माता का दूध भी बड़ी कठिनाई से पीता है और यदि उस समय जब कि उसे कोई ज्ञान, कोई सूझबूझ नहीं होती, कोई अन्य दाई नियुक्त न की गई हो तो होश आने पर उस को दूसरे का दूध पिलाना दुष्कर हो जाता है और अपने प्राणों को घोर संकटों में डाल लेता है और सम्भव है कि उस कष्ट से मृत्यु के निकट पहुँच जाए। किन्तु दूसरी स्त्री के दूध से स्वाभावतया घृणा करता है। इस घृणा का क्या कारण है? बस यही, कि वह माता को छोड़कर दूसरे की वस्तु की ओर ध्यान देने और उसमें रुचि लेने में स्वाभावता घृणा करता है। अब हम जब एक गम्भीर दृष्टि से बच्चे के इस स्वभाव को देखते हैं और उसपर विचार करते हैं, और विचार करते २ उसके स्वभाव की नींव तक चले जाते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह स्वभाव कि पराई वस्तु से बच्चा इतनी घृणा करता है यहां तक कि अपने प्राणों को खतरे में डाल लेता है, यही मूलप्रवृत्ति धरोहर को विधिपूर्वक रखने, ईमानदारी ,सत्यंव्रत आदि आचरण के मूल में उत्प्रेरक है। यहीं से इस आचरण का उद्रेक होता है।

अमानत और दयानत अर्थात् ईमानदारी और सत्यव्रत आदि चरित्र के क्षेत्र में कोई व्यक्ति उस समय तक सत्यव्रत नहीं ठहर सकता जब तक बच्चे की न्यईं पराए धन के विषय में भी वास्तविक घृणा उसके अन्त: करण में उत्पन्न न हो जाए। शिशु इस प्रवृत्ति का अपने उचित समय और स्थिति पर प्रयोग नहीं करता फलत: अपनी अज्ञानता के कारण कई प्रकार के कष्ट भोगता है। अत: उसकी यह वृत्ति केवल प्राकृतिक अवस्था है जिसको वह स्वत: ही प्रदर्शित करता है। अतएव वह क्रिया उस के आचरण का अंग नहीं बन सकती। यद्यपि मानवीय सृष्टि में अमानत और दयानत, ईमानदारी और सत्यव्रती के आचरण का मूल वही है तथापि जैसे एक शिशु इस अनुचित क्रिया से ईमानदार और सत्यव्रती नहीं कहला सकता उसी प्रकार वह व्यक्ति भी इस आचरण से विभूषित नहीं हो सकता जो इस प्राकृतिक मूलप्रवृत्ति को उचित अवसर पर प्रयुक्त नहीं करता। दयानतदार (सत्यव्रती) तथा अमीन (धरोहर को पूर्णरूप से यथाविधि रखने वाला) बनना अति कठिन है। जब तक मनुष्य बहुमुखी कर्त्तव्यों का पालन न करे तब तक दयानतदार तथा ईमानदार नहीं बन सकता। इस विषय में परमेश्वर ने उदाहरण के रूप में निम्नलिखित आयतों में अमानत का ढंग समझाया है और वह विधि यह है :—

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَاءَ أَمْوَالَكُمُ الَّتِي جَعَلَ

اللّٰهُ لَكُمْ قِيَامًا وَّارْزُقُوْهُمْ فِيْهَا وَاكْسُوْهُمْ

وَقُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۝ وَابْتَلُوا الْيَتٰمٰى

حَتّٰى إِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ فَإِنْ آنَسْتُمْ مِّنْهُمْ

رُشْدًا فَادْفَعُوْٓا اِلَيْهِمْ اَمْوَالَهُمْ وَلَا

تَاْكُلُوْهَآ اِسْرَافًا وَّبِدَارًا اَنْ يَّكْبَرُوْا

وَمَنْ كَانَ غَنِيًّا فَلْيَسْتَعْفِفْ ج وَمَنْ

كَانَ فَقِيْرًا فَلْيَاْكُلْ بِالْمَعْرُوْفِ ط فَاِذَا

دَفَعْتُمْ اِلَيْهِمْ اَمْوَالَهُمْ فَاَشْهِدُوْا

عَلَيْهِمْ وَكَفٰى بِاللّٰهِ حَسِيْبًا ۝ وَلْيَخْشَ

الَّذِيْنَ لَوْ تَرَكُوْا مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً

ضِعٰفًا خَافُوْا عَلَيْهِمْ فَلْيَتَّقُوا اللّٰهَ وَ

لْيَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ

يَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا

يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ط وَسَيَصْلَوْنَ

سَعِيْرًا ۝

"व ला तो३तुस्सुफ़हाअ अमवालकोमोल्लती जअल-ल्लाहो लकुम् क़ियामौं वर्ज़ोक़ूहुमफ़ीहावक्सूहुम व क़ूलू लहुम् क़ौलम्मअरूफ़ा। वबूतलुलयतामा हत्ता इज़ा बलग़ुन्निकाहा। फ़ इन आनस्तुम् मिनहुम् रुश्दन फ़द्फ़ऊ इलैहिम् अमवालहुम् वला तअकोलूहा इस्राफ़ौं व बेदारन अँय्यक्बोरू। व मन काना ग़नीयन फलयस्तअफ़िफ़ वमन काना फ़क़ीरन फ़लय३कुल बिल् म३रूफ़े। फ़ इज़ा दफ़३तुम इलैहिम अमवालहुम फ़ अशहेदू अलैहिम। व कफ़ा बिल्लाहे हसीबा। वल् यख़शल्लज़ीन लौ तरकूमिन ख़ल्फ़ेहिम् ज़ुर्रीयतन ज़ियाफ़न ख़ाफ़ूअलैहिम् फ़ल् यत्तक़ुल्लाहा वल् यक़ूलू क़ौलन सदीदा। इन्नल्लज़ीना या३कोलूना अमवाललयतामा ज़ुल्मन् इन्नमा या३कोलूना फ़ी बोतूनेहिम् नारा वसयस्लौना सईरा।"

अर्थात् :—यदि तुम में से कोई ऐसा धनवान हो जो अपने उस धन को सम्भालने और उसे उचित रीति से व्यय करने की बुद्धि न रखता हो, उदाहरणतया अनाथ अथवा अपरिपक्वबुद्धि व्यक्ति हो और सम्भावना यह हो कि वह अपनी हतबुद्धि से अपने धन को विनष्ट कर देगा तो तुम कोर्ट आफ़ वार्ड्स के रूप में वह समस्त धन अपने को उसका Trusti और रक्षक समझकर अपने अधिकार में ले लो और वह सम्पूर्ण धन जो व्यापार और रोज़गार धन्धे में लगाया जाता हो उन बुद्धिहीनों को मत दो। परन्तु इस में से आवश्यकतानुसार उनके भोजन और वस्त्रों के लिए कुछ धन दे दिया करो तथा उन्हें दीक्षा के रूप में भली बातें विधिपूर्वक समझाते रहो अर्थात् ऐसी बातें जिन से उन की बुद्धि और उन की ज्ञानवृद्धि होती हो और इस प्रकार

उनके पेशे और स्थिति के अनुरूप यथावश्यक उनकी दीक्षा पूर्ण हो जाए तथा अबोध, अज्ञानी और अनुभव-हीन न रहें। तात्पर्य यह कि यदि वे व्यापारी के पुत्र हैं तो व्यापार के ढंग उन को बताते रहो। यदि कोई अन्य पेशा रखते हैं तो उस पेशे के अनुसार उनको प्रशिक्षित करते रहो। इस प्रकार उनकी स्थिति के अनुकूल उन्हें साथ साथ शिक्षा देते जाओ और अपनी दी हुई शिक्षा की कभी २ परीक्षा भी लेते जाओ ताकि पता लगता रहे कि जो कुछ तुम ने शिक्षा दी है उसको उन्होंने समझा भी है अथवा नहीं। तत्पश्चात् जब वे विवाह के योग्य हो जावें या उनकी आयु लगभग १८ वर्ष की हो जावे और तुम यह अनुमान कर लो कि उन में धन को सम्भालने की बौद्धिक शक्ति उत्पन्न हो गई है तो उनका धन उनके सपुर्द कर दो। स्मरण रहे कि उनके धन का तुम से अपव्यय न होने पाए और न ही इस भय से जल्दी २ धन को खर्च करो कि यदि वे बड़े हो जाएंगे तो अपना माल ले लेंगे। जो व्यक्ति धनाढ्य हो उसके लिए यह उचित नहीं कि उन अनाथों के धन से सेवा की मज़दूरी ले परन्तु एक निर्धन व्यक्ति उचित मज़दूरी ले सकता है।

अरब में इस प्रकार के अमानतदारों और धरोहरों के संरक्षकों के लिए यह रीति प्रचलित थी कि अनाथों के स्वामी और मालिक उनके धन में से लेना चाहते तो प्रायः यह नियम रखते कि जो कुछ अनाथ के धन को व्यापार से लाभ होता उस में से स्वयं भी ले लेते। मूलधन को हानि नहीं पहुँचाते। अतः यह उसी विधि की ओर संकेत है कि तुम भी ऐसा कर सकते हो। तदुपरांत परमेश्वर का कथन है कि जब तुम अनाथों को धन वापिस करने लगो तो गवाहों की साक्षी लेकर उन्हें उनका धन वापिस करो। जो व्यक्ति ऐसी अवस्था में

मृत्यु को प्राप्त हो जबकि उसके बच्चे कोमल, दुर्बल और अल्पायु के हों तो उसके लिए यह उचित नहीं कि कोई ऐसी वसीयत (लिखित या मौखिक आदेश) करे जिससे बच्चों के अधिकारों को हानि पहुंचे। जो लोग इस प्रकार अनाथों का धन खाते हैं जिससे अनाथों पर अत्याचार होता हो वह धन नहीं अपितु अग्नि खाते हैं और अन्ततः भस्म कर देने वाली भयंकर अग्नि की विभीषिका में डाले जाएंगे।

अब देखो परमेश्वर ने दयानत और अमानत की कितनी विधियां बतलाई हैं। अतः वास्तविक अर्थों में अमानत और दयानत वही है जो इन सभी विधिओं के अनुसार हो। यदि बौद्धिक अंकुश के पूर्ण नियन्त्रण से इमानदारी और सत्यव्रत में उक्त सभी विधिओं को दृष्टि में न रखा गया हो तो ऐसी दयानत और अमानत में नाना रूप से बेईमानी का अंश छिपा होगा। इसी प्रकार दूसरे स्थान पर परमेश्वर का कथन है :—

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ

بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ

لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ

بِالْاِثْمِ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۞ اِنَّ اللّٰهَ

يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمَانَاتِ اِلٰى

أَهْلِهَا إِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْخَائِنِيْنَ

وَأَوْفُوا الْكَيْلَ إِذَا كِلْتُمْ وَزِنُوا

بِالْقِسْطَاسِ الْمُسْتَقِيْمِ ٥ وَلَا تَبْخَسُوا

النَّاسَ أَشْيَاءَهُمْ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ

مُفْسِدِيْنَ ٥ وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيْثَ

بِالطَّيِّبِ۔

"वला ताऽकोलू अमवालकुम बैनकुम बिल् वातिले व तुद्लू वेहा एललहुक्कासे लेताऽकोलू फ़रीक़म् मिन अमवालिन्नासे बिलइस्मेव अन्तुम् ताऽलमूना। इन्नल्लाहायामोरोकुम अन तुअद्दुल अमानाते इला अहलेहा । इन्नल्लाहाला योहिब्बुलखायनीन । व औफ़ुल कैला इज़ाकिल तुम वज़ेनू बिलक़िस्तासिलमुस्तक़ीम । वल तब्ख़सुन्नासा अशयाअहुम् व लातऽसौ लिलअर्ज़ें मुफ़सेदीना । वला ततबद्दलुल्-ख़बीसा वित्तैयेबे ।"

अर्थात् परस्पर एक दूसरे के धन को अनुचित रीति से मत खाया करो और न ही अपने धन को घूंस के रूप में पदाधिकारियों

तथा अधिकारी वर्ग को दिया करो ताकि उसके वल पर उन अधिकारियों की सहायता से दूसरे के धन को दवा लो । धरोहरों और थातियों को उनके स्वामियों को वापिस दे दिया करो। परमेश्वर बेईमानी करने वालों से मैत्री नहीं रखता। जव तुम मापो तो पूरा मापो और जव तोलो तो शुद्ध तुला से और पूरा तोलो और किसी प्रकार से लोगों को उनके धन आदि की हानि न पहुंचाओ तथा कलह के उद्देश्य से पृथ्वी पर भ्रमण न करो अर्थात् इस उद्देश्य से कि चोरी करें या डाका डालें अथवा किसी की जेव कतरें या किसी और अनुचित ढंग से पराए धन पर अधिकार कर लें। तत्पश्चात् कहा है कि श्रेष्ठ वस्तुओं के बदले में निकृष्ट और अपवित्र वस्तुएं न दिया करो अर्थात् जिस प्रकार दूसरों का धन दवा लेना निषिद्ध है उसी प्रकार दूषित और विकृत वस्तुओं का विक्रय अथवा उत्तम वस्तु के वदले निकृष्ट वस्तु देना भी वर्जित है।

इन समस्त आयतों में परमेश्वर ने वेईमानी और मिथ्या के सभी रूपों का उल्लेख कर दिया है। परमेश्वर का कथन प्रत्येक दृष्टि से ऐसा सम्पूर्ण है कि उस में बेईमानी और धोखे का कोई अंश शेष नहीं रहा। केवल यह नहीं कहा कि चोरी न करो। ताकि एक मूर्ख यह न समझ बैठे कि मेरे लिए केवल चोरी का निषेध है शेष सभी दुष्कर्म करने की खुली आज्ञा है। इस सर्वरूप संपूर्ण वाक्य में यह सूक्ष्म तत्व निहित है जिस के द्वारा समस्त अनुचित कर्मों और अनुचित गतिविधियों का निषेध कर दिया गया है। सारांश यह कि यदि किसी व्यक्ति में इस प्रकार शुद्ध रूप से दयानत और अमानत का विशिष्ट आचरण पाया नहीं जाता या उस के सभी नियमों की पालना नहीं करता तो ऐसा व्यक्ति यदि दयानत और अमानत के कुछेक नियमों का प्रदर्शन भी करे तो उसकी वह क्रिया दयानत के अन्तर्गत नहीं आ सकती,

प्रत्युत वह एक प्राकृतिक अवस्था पर आधारित स्वाभाविक क्रिया होगी जिस में बुद्धि तत्व तथा प्रज्ञा का सर्वथा अभाव होगा।

मैत्री भाव :—

चरित्र के क्षेत्र में बुराई को त्यागने के रूपों में से तीसरा रूप वह है जिसे पवित्र कुरान में "हुद्ना" और 'हौना' कहते हैं। अर्थात् दूसरों पर अत्याचार न करना तथा शारीरिक कष्ट न पहुंचाना और सरल स्वभाव का होना तथा मैत्री भाव से जीवन व्यतीत करना।

निस्संदेह मैत्री भाव एक उच्चकोटि का आचरण है जो मानवता के लिए अत्यावश्यक है। इस आचरण के अनुरूप शिशु में जिस प्राकृतिक मूल प्रवृत्ति का उद्भव होता है, जो विकसित होकर आचरण की संज्ञा पाता है; वह प्रेम तथा अनुराग है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य केवल अपनी जन्मजात अवस्था में अर्थात् उस अवस्था में जब कि मनुष्य में बुद्धिगत विशेष ज्ञान नहीं होता मैत्री के विषय को समझ नहीं सकता और न युद्ध और कलह के तत्व को समझ सकता है। अतः उस समय जो एक वृत्ति उस में मित्रता की पाई जाती है वही मैत्री भाव की जननी है किन्तु चूंकि बुद्धि, तर्क और हृदय की विशेष प्रेरणा से उसका स्फुरण नहीं होता अतएव उसे चरित्र नहीं कहा जा सकता। चरित्र तो तब कहलाएगा जबकि मनुष्य अपनी इच्छा से अपने आप को सरल स्वभाव बनाकर, मैत्री भाव के पवित्राचरण का उचित अवसर पर प्रयोग करे और स्थिति के विरुद्ध प्रयुक्त न करे। इस विषय में परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

وَأَصْلِحُوا ذَاتَ بَيْنِكُمْ اَلصُّلْحُ خَيْرٌ

وَإِنْ جَنَحُوا لِلسَّلْمِ فَاجْنَحْ لَهَا - وَعِبَادُ

الرَّحْمٰنِ الَّذِيْنَ يَمْشُوْنَ عَلَى الْاَرْضِ

هَوْنًا وَاِذَا مَرُّوْا بِاللَّغْوِ مَرُّوْا كِرَامًا۔

اِدْفَعْ بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ فَاِذَا الَّذِيْ

بَيْنَكَ وَبَيْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِيٌّ

حَمِيْمٌ ٥

"वअस्लेहू ज़ाता बैनकुम । अस्सोलोहो खैर । वइन जनहूलिस्सल्मे फ़जूनह ल हा । व इबादुर्रहमानिल्लज़ीना यमशूना अलल्अर्ज़ हौनन व इज़ा मर्रु बिल्लग़्वे मर्रु किरामा । इद्फ़अ बिल्लती हेया अहसनो । फ़इज़ल्लज़ीना बैनका व बैनहू अदावतुन कअन्नहू वलीयुन हमीम ।"

अर्थात् परस्पर मैत्री भाव रखो । मित्रता और सहयोग के पीछे बहुत बड़ा पुण्य और वरदान निहित है । जब वह विपक्षी सन्धि करना चाहें और मित्रता के लिए आगे बढ़ें तो तुम भी झुक जाओ । परमेश्वर के भक्तजन मैत्री भाव के साथ पृथ्वी पर चलते हैं । यदि वे कोई ऐसी अनुचित बात सुनें जो युद्ध का कारण अथवा उस की भूमिका हो तो महात्माओं की न्याईं उस की उपेक्षा करते हुये चले जाते हैं, और छोटी २ बातों पर लड़ना प्रारम्भ नहीं कर देते । अर्थात् जब तक कोई

महान कष्ट न पहुंचे उस समय तक कलह को अच्छा नहीं समझते। मैत्री भाव के अवसर को पहचानने का यही नियम है कि छोटी २ वातों का विचार न करें और सहिष्णु बनते हुए उन्हें क्षमा कर दें। इस आयत में "लग़्व" का जो शब्द आया है उसके विषय में विदित होना चाहिए कि अरवी भाषा में प्रत्येक अनुचित क्रिया को "लग़्व" कहते हैं। जैसे एक व्यक्ति शरारत से ऐसे अपशब्द कहे अथवा दुःख देने की इच्छा से उस से ऐसी क्रिया प्रकट हो कि वास्तव में उस से कोई हानि नहीं पहुंचती। अतः मैत्रीभाव के यह चिह्न हैं कि ऐसे दारुण दुःख और घृणित कष्ट से उपेक्षा करते हुए इस को हृदय में स्थान न दें और महात्माओं की नीति का पालन करें। किन्तु कष्ट केवल "लग़्व" की परिभाषा में सम्मिलित न हो प्रत्युत उस से वास्तव में जन या धन अथवा मान की हानि होती हो तो मैत्रीभाव के आचरण का इस से कोई सम्बन्ध नहीं अपितु यदि ऐसे अपराध को क्षमा किया जाए तो चरित्र की उस विधा का नाम क्षमा है। जिसका यदि परमेश्वर ने चाहा तो इस के पश्चात् वर्णन होगा। तदुपरान्त परमेश्वर का कथन है कि यदि कोई व्यक्ति शरारत से कुछ वकवाद करे तो भली प्रकार उसे मैत्रीभाव जन्य उत्तर दो तब इस विधि से शत्रु मित्र बन जाएगा। सारांश यह कि मैत्रीभाव के द्वारा इस प्रकार की क्षमा का अवसर केवल उस श्रेणी की मानसिक दुर्बलता होगी जिस से वास्तव में कोई हानि न हुई हो केवल शत्रु के अपशब्दों की वकवाद हो।

नर्मी का व्यवहार तथा मधुर वचन :—

बुराई को त्यागने का चौथा रूप नर्मी का व्यवहार तथा मधुर वचन है। आचरण का यह रूप जिस प्राकृतिक अवस्था से उत्पन्न होता है उस का नाम "तलाक़त" अर्थात् हंसमुख स्वभाव है। बच्चे

में जब तक बात करने की सामर्थ्य नहीं होती, उस समय तक वह नर्मी के व्यवहार और मधुर वचन के स्थान पर हंसमुख स्वभाव का प्रदर्शन करता है। यह उक्ति इस बात का प्रमाण है कि नर्मी की जड़, जहां से यह शाखा फूटती है हंसमुख स्वभाव है। हंसमुख होना एक शक्ति है और नर्मी एक आचरण है जो इस शक्ति को समय और स्थिति पर प्रयोग में लाने के लिए उत्पन्न होता है। इस विषय में परमेश्वर की शिक्षा यह है :—

وَقُولُوا لِلنَّاسِ حُسْنًا ۝ لَا يَسْخَرْ قَوْمٌ مِّنْ قَوْمٍ
عَسَىٰ أَنْ يَكُونُوا خَيْرًا مِّنْهُمْ وَلَا
نِسَاءٌ مِّنْ نِّسَاءٍ عَسَىٰ أَنْ يَكُنَّ
خَيْرًا مِّنْهُنَّ وَلَا تَلْمِزُوا أَنفُسَكُمْ وَلَا
تَنَابَزُوا بِالْأَلْقَابِ اجْتَنِبُوا كَثِيرًا
مِّنَ الظَّنِّ ط إِنَّ بَعْضَ الظَّنِّ إِثْمٌ وَلَا
تَجَسَّسُوا وَلَا يَغْتَب بَّعْضُكُم بَعْضًا ط
وَاتَّقُوا اللَّهَ إِنَّ اللَّهَ تَوَّابٌ رَّحِيمٌ ط

وَلَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُوْلًا ۝

व क़ूलू लिन्नासे हुस्नन। ला यसख़र क़ौमुम् मिन क़ौमिन् असा अँय्यकूनूख़ैरम् मिन्हुम वला निसाउम् मिन्निसाइन असा अँय्यकुन्ना ख़ैरम् मिन्हुन्ना वला तल्मेज़ू अनफ़ोसाकुम् वला तनाबज़ू बिल्अल्क़ाबे। इजतनेबू कसीरम्मिनज्ज़न्ने। इन्ना बाज़ज्ज़न्ने इस्मुन। वला तजस्ससू वला यग़तब बाज़ोकुम् बाज़न। वत्तक़ुल्लाहा इन्नल्लाह तव्वाबुर्रहीन। वला तक़्फ़ो मा लैसा लका बेही इल्मुन्। इन्नस्समुआ वल बसरा वल फ़ोआदा कुल्लो उलाएका काना अनहो मसऊला।

अर्थात् लोगों को वे बातें कहो जो वास्तव में श्रेष्ठ हों। एक पार्टी दूसरी पार्टी का तथा एक जाति दूसरी जाति का उपहास न उड़ाए। सम्भव है कि जिन का परिहास किया गया है वही महान् और प्रतिष्ठित हो। स्त्रियां परस्पर एक दूसरे का उपहास न उड़ाएं। हो सकता है कि जिस का उपहास किया गया है वही श्रेष्ठ हो। एक दूसरे पर दोषारोपण और लाञ्छन मत लगाओ। अपने लोगों के बुरे बुरे नाम मत रखो। द्वेषभाव की बातें मत करो और न ही दोषों को खोद २ कर पूछो। एक दूसरे के प्रति अपने हृदय में कुविचार न रखो और चुग़ली न करो। किसी पर वह लाञ्छन न लगाओ जिसका तुम्हारे पास प्रमाण नहीं। स्मरण रखो तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अवयव

से हिसाब लिया जाएगा। नेत्र, कान, हृदय प्रत्येक से पूछा जाएगा।

पुण्य प्राप्ति के प्रकार :–

बुराई को त्यागने के विभिन्न रूपों की ऊपर चर्चा हो चुकी है। अब यहाँ पर हम पुण्य प्राप्ति के प्रकारों का उल्लेख करेंगे।

आचरण के इन दो विरोधी रूपों में से दूसरा रूप पुण्य प्राप्ति के विषय में है (इसके भी कई भेद हैं) आचरण के इस रूप का प्रथम भेद क्षमा है।

क्षमा :—

अर्थात् किसी के अपराध को क्षमा कर देना। इसमें पुण्य यह है कि जो अपराध करता है वह एक हानि पहुंचाता है और इस योग्य होता है कि इसको हानि पहुँचाई जाए, दण्ड दिलाया जाए या बन्दी बनाया जाए अथवा जुर्माना किया जाए या स्वयं ही उसपर हाथ उठाया जाए। यदि क्षमा कर देना उचित हो तो उसे क्षमा कर दिया जाए। यह क्षमा कर देना उसके लिए पुण्य होगा। इस विषय में पवित्र क़ुरान की शिक्षा यह है।

وَالْكَاظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ عَنِ

النَّاسِ ط جَزَآءُ سَيِّئَةٍ سَيِّئَةٌ مِّثْلُهَا

فَمَنْ عَفٰى وَاَصْلَحَ فَاَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ط

वल काज़िमीनल ग़ैज़ा वल आफ़ीना अनिन्नासे। जज़ाओ सय्येअतिन सय्येअतुन मिस्लोहा। फ़ मन् अफ़ा व अस्लहा फ़ अजरोहू अलल्लाहे।

अर्थात् सज्जन व्यक्ति वे हैं जो क्रोध पी जाने के अवसर पर अपना क्रोध पी जाते हैं और क्षमा के अवसर पर अपराध को क्षमा कर देते हैं। अपराध का दण्ड उतना ही दिया जाए जितना अपराध किया गया हो। किन्तु जो व्यक्ति अपराध को क्षमा कर दे और ऐसे अवसर पर क्षमा करे कि उससे कुछ सुधार होता हो अर्थात् वह क्षमा ठीक अवसर पर हो, असमय पर न हो तो ऐसी क्षमा का उसे अवश्य पुण्य मिलेगा।

इस आयत से स्पष्ट है कि .कुरान की शिक्षा का यह अर्थ नहीं कि किसी भी परिस्थिति और किसी भी अवसर पर बुराई का विरोध न किया जाए या अपराधियों और अत्याचारियों को कभी भी दण्ड न दिया जाए अपितु तात्पर्य यह है कि उस समय देखना चाहिए कि वह समय और वह अवसर अपराध क्षमा करने का है अथवा दण्ड देने का ?

अतः ऐसे अवसर पर अपराधी तथा समाज के लिए जो साधन उचित और कल्याणकारी हो वही अपनाया जाए। यदा कदा एक अपराधी अपराध के क्षमा कर देने से पाप करने के लिए और ढीठ हो जाता है। इसी लिए परमेश्वर का कथन है कि अन्धों की तरह केवल अपराध क्षमा करने की वृत्ति न बना लो अपितु भली प्रकार विचार कर लिया करो कि वास्तविक भलाई किस बात में है। क्षमा करने में अथवा दण्ड देने में। अतः अवसर के अनुकूल जो भी कर्म हो किया जाए।

मानव समाज पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार कुछ व्यक्ति द्वेषभाव रखने में बड़े चतुर होते हैं यहां तक कि पीढ़ी दर पीढ़ी द्वेषों को स्मरण रखते हैं। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति क्षमा और नर्मी की वृत्ति को चरमसीमा तक पहुँचा देते हैं और बहुधा इस वृत्ति की अधिकता से बात निर्लज्जता तक पहुंच जाती है। ऐसी लज्जास्पद क्षमा, सहिष्णुता तथा सहनशीलता का उनसे प्रदर्शन

होता है जो लज्जा, मान और मर्यादा के सर्वथा विपरीत होता है। ऐसा करके वे अपनी प्रतिष्ठा पर स्वयं कलंक लगाते हैं। ऐसी क्षमा का परिणाम यह होता है कि सब लोग त्राहि २ कर उठते हैं। इन्हीं विकारों के उपलक्ष्य पवित्र .कुरान में प्रत्येक आचरण के लिए स्थिति और समय की शर्त लगा दी है तथा उसने ऐसे आचरणों को स्वीकर नहीं किया जो असमय प्रदर्शित हों।

स्मरण रहे कि केवल कोरी क्षमा को आचरण या चरित्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती अपितु वह एक प्राकृतिक शक्ति है जो बच्चों में भी पाई जाती है। बच्चे को जिसके हाथ से चोट लग जाए, चाहे वह शरारत से ही लगे, थोड़े समय के पश्चात् वह उस क्रोध को विस्मरण कर देता है और पुनः उसके पास प्रेम पूर्वक जाता है और ऐसे व्यक्ति ने यदि उसके वध करने का भी संकल्प किया हो तब भी केवल मधुर वचन से प्रसन्न हो जाता है। अत: ऐसी क्षमा किसी प्रकार आचरण के अन्तर्गत नहीं आ सकती। आचरण में उसकी गणना तब होगी जब हम समय और स्थिति पर उसका प्रयोग करेंगे। अन्यथा वह केवल प्राकृतिक अवस्था होगी। संसार में ऐसे मनुष्यों की संख्या अति न्यून है जो प्राकृतिक शक्ति और आचरण में भेद कर सकते हैं।

हम बार-बार लिख चुके हैं कि वास्तविक आचरण और प्राकृतिक अवस्थाओं में यह अन्तर है कि आचरण सदैव समय और स्थिति की अपेक्षा और उसकी पाबन्दी करता है। किन्तु प्राकृतिक शक्ति असमय में ही प्रकट हो जाती है। यूं तो पशुओं में गाय भी भोली भाली है और बकरी भी दिल की ग़रीब और कोमल हृदय है परन्तु हम केवल इसी कारण से यह नहीं कह सकते कि उनमें इस आचरण की विशेषता विद्यमान है क्योंकि उन्हें समय और स्थिति को समझने की

बुद्धि प्रकृति की ओर से नहीं मिली। पवित्र कुरान जो ईश्वरीय ज्ञान-तत्व और उसकी सत्य एवं सर्वरूप सम्पूर्ण वाणी है ने प्रत्येक आचरण के साथ समय और स्थिति की शर्त लगा दी है।

न्याय : उपकार : परिजनों की सहायता—

पुण्य प्राप्ति के आचरण का दूसरा भेद न्याय है। तीसरा भेद एक दूसरे पर उपकार, अनुग्रह करना तथा चौथा भेद निकट के सम्बन्धियों को दान और सहायता रूपमें धन और बल देकर उनके जीवन स्तर को उन्नत करना है। जैसा कि परमेश्वर का कथन है :—

إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْإِحْسَانِ
وَإِيتَاءِ ذِي الْقُرْبَىٰ وَيَنْهَىٰ عَنِ
الْفَحْشَاءِ وَالْمُنكَرِ وَالْبَغْيِ

इन्नल्लाहा यामोरो बिल अद्ले वल एहसाने व ईताएज़िलक़ुर्बा व यनूहा अनिलफ़हशाए वल मुनकरे वल बग़्ये।

अर्थात् परमेश्वर की यह आज्ञा है कि भलाई के बदले भलाई करो और यदि न्याय से बढ़कर अनुग्रह और उपकार का समय और स्थिति हो तो वह अनुग्रह और उपकार करो और यदि अनुग्रह से बढ़कर जैसे एक भाई दूसरे भाई से स्वाभावतया सहानुभूति करता है, यदि अवसर हो तो तुम भी उसी तरह सहानुभूति करो। परमेश्वर अति और सीमा का उल्लंघन करने से रोकता है। इसी प्रकार इन बातों का भी निषेध किया है कि अनुग्रह और उपकार के विषय

में अनुचित क्रियाएं मनुष्य से प्रदर्शित हों क्योंकि यह क्रियाएं तो बुद्धि संगत नहीं। इसका भी निषेध किया है कि स्थिति के विपरीत उपकार करो अथवा उचित अवसर पर उपकार न करो अथवा यह कि निकट के सम्बन्धियों को सहायतार्थ धन आदि देने में कुछ कमी करो अथवा अकारण ही असीम दया की वृष्टि करो। इन सब क्रियाओं से परमेश्वर ने रोका है। परमात्मा के इस पवित्र कथन में पुण्य प्राप्ति की तीन श्रेणियों का उल्लेख हुआ है। प्रथम यह कि भलाई के बदले भलाई की जाए। यह पुण्य निम्न कोटि का है और एक साधारण प्रकार का व्यक्ति भी इस आचरण का प्रदर्शन कर सकता है कि अपने भलाई करने वालों के साथ भलाई करता रहे।

दूसरी श्रेणी अपेक्षाकृत कुछ कठिन है और वह यह कि भलाई का प्रारम्भ स्वयं करना और बिना किसी बदले की इच्छा से उपकार के रूप में उसको लाभ पहुंचाना। इस प्रकार का चरित्र मध्यम कोटि का कहलाता है। अधिकांश मनुष्य निर्धनों पर उपकार करते हैं और उपकार व अनुग्रह में यह एक छिपा हुआ दोष है कि उपकार करने वाला समझता है कि मैंने उपकार किया है और कम से कम वह अपने उपकार के बदले में धन्यवाद अथवा आशीर्वाद का आकांक्षी रहता है और यदि उसका कोई उपकृत उसके विरुद्ध हो जाए तो उसको कृतघ्न कहा जाता है। उपकार करने वाला किसी समय अपने उपकार के कारण उस पर इतना भार डाल देता है जिसको वहन करने की उस में सामर्थ्य नहीं होती तथा उस उपकृत के प्रति उपकार जताता है। जैसा कि उपकार करने वालों को परमेश्वर सावधान करता हुआ कहता है—

لَا تُبْطِلُوْا صَدَقَاتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى

ला तुब्तेलू सदक़ातेकुमबिलमन्ने वल् अज़ा।

अर्थात् हे उपकार करने वालो! अपने दान को जिस का आधार दैन्य और दया होना चाहिए, उपकार और एहसान जतलाकर और अपने उपकार को स्मरण करा कर और दुःख देकर नष्ट न करो। अर्थात् "सदका" (दान) का शब्द 'सिद्क़' (सत्यता) से बनता है। अतः हृदय में सत्यता और उदारता न रहे तो वह "दान" दान नहीं कहला सकता अपितु वह एक प्रदर्शन मात्र क्रिया होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि उपकार करने वाले में यह एक दुर्बलता होती है कि कभी क्रोध में आकर अपना उपकार भी स्मरण करा देता है। यही कारण है कि परमेश्वर ने उपकार करने वालों को सावधान किया है।

पुण्य प्राप्ति की तीसरी श्रेणी परमेश्वर ने यह बतायी है कि उपकार करते हुए दिलमें उपकार का विचार तक न आए और न ही उसके बदले में धन्यवाद की अकांक्षा हो अपितु एक ऐसी सहानुभूति के संवेग से भलाई की गई हो जैसे एक निकटवर्ती सम्बन्धी होने के नाते माता केवल सहानुभूति की प्रेरणा से अपने पुत्र से भलाई करती है। पुण्य प्राप्ति की यह वह उत्कृष्ठ श्रेणी है जिसके आगे उन्नति करना सम्भव नहीं। किन्तु परमेश्वर ने इन समस्त पुण्य प्राप्ति के भेदों को समय और स्थिति से सम्बद्ध कर दिया है। उक्त आयत में स्पष्ट कह दिया है कि यदि यह भलाइयां अपने २ समय पर प्रयुक्त नहीं होंगी तो फिर यह बुराइयां बन जायेंगी और न्याय का स्थान निर्लज्जता ले लेगी अर्थात् सीमा का इस प्रकार अतिक्रमण करना कि अपवित्रता का रूप धारण कर ले और उपकार के स्थान पर

अनुपकार हो जाए। हमारी बुद्धि और आत्मा इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकती। यह सीमा का उल्लंघन परिजनों की सहायता के क्षेत्र में भी हानिकारक है। सारांश यह कि असमय की सहानुभूति कुप्रभाव डालती है।

वास्तव में "बग़िए" उस वर्षा को कहते हैं जो आवश्यकता से अधिक बरस जाए और कृषि को नष्ट कर दे। इसी प्रकार नियत कर्तव्य में न्यूनता रखने को भी "बग़िए कहते हैं। तथा उस में आवश्यकता से आगे चले जाना भी बग़िए अर्थात् अति कहलाएगा। अतः इन तीनों में से जो भी अवसर पर कार्य रूप में परिणत नहीं होगा वही दुराचार बन जाएगा। इसी लिए इन तीनों के साथ २ समय और स्थिति की शर्त लगा दी गयी है।

इस स्थान पर स्मरण रखना चाहिए कि केवल न्याय या उपकार या सहानुभूति अथवा परिजनों और स्वजनों की सहायता को आचरण और सदाचार नहीं कह सकते अपितु मनुष्य में यह सब प्राकृतिक अवस्थाएं और प्राकृतिक शक्तियां हैं जो कि बच्चों में बौद्धिक विकास से पूर्व ही विद्यमान होती है किन्तु आचरण और सदाचार हेतु "बुद्धि" शर्त है और यह शर्त भी है कि प्रत्येक प्राकृतिक शक्ति समय और स्थिति एवं उचित अवसर पर प्रयोग में लाई जाए।

इसके अतिरिक्त उपकार के विषय में और भी आवश्यक आदेशों का पवित्र .क़ुरान में निर्देश हुआ है और सब को अलिफ़ लाम के साथ जो विशिष्ट करने के लिए आता है प्रयुक्त करके समय और स्थिति की ओर संकेत किया है जैसा कि परमेश्वर का पवित्र .क़ुरान में कथन है:—

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا اَنْفِقُوْا مِنْ

طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَلَا تَيَمَّمُوا

الْخَبِيْثَ مِنْهُ وَلَا تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ

بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى كَالَّذِىْ يُنْفِقُ

مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ اَحْسِنُوْا اِنَّ

اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۝ اِنَّ الْاَبْرَارَ

يَشْرَبُوْنَ مِنْ كَاْسٍ كَانَ مِزَاجُهَا كَافُوْرًا

عَيْنًا يَّشْرَبُ بِهَا عِبَادُ اللّٰهِ يُفَجِّرُوْنَهَا

تَفْجِيْرًا - وَيُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلٰى

حُبِّهٖ مِسْكِيْنًا وَّيَتِيْمًا وَّاَسِيْرًا ۝

اِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ اللّٰهِ لَا نُرِيْدُ

مِنْكُمْ جَزَآءً وَّلَا شُكُوْرًا ۝ وَاٰتَى

الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِى الْقُرْبٰى وَ

الْيَتَامٰى وَالْمَسَاكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ

وَالسَّآئِلِيْنَ وَفِي الرِّقَابِ - اِذَآ

اَنْفَقُوْا لَمْ يُسْرِفُوْا وَلَمْ يَقْتُرُوْا

وَكَانَ بَيْنَ ذٰلِكَ قَوَامًا ؕ وَالَّذِيْنَ

يَصِلُوْنَ مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ

وَيَخْشَوْنَ رَبَّهُمْ وَيَخَافُوْنَ سُوْٓءَ

الْحِسَابِ ؕ وَفِيْٓ اَمْوَالِهِمْ حَقٌّ

لِلسَّآئِلِ وَالْمَحْرُوْمِ اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ

فِي السَّرَّآءِ وَالضَّرَّآءِ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا

رَزَقْنَاهُمْ سِرًّا وَّعَلَانِيَةً اِنَّمَا

الصَّدَقَاتُ لِلْفُقَرَآءِ وَالْمَسَاكِيْنِ

وَالْعَامِلِيْنَ عَلَيْهَا وَالْمُؤَلَّفَةِ

قُلُوْبُهُمْ وَفِي الرِّقَابِ وَالْغَارِمِيْنَ

وَفِي سَبِيلِ اللَّهِ وَابْنِ السَّبِيلِ فَرِيضَةً

مِّنَ اللَّهِ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ حَكِيمٌ ۔ لَنْ تَنَالُوا

الْبِرَّ حَتَّىٰ تُنْفِقُوا مِمَّا تُحِبُّونَ وَآتِ

ذَا الْقُرْبَىٰ حَقَّهُ وَالْمِسْكِينَ وَابْنَ السَّبِيلِ

وَلَا تُبَذِّرْ تَبْذِيرًا وَبِالْوَالِدَيْنِ إِحْسَانًا

وَبِذِي الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينِ

وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبَىٰ وَالْجَارِ

الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْبِ وَابْنِ

السَّبِيلِ وَمَا مَلَكَتْ أَيْمَانُكُمْ إِنَّ

اللَّهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُورًا ۝

نِ الَّذِينَ يَبْخَلُونَ وَيَأْمُرُونَ النَّاسَ

بِالْبُخْلِ وَيَكْتُمُونَ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِنْ

فَضْلِهِ ۗ

ईया अय्योहल्लज़ीना आमनू अनूफ़ेक़ू मिन् तय्येबाते मा कसबतुम वला तयम्ममुल् ख़बीसा मिनूहो। ला तुब्तेलू सदकुम बिल्मन्ने वल् अज़ा। कल्लज़ी युनूफ़ेक़ो मा लहू रेयाअन्नासे। अहसेनू इन्नल्लाहा योहिब्बुलमोहसेनीन। इन्नल् अबूरारा यश्रबूना मिन कऽसिन काना मिज़ाजोहा काफ़ूरा। ऐनँय्यश्रबो बिहा इबादुल्लाहे युफ़ज्जेरूनहा तफ़-जीरा। व योतूएमूनत्तआमा अला हुब्बेही मिस्कीनौं व यतीमौं व असीरा। इन्नमा नुतूएमोकुम लेवजूहिल्लाहे ला नुरीदो मिनूकुम् जज़ाऔं वला शोकूरा। व आतलूमाला अला हुब्बेही ज़विल कुर्बा मल् यतामा वल् मसाकीना वब्नस्सबीले वस्साएलीना वफ़िर्रिक़ाब। इज़ा अनफ़क़ू लम युस्रेफ़ू व लम यक़तोरू व काना बैना ज़ालेका क़वामा। वल्लज़ीना यसेलूना अमरल्लाहो बेही अँय्योसला व यख़्-शौना रब्बहुम व यख़ाफ़ूना सूअलहिसाब। व फ़ी अमूवाले-हिम् हक़्क़ुल्लिस्साएले वल् महरूमे। अल्लज़ीना योनूफ़ेक़ूना फ़िस्सर्राए वज़्ज़र्राए व अनूफ़क़ू मिम्मा रज़क़्नाहुम् सिरौं व अलानियतन। इन्नमस्सदक़ातो लिल्फ़ुक़राए वलूमसाकीना वलआमिलीना अलैहा वलमोअल्लफ़ते क़ुलूबोहुम् व फ़िर्रि-क़ाबे वल् ग़ारेमीना व फ़ी सबीलिल्लाहें वब्निस्सबीले फ़री-ज़तम्मिनल्लाहे वल्लाहो अलीमुन हकीम। लन् तनालुल्-बिर्रा हत्ता तुनूफ़ेक़ू मिम्मा तोहिब्बून। व आतेज़ल् क़ुर्बा हक़्क़हू वल् मिस्कीना वब्नस्सबीले व ला तोबज़्ज़िर तब्ज़ीरौं व बिलवालिदैने एहसानौं व बेज़िलक़ुर्बा वल यतामा वल् मसाकीना वल जारेज़िलक़ुर्बा वल् जारिल्जोनोबे वस्साहेबे बिल्जम्बे वबूनिस्सबीले व मा मलकत ऐमानोकुम्। इन्न-

ल्लाहा ला योहिब्बो मन काना मुख़्तालन फ़ख़ूरा। निल्ल-ज़ीना यब्ख़लूना व यऽमरूनन्नासा बिल् बुख़्ले व यक्तोमूना मा अताहोमुल्लहो मिन् फ़ज़्लेही।

अर्थात् हे शुद्धात्मीय जन तथा ईमान वालो! तुम उस धन में से लोगों को दान, उपकार अथवा पुण्यादि रूप में दो जो तुम्हारे सत्परिश्रम का सत्फल है। अर्थात् जिसमें चोरी, घूंस, किसी की खाई हुई और मारी हुई धरोहर अथवा ग़बन का धन अथवा अत्याचार के धनका मिश्रण न हो। यह कुविचार तुम्हारे निकट भी न आएं कि अपवित्र धन लोगों को दान रूपमें दे दो। दूसरी यह बात है कि अपने दान और प्रेम को उपकार जता कर और दुःख देकर नष्ट न करो अर्थात् अपने उपकृत पर यह कभी न प्रगट होने दो कि हमने तुझे यह दिया है और न उसको कष्ट पहुँचाओ क्योंकि इस प्रकार तुम्हारा किया हुआ उपकार अनुपकार होगा और न ऐसा ढंग अपनाओ कि तुम अपने धन को प्रदर्शन के लिए व्यय करो। परमेश्वर की सृष्टि पर उपकार करो क्योंकि परमात्मा उपकार और अनुग्रह करने वालों के साथ मैत्री भाव रखता है। जो लोग वास्तविक कल्याण करने वाले हैं, उनको वह प्याले पिलाए जायेंगे जिनमें काफूर मिश्रण होगा अर्थात् सांसारिक टीसें, आकांक्षाएं और अपवित्र इच्छाएं उनके हृदय से दूर कर दी जाएंगी।

काफ़ूर शब्द 'कफ़र' से बना है और 'कफ़र' अरबी भाषा के शब्दकोष में दबाने और ढांकने को कहते है। तात्पर्य यह कि उनके अनुचित आवेग दबाए जाएंगे और वह शुद्धात्मी हो जाएंगे और दिव्य ज्ञान की शीतलता उनको पहुँचेगी।

पुनः परमेश्वर का कथन है कि वे लोग प्रलय के दिन उस स्रोत

का जल पियेंगे जिसका वे आज अपने हाथ से निर्माण कर रहे है। इस स्थान पर स्वर्ग की सूक्ष्म दार्शनिकता का एक सूक्ष्म भेद बतलाया है जिसको समझना हो समझ ले।

तदुपरान्त कथन है कि वास्तविक अर्थों में भलाई करने वालों का यह स्वभाव होता है कि वे केवलमात्र परमेश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा के उपलक्ष वह भोजन जो स्वयं उन्हें रुचिकर है दीनों, अनाथों और बन्दियों को खिलाते हैं और कहते हैं कि हम तुम पर कोई उपकार नहीं करते प्रत्युत यह कर्म केवल इस लिए करते है कि परमेश्वर हमसे प्रसन्न होजाए। उसके दर्शनार्थ यह एक सेवा है। हम तुमसे न तो कोई बदला चाहते हैं और न ही हमें यह इच्छा है कि तुम हमारा धन्यवाद करते फिरो। यह इस बात की ओर संकेत है कि पुण्य प्राप्ति का तीसरा भेद जो सहानुभूति के संवेग से सम्बन्धित है उसी के अनुसार क्रिया करते हैं। सच्चे उपकारियों का यह स्वभाव होता है कि परमेश्वर की शुभ इच्छा के निमित्त अपने सम्बन्धियों को अपने धन से सहायता करते हैं तथा इस धन से अनाथों की देख रेख और उनके पालन पोषण तथा शिक्षा इत्यादि पर व्यय करते रहते हैं और निर्धनों तथा दीनों को भूख तथा दुर्भिक्ष आदि के दुःख से बचाते हैं। यात्रियों और याचकों की सेवा करते हैं। उस धन में दासों की मुक्ति और ऋणी लोगों को ऋण से छुटकारा दिलाने के लिए भी देते हैं। अपने दैनिक व्यय में न तो अपव्यय करते हैं और न ही कृपणाता दिखाते हैं प्रत्युत मध्यम मार्ग अपनाते हैं। मिलाप के स्थान पर मिलते हैं और परमेश्वर की सत्ता का उन्हें भय रहता है। उनके धन में याचकों और बेज़बान (जन्तुओं) का भी भाग होता है। बेज़बानों से तात्पर्य कुत्ते, बिल्लियां पक्षी बैल

गधे तथा अन्य जन्तु हैं। वे लोग कष्ट के दिनों में और आय के कम होने पर तथा दुर्भिक्ष के समय दान देने में कृपणता नहीं दिखाते अपितु आय के कम हो जाने के दिनों में भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार दान देते रहते हैं। वे कभी गुप्त रूपमें दान देते है और कभी प्रकट रूप में। गुप्त दान इसलिए ताकि प्रदर्शन से बचें और प्रकट रूपसे दान इसलिए देते हैं ताकि दूसरों को प्रेरणा मिले। दान और दक्षिणा इत्यादि पर जो धन दिया जाए उसमें इस वात की अपेक्षा होनी चाहिए कि सर्वप्रथम जितने भी दीन दुःखी हैं उन्हीं को दिया जाए। हाँ जो दान से एकत्र किए हुए धनकी देखरेख करें उनको भी दान और दक्षिणा के धन में से कुछ मिल सकता है; तथा किसी को बुराई से सुरक्षित रखने के लिए भी इस धन से दे सकते हैं। इसी प्रकार वह धन दासों की मुक्ति के लिए, दीनों, याचकों, ऋणियों तथा पीड़ितों की सहायता के लिए तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों में जो परमात्मा के लिए हों वह धन व्यय होगा। तुम वास्तविक पुण्य को उस समय तक कदापि नहीं प्राप्त कर सकते जव तक कि मानव समाज की सहानुभूति में वह धन व्यय न करो, जो तुम्हारा प्रिय धन है। निर्धनों का अधिकार उन्हें दो। दीन दुःखियों को दान दो। यात्रियों की सेवा करो तथा व्यर्थ के ख़र्च और अपव्यय से अपने आपको वचाओ अर्थात् विवाह के अवसर पर तथा नाना प्रकार के मनोरंजन के अवसरों पर और पुत्रादि के जन्म के रीति रिवाजों में जो धनका अपव्यय होता है उससे अपने आप को बचाओ। तुम माता पिता के साथ भलाई करो और सम्बन्धियों, अनाथों एवं निर्धनों और पड़ोसी जो तुम्हारा सम्बन्धी है तथा वह पड़ोसी जो सम्बन्धी नहीं भी है और यात्रियों से, नौकरों से, दासों से, घोड़ों, बकरियों, बैलों, गौओं तथा अन्य पशुओं आदि

से जो तुम्हारे अधिकार में हैं अच्छा व्यवहार करो क्योंकि परमेश्वर को जो तुम्हारा स्वामी है यह व्यवहार रुचिकर हैं। वह उपेक्षावृत्ति रखने वालों और स्वार्थियों से प्रेम नहीं करता और न ही ऐसे लोगों को पसन्द करता है जो कृपण हैं और दूसरे लोगों को भी कृपणता की प्रेरणा देते हैं तथा अपने धनको गुप्त रखते हैं अर्थात् दीन दुःखियों और याचकों को कहते हैं कि हमारे पास कुछ नहीं है।

वीरता :—

मनुष्य की विभिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं में से एक अवस्था वह होती है जिसे वीरता के नाम से अभिहित किया जाता है। जैसे एक दुधमुँहा बालक भी इसी शक्ति के कारण कभी अग्नि में हाथ डालने लगता है क्योंकि मनुष्य का बच्चा प्रारम्भ में अपने प्राकृतिक वरदान, मानवीय पराक्रम को भयभीत करने वाली किसी भी वस्तु से नहीं डरता। इस दशा में मनुष्य सर्वथा निर्भीक होकर शेरों तथा अन्य नाना वन्य हिंस्र पशुओं से भी टक्कर लेता है। कई व्यक्तियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए अकेला निकल आता है। लोग जानते हैं कि बड़ा पराक्रमी है किन्तु यह केवल प्राकृतिक अवस्था है जो दूसरे हिंस्र पशुओं में भी पाई जाती है यहां तक कि कुत्तों में भी पाई जाती है। वास्तविक वीरता जो समय और स्थिति के साथ विशिष्ट है तथा जो महान् चरित्र में से एक आचरण है, वह समय और स्थिति की उन क्रियाओं का नाम है जिनका उल्लेख परमेश्वर की पवित्रवाणी में इस प्रकार हुआ है :—

وَالصّٰبِرِيْنَ فِي الْبَأْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ وَ

حِيْنَ الْبَأْسِ. وَالَّذِيْنَ صَبَرُوا

ابْتِغَآءَ وَجْهِ رَبِّهِمْ. اَلَّذِيْنَ قَالَ

لَهُمُ النَّاسُ اِنَّ النَّاسَ قَدْ جَمَعُوْا

لَكُمْ فَاخْشَوْهُمْ فَزَادَهُمْ اِيْمَانًا

وَّقَالُوْا حَسْبُنَا اللّٰهُ وَنِعْمَ الْوَكِيْلُ ۝

وَلَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ

دِيَارِهِمْ بَطَرًا وَّرِئَآءَ النَّاسِ.

वस्साबेरीना फ़िल् बऽसाए वज़्ज़र्राए व हीनल् बऽसे ।
वल्लज़ीना सबरुव्तेग़ाअ बजहे रब्बेहिम् । अल्लज़ीना क़ाला
लहोमुन्नासो इन्नन्नासा क़द् जमऊ लकुम् फ़ख़शौहुम्
फ़ज़ादहुमों ईमानौं व क़ालू हस्बोनल्लाहो व नेऽमल् वकील।

वला तकूनू कल्लज़ीना ख़रजू मिन देयारेहिम् बतरौं व रेयाअन्नास ।

अर्थात् पराक्रमी वे हैं कि जब उनके लिए युद्ध का अवसर आये या उन पर कोई विपत्ति आ पड़े तो भागते नहीं। उनका धैर्य युद्ध और कठिनाईयों के समय परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए होता है और वे उसके दर्शनाभिलाषी होते हैं; वीरता प्रदर्शनमात्र उनका उद्देश्य नहीं होता। उनको इस बात के लिए भयभीत किया जाता है कि लोग तुम्हें दण्ड देने के लिए संगठित हो गए हैं अतः तुम लोगों से न डरो। वस्तुतः डराने से उनका ईमान और भी बढ़ता है। वे कहते हैं कि परमेश्वर हमारे लिए पर्याप्त है अर्थात् उनका शौर्य हिंस्र पशुओं और कुत्तों की तरह नहीं होता, जो केवल प्राकृतिक आवेग पर आधारित होता है और जो एक पक्ष की ओर झुका रहता है। अपितु उनका शौर्य द्विपक्षीय होता है अर्थात् कभी तो वे अपने निजी शौर्य से अपने मनोवेगों से संघर्ष करते हैं और विजयी होते हैं और कभी जब देखते हैं कि शत्रु के साथ युद्ध करना अनिवार्य है तो वे केवल मनः तृप्ति और अपने जोश को ठंडा करने के लिए नहीं अपितु सत्य की सहायता और उसकी रक्षा के निमित्त शत्रु के साथ युद्ध करते हैं। उनका शौर्य-प्रदर्शन परमेश्वर के भरोसे पर होता है अपने भरोसे पर नहीं। उनके वीरता-प्रदर्शन और पराक्रम के चमत्कारों में किसी प्रकार का आडम्बर अथवा आत्माभिमान नहीं होता और न ही अहंकार, अपितु हर प्रकार परमेश्वर की प्रसन्नता ही उनका परम लक्ष्य होता है।

इन आयतों में यह समझाया गया है कि वास्तविक शौर्य का मूल; धैर्य और दृढ़ता है और प्रत्येक मनोवेग अथवा आपत्ति जो शत्रु के समान आक्रमण करे उसके मुकाबले के समय दृढ़ रहना और हृदय की

दुर्बलता दिखाते हुए भाग न जाना यही वीरता है। अतः मनुष्य और हिंस्र पशुओं की वीरता में बहुत अन्तर है। हिंस्र पशु एक ही पक्ष में अपने आवेग और बर्बरता का प्रदर्शन करते हैं। परन्तु मानव, जो कि वास्तविक शौर्य का अधिष्ठाता है वह समय और स्थिति के अनुसार संघर्ष करता है अथवा उसे छोड़ता है।

सत्यता :—

मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं में से एक अवस्था जो उसकी स्वाभाविक विशेषता है, सत्यता है। मनुष्य के अनृत भाषण के पीछे कोई न कोई लोभ या मोह की वृत्ति अवश्य काम कर रही होती है। वह अनृत भाषण से अपने हृदय में घृणा और ग्लानि अनुभव करता है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति का अनृत स्पष्ट रूपसे सिद्ध होजाए, उस व्यक्ति से लोग न केवल अप्रसन्न ही होते हैं अपितु घृणा करने लगते हैं। परन्तु यह प्राकृतिक अवस्था चरित्र के अन्तर्गत नहीं आ सकती। इस पर तो बच्चे और पागल भी आचरण कर सकते हैं। अस्तु वास्तविकता यह है कि मनुष्य जब तक उन निकृष्ट मानवीय उद्देश्यों को तिलाञ्जलि नहीं देता जो सत्यता में बाधक होते हैं। तब तक वास्तविक रूपमें सत्यव्रती नहीं कहला सकता क्योंकि यदि मनुष्य केवल ऐसी बातों में सत्य बोले जिनमें कोई विशेष हानि नहीं और अपने मान या धन अथवा प्राणों की हानि के समय मिथ्या भाषण करे तथा सत्य भाषण के समय मौन रहे तो उसको पागलों और बच्चों की अपेक्षा कौन सी महानता मिलेगी? क्या पागल और अपरिपक्व बालक भी ऐसा सत्य नहीं बोलते? संसार में ऐसा कोई भी नहीं होगा जो बिना किसी प्रेरणा के व्यर्थ में झूठ बोले। अतः ऐसा सत्य जो किसी हानि के समय त्याग दिया जाए उसकी गणना वास्तविक आचरण में कदापि नहीं हो सकती। सत्य बोलने का महत्वपूर्ण अवसर वही है

जिसमें अपने प्राण, धन अथवा मानहानि का भय हो। इस विषय में परमेश्वर की शिक्षा यह है :—

فَاجْتَنِبُوا الرِّجْسَ مِنَ الْاَوْثَانِ وَ

اجْتَنِبُوْا قَوْلَ الزُّوْرِ ـ وَلَا يَاْبَ

الشُّهَدَآءُ اِذَا مَا دُعُوْا ـ وَلَا تَكْتُمُوْا

الشَّهَادَةَ وَمَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗ اٰثِمٌ

قَلْبُهٗ ـ وَاِذَا قُلْتُمْ فَاعْدِلُوْا وَلَوْ

كَانَ ذَا قُرْبٰى ـ كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ

شُهَدَآءَ لِلّٰهِ وَلَوْ عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ اَوِ الْوَالِدَيْنِ

وَالْاَقْرَبِيْنَ ـ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ

قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا ـ وَالصّٰدِقِيْنَ وَ

الصّٰدِقٰتِ-وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ وَتَوَاصَوْا

بِالصَّبْرِ-لَا يَشْهَدُوْنَ الزُّوْرَ-

फ़जतनेबुर्रिज्सा मिनल् औसाने वज्तनेबू क़ौलज़्ज़ूरे। वला याबश्शोहदाओ इज़ा मादोऊ। वला तक्तोमुश्शहादता व मय्यंक्तुमहा फ़ इन्नहू आसेमुन कल्बोहू। व इज़ा क़ुल्तुम फ़ऽदेलू वलौ काना ज़ल् क़ुर्बा। कूनूक़व्वामीना बिल्क़िस्ते शोहदाअ लिल्लाहे व लौ अला अनफ़ोसेकुम अविल् वालिदैने वल् अक़्रबीना व ला यज्रेमन्नाकुम शनआनो क़ौमिन अला अल्ला तऽदेलू। वस्सादेक़ीना वस्सादेक़ाते व तवासौ बिल्हक़्क़े व तवासौ बिस्सब्रे। ला यश्हदूनज़्ज़ूरा।

अनुवाद—मूर्ति पूजा और अनृत भाषण से बचो क्योंकि झूठ भी एक ऐसी मूर्ति है जिस पर विश्वास करने वाला परमेश्वर का विश्वास त्याग देता है। अतः अनृत भाषण से परमेश्वर भी हाथ से खोया जाता है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर का कथन है कि जब सत्य की साक्षी देने के लिए बुलाए जाओ तो जाने से इनकार मत करो तथा शुद्ध और सच्ची गवाही को गुप्त मत रखो। जो सच्ची गवाही को छिपाये गा उसका हृदय पापी है। जब तुम बोलो तो तुम्हारी वाणी पर भी वही बात आए जो सर्वथा सत्य और न्याय की बात हो। चाहे तुम अपने किसी निकटवर्ती सम्बन्धी की ही साक्षी क्यों न दो। सत्य

और न्याय पर दृढ़ रहो। तुम्हारी प्रत्येक साक्षी परमेश्वर के लिए हो। झूठ मत बोलो। चाहे सच बोलने से प्राणों को हानि पहुँचे अथवा उससे तुम्हारे माता पिता तथा पुत्रादि अन्य निकटवर्ती सम्बन्धियों को हानि पहुँचे। यह आवश्यक है कि किसी जाति अथवा पार्टी की शत्रुता तुम्हें सच्ची गवाही से न रोके। सत्यव्रत पुरुष तथा सत्यव्रत स्त्रियां महान् पुण्य पायेंगी। ऐसे लोगों का स्वभाव है कि दूसरों को भी सत्य भाषण की प्रेरणा देते हैं और अनृत-भाषियों की संगति में नहीं बैठते।

धैर्य और सहिष्णुता :—

मानवीय प्राकृतिक अवस्थाओं में सहिष्णुता और धैर्य भी एक गुण है जो उस को उन कष्टों, बीमारियों और दुःखों के समय धारण करना पड़ता है जो उस पर सदैव आक्रमणकारी रहते हैं। मनुष्य बहुत कुछ रोने पीटने और विलाप करने के पश्चात धैर्य धारण करता है परन्तु यह ज्ञात होना चाहिए कि परमेश्वर की अमोघ वाणी पवित्र क़ुरान के अनुसार वह धैर्य चरित्र के अन्तर्गत नहीं आ सकता परन्तु वह ऐसी अवस्था है जो शिथिल एवं क्लांत हो जाने के पश्चात आवश्यकतानुसार ही प्रकट हो जाती है अर्थात् मनुष्य के प्राकृतिक गुणों में से यह भी एक गुण है कि वह कष्ट आते समय पहले रोता, पीटता और, सर पटकता है। अन्ततोगत्वा बहुत सा ज्वर निकल जाने पर आवेग कम हो जाता है और अपनी चरमसीमा तक पहुँच कर पीछे हटना पड़ता है। अतः यह दोनों क्रियाएं प्राकृतिक अवस्थाएं हैं। उन का चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं। वस्तुतः इस से सम्बन्धित आचरण यह है कि जब कोई वस्तु हाथ से जाती रहे अथवा नष्ट हो जाए तो उस वस्तु को परमेश्वर की धरोहर समझ कर कोई उपालम्भ न करे और

यह कहे कि यह वस्तु परमेश्वर की थी, परमेश्वर ने ही वापस ले ली, इस प्रकार उसकी प्रसन्नता के साथ हम भी प्रसन्न हैं। इस विषय में परमेश्वर की पवित्र वाणी .कुरान शरीफ़ हमें यह शिक्षा देती है :—

وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَ
الْجُوْعِ وَنَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَالْاَنْفُسِ
وَالثَّمَرَاتِ وَبَشِّرِ الصّٰبِرِيْنَ ۝ الَّذِيْنَ
اِذَآ اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ قَالُوْٓا اِنَّا لِلّٰهِ
وَاِنَّآ اِلَيْهِ رَاجِعُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ هُمُ
الْمُهْتَدُوْنَ ۝

वला नब्लोवन्नाकुम् बेशैइम्मिनल्ख़ौफ़े वल् जुए व नक़्सिम्मिनल् अम्वाले वल् अन्फ़ोसे वस्समराते। व बश्शेरिस्साबेरीन। अल्लज़ीना इज़ा असाबतहुम्मुसीबतुन क़ालू इन्नालिलाहे व इन्ना इलैहे राजेऊन। उलाएका अलैहिम सलवातुम्मिर्रब्बेहिम व रहमतुन्। व उलाएका होमुलमोहतदून।

अर्थात् हे भक्तजनों ! हम तुम्हारी इस प्रकार परीक्षा लेते रहेंगे कि कभी किसी भयानक परिस्थिति का तुम्हें सामना करना पड़ेगा और कभी क्षुधा पीड़ा से तुम्हें पीड़ित किया जाएगा और कभी तुम्हारी जायदाद और धन नष्ट कर दिया जाएगा। कभी प्राणों पर संकट आएगा, और कभी तुम्हें अपने परिश्रम का फल नहीं मिलेगा या इच्छानुसार सफलता नहीं मिलेगी। कभी तुम्हारी प्रिय सन्तान काल का ग्रास बनेगी। परन्तु उन लोगों को सूचना देदो कि जब उन को कोई कष्ट पहुँचे तो वे कहते हैं कि हम परमेश्वर की वस्तु हैं और उस की धरोहर हैं, उस की उपनिधि हैं; अतः यही उचित है कि जिस की धरोहर हो, जिस की उपनिधि हो उसी की ओर जाए। यही लोग हैं जिन पर परमेश्वर की कृपावृष्टि और वरदानों की वर्षा होती है तथा यही वे लोग हैं जिन को परमेश्वर का सरल मार्ग प्राप्त हो गया।

सारांश यह कि इस आचरण का नाम धैर्य, सहिष्णुता और ईश्वरेच्छा पर अपनी इच्छा है तथा एक प्रकार से इसका दूसरा नाम न्याय भी है क्योंकि जब कि परमेश्वर मनुष्य के समस्त जीवन में उस की इच्छानुसार कर्म करता है तथा सहस्रों अन्य बातें उस की इच्छा के अनुसार प्रदर्शित करता है और परमेश्वर ने मनुष्य की इच्छानुसार इतने पुरस्कार और उत्तम वस्तुएं उसे दे रखी हैं कि मनुष्य उस की गणना भी नहीं कर सकता तो फिर यह शर्त न्याय नहीं कहला सकती कि यदि वह कभी अपनी मर्ज़ी और इच्छा मनवाना चाहे तो मनुष्य वहां से विचलित हो जाए और उसकी इच्छा पर प्रसन्न न हो और ननुनच करे अथवा अधर्मी या पथभ्रष्ट हो जाए।

सहानुभूति :-

मानव की प्राकृतिक अवस्थाओं में से एक अवस्था लोक सहानुभूति भी है जो उस की प्रवृत्ति में निहित है। जातीय पक्ष का आवेग

स्वाभाविक रूप से प्रत्येक जाति के व्यक्तियों में पाया जाता है और प्रायः देखा गया है कि बहुत से लोग अपने स्वाभाविक मनोंवेगों के अधीन होकर अपनी जातीय सहानुभूति के निमित्त दूसरों पर अत्याचार करने लगते हैं जैसे वे उन्हें मानव ही नहीं समझते । अतः इस अवस्था को आचरण नहीं कह सकते। यह केवल एक प्राकृतिक मूल-प्रवृत्ति है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो यह प्राकृतिक अवस्था कौओं इत्यादि पक्षियों में भी पाई जाती है कि एक कौए के मरने पर सहस्रों कौए एकत्रित हो जाते हैं किन्तु यह वृत्ति मानवीय चरित्र में उस समय सम्मिलित होगी जब कि सहानुभूति न्यायानुकूल समय और स्थिति के अनुसार और उचित अवसर पर हो, उस समय यह एक महान् आचरण होगा जिसका नाम अरबी भाषा में मवासात तथा फारसी में हमदर्दी और हिन्दी में सहानुभूति है । इसी की ओर परमेश्वर की अमोघ वाणी पवित्र क़ुरान में कथन है :—

تَعَاوَنُوا عَلَى الْبِرِّ وَالتَّقْوٰى وَلَا تَعَاوَنُوا

عَلَى الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ ـ وَلَا تَهِنُوا فِی

ابْتِغَاءِ الْقَوْمِ ـ وَلَا تَكُنْ لِّلْخَائِنِيْنَ

خَصِيْمًا ـ وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِيْنَ

يَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَهُمْ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ
مَنْ كَانَ خَوَّانًا اَثِيْمًا۔

तआवनू अलल्बिर्रि वत्तक़्वा व ला तआवनू अलल् इस्मे वल् उद्वान् । वला तहेनू फ़िब्तेग़ाअल्क़ौमे वला तकुल्लिल्ख़ाएनीना ख़सीमा । वला तोजादिल अनिल्ल-ज़ीना यख़तानूना अनुफ़ोसाहुम इन्नल्लाहा ला योहिब्बो मन काना ख़व्वानन असीमा ।

अर्थात् अपनी जाति की सहानुभूति और सहायता केवल भले कर्मों में ही करनी चाहिए। अत्याचारों और अनुचित कर्मों में उनकी सहायता कदापि नहीं करनी चाहिए । इस प्रकार जाति की सहानुभूति में सदैव सतर्क रहो । उसमें थको मत । धरोहरों को खा जाने वालों के पक्ष में मत झगड़ो अर्थात् उनका पक्षपात न करो । जो बेईमानी करने से दूर नहीं होते और प्रायश्चित् नहीं करते, परमेश्वर ऐसे बेईमानों को पसन्द नहीं करता, और उनसे परमात्मा की मित्रता नहीं हो सकती।

श्रेष्ठ और सर्वशक्तिमान सत्ता की खोज :—

मानव की नाना प्राकृतिक अवस्थाओं में एक अवस्था सर्व-शक्तिमान की खोज है । जो उसके स्वभाव का एक अनिवार्य अंग है, जिसके लिए मनुष्य के अन्तःकरण में एक आकर्षण विद्यमान है तथा इस खोज और उत्सुकता का प्रभाव उसी समय से होने लगता है जबकि शिशु अपनी माता के गर्भ से बाहर आता है क्योंकि बालक

जन्म लेते ही सर्वप्रथम अपनी आध्यात्मिक विशेषता का जो प्रदर्शन करता है वह यही है कि माता की ओर झुकता है और स्वाभाविक रूप से माता के प्रति प्रेम रखता है और ज्यों ज्यों उसकी ज्ञानेंद्रियों का विकास होता जाता है त्यों २ उसकी प्रकृति का भी निखार होता जाता है। यह प्रेमाकर्षण जो उसके अन्तःकरण में निहित था अपना रंग-रूप, आकार-प्रकार और प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाता चला जाता है। परिणाम स्वरूप यह होता है कि अपनी माता की गोद के अतिरिक्त उसे अन्यत्र कहीं भी चैन नहीं पड़ता और पूरा विश्राम उसे उसी की छत्रछाया में होता है। यदि माता से पृथक् कर दिया जाए और दूर डाल दिया जाए तो उसका समस्त सुख समाप्त हो जाता है। यदि उसके सम्मुख अत्युत्तम वस्तुओं का ढेर भी लगा दिया जाए तो भी वह अपनी वास्तविक प्रसन्नता और सच्ची खुशहाली अपनी माता की गोद में ही देखता है। उसके विना किसी प्रकार का आराम नहीं पाता। अतः वह प्रेमाकर्षण जो उसको अपनी माता के प्रति उत्पन्न होता है वह क्या वस्तु है? वास्तव में यह वही आकर्षण है जो परम उपास्य परमेश्वर के लिए बच्चे के स्वभाव में और उसकी प्रकृति में रखा गया है। अस्तु प्रत्येक स्थान पर मनुष्य जो प्रेम का सम्बन्ध जोड़ता है, वास्तव में वही आकर्षण कार्य कर रहा है। प्रत्येक स्थान पर जो प्रगाढ़ प्रेम का आवेग प्रदर्शित करता है, वास्तव में वह उसी प्रेम का प्रतिबिम्ब है मानों अन्य वस्तुओं को उठा उठा कर कोई खोई वस्तु ढूंढ रहा है जिसका अब नाम स्मरण नहीं आता। अतः मनुष्य का धन, धर्म, सन्तान या पत्नि से प्रेम करना अथवा किसी मधुर स्वर से गाए गए गीत की ओर उसके चित्त का आकर्षित होजाना वास्तव में उसी खोए हुए

प्रेमी की खोज है क्योंकि मानव सूक्ष्म अति सूक्ष्म सत्ता को जो अग्नि के समान प्रत्येक में निहित है और सब की दृष्टि से अदृश्य है। अपने भौतिक चर्म चक्षुओं से देख नहीं सकता और न अपनी अपूर्ण बुद्धि से उसको पा सकता है। इसलिए उसके सूक्ष्म ज्ञान के विषय में मनुष्य को बड़ी २ भूलें लगी हैं और इन्हीं भूलों के कारण वे अधिकार जो उस परम सत्ता से ही विशिष्ट हैं, उसकी रची हुई सृष्टि को दे दिए गए हैं।

परमेश्वर ने पवित्र क़ुरान में यह दृष्टान्त कितना अच्छा दिया है कि संसार एक ऐसे शीश महल के समान है जिसका निर्माण पृथ्वी के धरातल पर अति स्वच्छ निर्मल पारदर्शक शीशे से किया गया है और उसके नीचे जलधारा छोड़ी गई है जो तीव्र गति से प्रवाहमान है। अब प्रत्येक दृष्टि जो उस मुकुर पर पड़ती है, वह भूल से मुकुर को ही जल समझ लेती है और फलस्वरूप मनुष्य उस मुकुर पर चलने से ऐसे डरता है जैसे कि जल से डरना चाहिए। वस्तुतः वे अत्यन्त स्वच्छ और सुस्पष्ट पारदर्शक शीशे हैं। अतः सूर्य चन्द्रादि यह जो बड़े २ नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं। यह वे स्वच्छ मुकुर हैं जिनकी धोखे से पूजा की गई है परन्तु उसके पीछे एक प्रबल शक्ति कार्य कर रही है जो इस शीशे के नीचे जलधारा की न्याईं क्षिप्र गति से बह रही है। सृष्टि के पुजारियों की दृष्टि की यह भूल है कि इसी शीशे को उस क्रिया चक्र का प्रेरक समझ बैठे हैं जो उसके नीचे शक्ति दिखला रही है। यही भाव इस पवित्र कथन का है :—

إِنَّهُ صَرْحٌ مُّمَرَّدٌ مِّن قَوَارِيرَ

इन्नहू सरहुम्मुमर्रदुम्मिन् क़वारीरा।

सारांश यह है कि चूंकि परमेश्वर की सत्ता जो व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त है अतएव उसको पहचानने के लिए केवल यह भौतिक विधान जो हमारी दृष्टि के सम्मुख है, पर्याप्त न था। यही कारण है कि ऐसी व्यवस्था पर भरोसा रखने वाले न केवल इस प्रौढ़ और सुदृढ़ घटनाजगत जो सहस्रां आश्चर्य अपने साथ रखता है, बड़ी गम्भीरता से विचार करते रहे, प्रत्युत नाना ज्ञान विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान तथा दार्शनिकता में वे महान कौशल दिखलाए कि मानो पृथ्वी और आकाश के भीतर घुस गए किन्तु फिर भी सन्देह-वाद के अन्धकार से मुक्ति न पा सके। उनमें से बहुधा भाँति भाँति की भ्राँतियों में फंस गये तथा मिथ्या शंकाओं में ग्रस्त होकर कहीं के कहीं चले गए। यदि उस विश्व कर्मा की सत्ता की ओर उनका कुछ ध्यान गया भी तो केवल इतना कि सुन्दर और श्रेष्ठ व्यवस्था को देखकर उनके अन्तःकरण ने यह अनुभव किया कि इस अनुपम सृष्टि का जिस के साथ एक ठोस और सारयुक्त व्यवस्था है, कोई स्रष्टा अवश्य होना चाहिये। परन्तु यह विचार दुर्बल और यह ज्ञान अपूर्ण है क्योंकि यह कहना कि इस सृष्टि के लिये एक स्रष्टा (परमेश्वर) की आवश्यकता है, इस दूसरे कथन से कदापि समानता नहीं कर सकता कि वह परमेश्वर वास्तव में है भी! अस्तु इनका ज्ञान मिथ्या था जो हृदय को सन्तुष्टि और मन को शान्ति नहीं दे सकता और न हृदय कक्ष से सन्देह के तमपट को हटा सकता है और न यह ऐसा प्याला है जिससे वह अलौकिक ज्ञान पिपासा शान्त हो सकती है जो मनुष्य की प्रवृत्ति को लगाई गई है। प्रत्युत ऐसा मिथ्या ज्ञान एक धोखे की टट्टी है जो खतरनाक है क्योंकि बहुत सा गला फाड़ने

और सर पीटने के बाद अन्ततः यह सब कुछ व्यर्थ सिद्ध होता है और परिणाम कुछ भी नहीं निकलता।

अतः यह बात निर्णीत है कि जब तक परमेश्वर स्वयं अपनी विद्यमानता और अपनी सत्ता का प्रमाण अपनी पवित्रवाणी द्वारा न दे अर्थात् अपनी अलौकिक ईशवाणी द्वारा अपनी सत्ता को अभिव्यक्त न करे जैसाकि उसने अपनी क्रिया से अपने विद्यमान होने का प्रमाण दिया है तब तक केवल क्रिया का दर्शनमात्र करना सन्तोष नहीं दे सकता। उदाहरणतया यदि एक ऐसी बंद कोठरी को देखें जिसके भीतर से कुण्डियां लगायी गई हों तो इस क्रिया से सर्वप्रथम हमारा चित्त इस ओर जायेगा कि कोई व्यक्ति भीतर अवश्य है जिसनें भीतर से ज़ंजीर को लगाया है क्योंकि बाहिर से भीतर की कुण्डियों को लगाना असम्भव है। परन्तु जब एक लम्बे समय तक अपितु वर्षों तक बार बार आवाज देने पर भी उस व्यक्ति की ओर से कोई उत्तर न आए तो हमारा यह विचार कि भीतर कोई व्यक्ति है बदल जायेगा, और इसके विपरीत एक नवीन विचार उत्पन्न हो जाएगा कि इस के भीतर कोई नहीं, अपितु किसी वैज्ञानिक ढंग से भीतर की कुण्डियां लगायी गई हैं।

यही दशा उन दार्शनिकों की है जिन्हों ने इस घटना-जगत के केवल बाह्य घटनाचक्रों तक ही अपनी विचार शक्ति को सीमित कर दिया है। यह समझना बड़ी भारी भूल होगी कि परमेश्वर एक मृतक के समान है और उसको क़ब्र से निकालना केवल मानव का ही काम है। यदि परमेश्वर की परिभाषा यही है कि मानवीय खोज ने ही उसकी सत्ता का निर्धारण किया है तो ऐसे परमेश्वर के विषय में हमारी समस्त आशाएं व्यर्थ हैं। अपितु परमेश्वर वह सत्ता है जो

आदि काल से "मैं मौजूद हूँ" कह कर मनुष्य को अपनी ओर बुलाता रहा है। ऐसा विचार करना हमारी नितान्त धृष्टता होगी कि परमेश्वर की अलौकिकता की खोज तथा संसार में उसकी सत्ता का प्रदर्शन करके मानव ने उस पर भारी उपकार किया है और यदि दार्शनिक लोग न होते तो जैसे वह गुप्त का गुप्त ही रहता।

यह कहना कि परमात्मा कैसे बोल सकता है? क्या उसके वाणी है? यह भी एक धृष्टता है। क्या उसने भौतिक हाथों के बिना सौर जगत के अगणित ब्रह्माण्डों, पृथ्वी आदि ग्रहों उपग्रहों की रचना नहीं की? क्या वह भौतिक नेत्रों के बिना समस्त ब्राह्माण्ड को नहीं देखता? क्या वह भौतिक कानों के बिना हमारे स्वरों और ध्वनियों को नहीं सुनता? तो फिर क्या यह आवश्यक नहीं कि उसी प्रकार वह वार्तालाप भी करे? यह बात भी उचित नहीं है कि परमेश्वर का वार्तालाप करना भविष्य में नहीं होगा अपितु वह भूतकाल में ही समाप्त हो चुका है। हम उस की वाणी और वार्तालाप को किसी काल विशेष तक सीमित नहीं कर सकते। वह अब भी ढूंढने वालों को अलौकिक ईशवाणी के स्रोत से तृप्त करने को तैयार है, जैसाकि प्राचीन काल में था। अब भी उसके अनुग्रह और बरदान के ऐसे ही द्वार खुले हैं जैसे कि पहले खुले थे। हां, मानव की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ अपनी चरम-सीमा पर—जिसके आगे मनुष्य की कोई आवश्यकता शेष नहीं रह जाती–पहुँचकर धार्मिक व्यवस्थाएं और नियम उपनियम तथा उसकी मर्यादाएं भी अपनी अन्तिम सीमा को पहुंच गई हैं, एवं सम्पूर्ण अवतारवाद–जन्य कलाएं और अवतारवाद अपने चरम बिन्दु पर आकर, जो हमारे परमप्रिय हज़रत मुहम्मद साहिब की पवित्र सत्ता का चरमबिन्दु था, सर्वप्रकार की सम्पूर्णता को प्राप्त होगए।

हज़रत मुहम्मद साहिब का अरब में प्रादुर्भाव : एक रहस्य

इस अन्तिम ज्योति का अरब की भूमि से उदय होने में भी एक सूक्ष्म भेद निहित था। अरब के निवासी हज़रत इस्माईल के वंशज थे। यह वह जाति थी जो हज़रत इस्माईल से पृथक् होकर ईश्वर की विशेष इच्छा से "फ़ारान" के निर्जन में डाल दी गई थी। "फ़ारान" के अर्थ हैं दो 'फ़रार' करने वाले अर्थात् "भागने वाले।" अस्तु जिनको स्वयं हज़रत इब्राहीम ने इस्माईल के वंशजों से पृथक् कर दिया था। "तौरात" की धार्मिक व्यवस्था में उनका कोई भाग नहीं रहा था। जैसाकि लिखा है वह 'इसहाक़' के साथ साझीदार नहीं बनेंगे। अतः "तौरात" से सम्बन्ध रखने वालों ने उन्हें छोड़ दिया। किसी दूसरे से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। अन्य सभी देशों में कुछ कुछ उपासना तथा रीति-रिवाजों के अवशेष तथा नियम उपनियों के चिह्न मिलते थे जिन से पता चलता था कि किसी समय उन्हें अवतारों की शिक्षा अवश्य पहुँची थी, किन्तु केवल अरब का देश ही एक ऐसा देश था जो उन शिक्षाओं और दीक्षाओं से सर्वथा वञ्चित और अपरिचित था तथा समस्त संसार से पिछड़ा हुआ था। अतएव अन्त में उस की बारी आई और उस में उत्पन्न हुए अवतार का वरदान सार्वभौमिक घोषित कर दिया गया ताकि वह समस्त देशों को उन वरदानों से लाभान्वित करे और जो त्रुटियाँ आ गई थीं उन्हें दूर करे। अतः पवित्र क़ुरान जैसे सर्व प्रकार से सम्पूर्ण धर्मग्रन्थ के पश्चात् किस ग्रन्थ की प्रतीक्षा की जाए, जिसने मानव सुधार का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर सम्भाल लिया। उसने प्राचीन धर्मग्रन्थों की न्याईं केवल एक

जाति से ही अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं किया प्रत्युत समस्त जातियों का सुधार करना उसका लक्ष्य था। उसने मनुष्य जाति की शिक्षा-दीक्षा की सभी विधाओं और उसकी समस्त श्रेणियों का स्पष्टतया वर्णन किया, अमानुषिक वृत्ति रखने वाले व्यक्तियों को मानवता के सिद्धान्त और शिष्टाचार सिखाये। पुनः मानवीय रूप प्रदान करके उन्हें महान् चरित्र का पाठ पढ़ाया।

पवित्र क़ुरान का संसार पर उपकार :—

यह क़ुरान ने ही संसार पर उपकार किया कि प्राकृतिक अवस्थाओं और सदाचरण में अन्तर करके दिखलाया। जब प्राकृतिक अवस्थाओं से निकालकर महान् चरित्र के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया, तो केवल उसी को पर्याप्त न समझा अपितु एक अन्य समस्या को भी सुलझाया और वह यह कि आध्यात्मिक अवस्थाओं के स्तर तक पहुँचने के लिए पवित्र ज्ञान के द्वार खोल दिए। केवल खोले ही नहीं अपितु लाखों जिज्ञासुओं को उस तक पहुँचा भी दिया। अतएव इस प्रकार तीनों प्रकार की शिक्षाएं जिसका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ, बड़ी सफलता पूर्वक वर्णन की हैं। इसलिये वह समस्त शिक्षा जो धार्मिक दीक्षाओं की आधार शिला है, सर्व प्रकार से सम्पूर्ण है। इसी लिये उसने यह घोषणा की कि मैं ने ही धार्मिक शिक्षा को चरम सीमा तक पहुँचाया है।जैसाकि परमेश्वर का कथन है—

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ وَاَتْمَمْتُ

عَلَيْكُمْ نِعْمَتِيْ وَرَضِيْتُ لَكُمُ

الاسلام دیناً

अल्यौमा अकमल्तो लकुम दीनकुम् व अत्मम्तो
अलैकुम नेऽमती व रज़ीतो लकोमुलइस्लामा दीना।

अर्थात् आज मैंने आपके लिए धर्म को सम्पूर्ण रूप दे दिया तथा अपने पुरस्कारों और विशेष वरदानों को भी आपके लिए पूरा कर दिया तथा आप लोगों के लिए माननीय धर्म इस्लाम नियुक्त करके प्रसन्न हुआ अर्थात् धर्म का चरम लक्ष्य और अन्तिम बिन्दु वह दीक्षा है जो इस्लाम के अर्थों में पाई जाती है। वह यह कि अपने को परमेश्वर के सुपुर्द कर देना, और अपना सर्वस्व समर्पण और पूर्ण बलिदानों द्वारा मुक्ति प्राप्त करना, न कि किसी और ढंग से। अपने इन सभी सङ्कल्पों को जीवन में साकार रूप देना तथा इन्हें कार्यरूप में परिणत कर देना ही इस्लाम है। यह वह स्थान है जिसे हम समस्त कौशल और चमत्कारों की चरम सीमा कहेंगे।

अस्तु, जिस परमेश्वर को सूक्ष्म तत्ववेत्ताओं ने न पहचाना, पवित्र क़ुरान ने उस सच्चे परमेश्वर का पता बताया। क़ुरान ने परमेश्वर के अलौकिक ज्ञान प्रदान करने के निमित्त दो सिद्धान्त बताए हैं।

प्रथम :—

वह सिद्धान्त जिसके द्वारा मानवीय बुद्धि बौद्धिक तर्क और उक्तियाँ उत्पन्न करने के लिए तीव्र और प्रखर हो जाती है और मनुष्य पतन से बच जाता है।

द्वितीय :-

जिसका उल्लेख हम तृतीय प्रश्न के उत्तर में निकट ही में वर्णन करेंगे।

ईश्वरीय सत्ता के तर्क :—

ध्यान देने की बात है कि बौद्धिक तर्क के रूपमें क़ुरान शरीफ़ ने परमेश्वर की सत्ता पर कैसे २ श्रेष्ठ और ठोस अनुपमेय तर्क उपस्थिति किये हैं जैसा कि एक स्थान पर कहा है :—

رَبُّنَا الَّذِیْ اَعْطٰی کُلَّ شَیْءٍ خَلْقَهٗ
ثُمَّ هَدٰی۔

रब्बोनल्लज़ी अऽता कुल्ला शैइन ख़ल्क़हू सुम्मा हदा।

अर्थात् परमेश्वर वह सत्ता है जिसने प्रत्येक वस्तु को यथानुरूप जन्म दिया। पुनः उस वस्तु को यथावश्यक विकसित होने का मार्ग भी दिखलाया। अब यदि इस आयत (पवित्र क़ुरान के कथन) की सूक्ष्मता को मानव से लेकर समस्त जलचरों और थलचरों, नभचारी पक्षियों तक के आकार प्रकार और उनकी बनावट को देखा जाए तो परमेश्वर की महत्ता स्वंय ही स्मरण हो आती है। प्रत्येक वस्तु की बनावट उसके अनुरूप ही विदित होती है। पाठकगण स्वयं विचार करलें क्योंकि यह बहुत ही विस्तृत विषय है।

परमेश्वर की सत्ता के विषय में दूसरी उक्ति में पवित्र क़ुरान ने परमेश्वर को सर्वकारणों का हेतु होना बताया है जैसा कि उसका कथन है :—

وَاَنَّ اِلٰی رَبِّكَ الْمُنْتَهٰی۔

व अन्ना इला रब्बेकल् मुन्तहा ।

अर्थात् समस्त कारणों और कार्यों के क्रमसूत्रों का अन्त तेरे परमेश्वर पर हो जाता है । इस उक्ति को स्पष्ट रूप में इस प्रकार भी उपस्थित किया जा सकता है कि गहरी दृष्टि डालने से विदित होगा कि यह समस्त सृष्टि कारण और कार्य के क्रम में सम्बद्ध है । यही कारण है कि संसार में भांति २ के ज्ञान विज्ञान का प्रसार हो गया है क्योंकि सृष्टि का कोई अंश इस व्यवस्था से पृथक् नहीं । यहाँ सृष्टि के इस वृत्त में उसका कोई अंश जड़ के स्थान पर कार्य कर रहा है तो कोई शाखा के रूप में है । यह तो स्पष्ट है कि कारण का आधार या तो स्वयं वह कारण ही होगा अथवा उसके अस्तित्व का आधार कोई अन्य कारण होगा और यह दूसरा कारण किसी अन्य कारण पर आश्रित होगा । इसी प्रकार कारणों का क्रम आगे भी है इत्यादि । यह बात उचित मालूम नहीं होती कि इस सीमित जगत् में कारणों और कार्यों का क्रम कहीं जाकर समाप्त न हो या असीम हो, तो अवश्य मानना पड़ेगा कि क्रम अवश्य ही किसी अन्तिम कारण पर जाकर समाप्त हो जाता है । अतः जिस पर इस समस्त सृष्टि का अन्त है वही परमेश्वर है । आँखें खोलकर देख लो कि आयत (पवित्र क़ुरान का कथन) ।

وَاَنَّ اِلٰی رَبِّكَ الْمُنْتَهٰی۔

व अन्ना इल्ला रब्बेकल् मुन्तहा ।

अपने संक्षिप्त शब्दों में किस प्रकार इस उपर्युक्त उक्ति को स्पष्ट कर रही है। जिसका अर्थ यह है कि इस समस्त सृष्टि के क्रम का चरमबिन्दु तुम्हारा परमेश्वर ही है। पुनः अपनी सत्ता के प्रमाण में एक और उक्ति दी है। जैसा कि उस विश्व कर्मा परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

لَا الشَّمْسُ يَنْبَغِي لَهَا أَنْ تُدْرِكَ
الْقَمَرَ۔
وَلَا اللَّيْلُ سَابِقُ النَّهَارِ وَكُلٌّ فِي فَلَكٍ
يَسْبَحُونَ۔

लश्शमूसो यम्बग़ी लहा अन तुद्रेकल्क़मरा व
लल्लैलो साबेक़ुन्नहारे व कुल्लुन फ़ी फ़लकिन यसबहून।

अर्थात् सूर्य चद्रमा को नहीं पकड़ सकता और न ही रात्रि जिसमें इन्दु अपनी स्निग्ध ज्योत्स्ना बिखेरता है, दिन पर जिसमें भास्कर अपनी चमक दिखाता है कुछ आतंक जमा सकती है अर्थात् इनमें से कोई अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता।

यदि इस सृष्टि क्रम के पीछे कोई संचालक और सृष्टिकर्ता न हो तो यह समस्त सृष्टिक्रम अस्त व्यस्त हो जाए। यह तर्क खगोलविद्या और ज्योतिष विज्ञान के शास्त्रियों के लिए अति

लाभकारी है क्योंकि आकाश में अति विशाल अगणित गोले हैं जिनके तनिक से अस्त व्यस्त हो जाने से समस्त जगत ध्वस्त हो सकता है। यह परमेश्वर की कैसी लीला है कि वे परस्पर न तो टकराते हैं और न इतने दीर्घ काल पर्यन्त काम करने से कुछ घिसते हैं एवं न उनके कल-पुर्ज़ों में कुछ विकार आया है। यदि उनके ऊपर कोई संरक्षक नहीं तो किस प्रकार यह इतना विशाल कार्य-क्रम अगणित वर्षों से स्वयंमेव चल रहा है? इन्हीं सूक्ष्म तत्वों की ओर संकेत करके परमेश्वर ने दूसरे स्थान पर कहा है :—

أَفِي اللَّهِ شَكٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ.

अफ़िल्लाहेशक्कुन फ़ातेरिस्समावाते वल् अर्ज़।

अर्थात् क्या परमेश्वर की सत्ता के विषय में सन्देह हो सकता है? जिसने ऐसे आकाश और ऐसी पृथ्वी की रचना की है। परमेश्वर अपनी सत्ता पर एक और तर्क उपस्थित करता है वह यह है :—

كُلُّ مَنْ عَلَيْهَا فَانٍ وَّيَبْقَى وَجْهُ رَبِّكَ

ذُو الْجَلَالِ وَالْإِكْرَامِ.

कुल्लो मन अलैहा फ़ान। व यबक़ा वजूहो रब्बेका ज़ुलजलाले वल् इकराम।

अर्थात् प्रत्येक वस्तु नाशवान है और जो सदा सर्वदा शेष रहने वाला तथा अनश्वर है वह परमेश्वर है जो बड़ा ही प्रतापी और महान् है।

अब देखो कि यदि हम कल्पना करलें कि कभी ऐसा होजाए कि पृथ्वी टुकड़े २ हो जाए और समस्त नक्षत्र भी टकरा कर चूर २ हो जाएं, तथा इन पर विध्वन्सकारी एक ऐसी वायु चले जो इनका कोई चिह्न भी शेष न रहने दे। परन्तु फिर भी बुद्धि इस बात को स्वीकार करती है और शुद्धात्मा भी इस बात का अवश्य अनुभव करती है कि इस समस्त विध्वन्स के पश्चात् भी एक वस्तु शेष रह जाए जिस पर विनाश न आए और वह परिवर्तन को स्वीकार न करे और अपनी पूर्व दशा पर ही स्थिर रहे। बस यही अनश्वर, अपरिवर्तनशील वस्तु परमेश्वर है जिसने नाशवान वस्तुओं को जन्म दिया और स्वयं विनाश के दमन चक्र से सुरक्षित रहा।

पुनः एक और तर्क अपनी सत्ता पर पवित्र क़ुरान में दिया है :—

أَلَسْتُ بِرَبِّكُمْ قَالُوا بَلَىٰ

अलस्तो बे रब्बेकुम। क़ालू बला।

अर्थात् मैंने जीवात्माओं को कहा कि क्या मैं तुम्हारा विधाता नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया क्यों नहीं ?

इस आयत में परमेश्वर कथा के रूपमें जीवात्माओं की उस विशेषता का वर्णन करता है जो उनकी प्रकृति में रखी गई है और वह यह है कि कोई भी जीवात्मा अपनी प्रकृति और स्वभाव से परमात्मा का इनकार नहीं कर सकती। अधर्मी अपनी कल्पना के अनुसार तर्क न मिलने के कारण इनकार करते हैं किन्तु इस विरोध और इनकार के होते हुए भी वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस घटना जगत में प्रत्येक जन्म लेने वाले के लिए एक निर्माता और विनाशक की आवश्यकता है। यथा संसार में ऐसा कौन मूर्ख होगा कि यदि

उसके शरीर में कोई रोग लग जाए तो वह इस बात पर हठ करे कि इस रोग का कोई कारण नहीं। यदि यह सृष्टि क्रम कारण और कार्य से सम्बद्ध न होता तो समय से पूर्व यह बता देना कि अमुक तिथि को तूफ़ान आएगा अथवा आन्धी आएगी अथवा सूर्य या चन्द्र को ग्रहण लगेगा अथवा अमुक समय रोगी की मृत्यु हो जाएगी, अथवा अमुक समय तक एक रोग के साथ दूसरा रोग लग जाएगा; यह सभी कुछ असम्भव हो जाए। अतः ऐसा तत्वदर्शी चाहे परमात्मा की सत्ता स्वीकार नहीं करता किन्तु एक प्रकार से उसने स्वीकार कर ही लिया है कि वह भी हमारी तरह ही कार्य के लिए कारण की खोज में है। यद्यपि यह भी एक प्रकार की स्वीकृति है परन्तु पूर्ण नहीं। इसके अतिरिक्त यदि किसी प्रकार एक नास्तिक को इस प्रकार बेहोश किया जाए कि वह जीवन के इन नीच विचारों से नितान्त अलग होकर तथा अपने सभी नीच विचारों से कटकर श्रेष्ठ सत्ता के अधीन हो जाए, तो ऐसी दशा में वह परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा, इनकार नहीं करेगा। जैसा कि इस पर बड़े २ मेधावियों के परीक्षण साक्षी हैं। अतः ऐसी ही दशा की ओर उक्त आयत में संकेत किया गया है। परमेश्वर के इस पवित्र कथन का आशय यह है कि ईश्वर की सत्ता का इनकार केवल जीवन की नीच अवस्था तक है अन्यथा मनुष्य की प्रकृति में उस परमसत्ता की स्वीकृति और उसके प्रति आस्था भरी हुई है।

परमेश्वर की सत्ता से सम्बन्धित यह कुछ उक्तियाँ और तर्क हैं जो हमने उदाहरण के रूप में लिखे हैं। इस के पश्चात् यह भी विदित होना चाहिए कि जिस परमेश्वर की ओर हमें पवित्र .कुरान आह्वान करता है उसको उसने ये विशेषताएँ बताई हैं :—

هُوَ اللّٰهُ الَّذِیْ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ عَالِمُ الْغَیْبِ

وَالشَّهَادَةِ هُوَ الرَّحْمٰنُ الرَّحِیْمُ ۔ مٰلِكِ

یَوْمِ الدِّیْنِ ۔ اَلْمَلِكُ الْقُدُّوْسُ السَّلَامُ

اَلْمُؤْمِنُ الْمُهَیْمِنُ الْعَزِیْزُ الْجَبَّارُ الْمُتَكَبِّرُ

هُوَ اللّٰهُ الْخَالِقُ الْبَارِئُ الْمُصَوِّرُ لَهُ

الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰی یُسَبِّحُ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ

وَالْاَرْضِ وَهُوَ الْعَزِیْزُ الْحَكِیْمُ عَلٰی كُلِّ

شَیْءٍ قَدِیْرٌ ط رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ ۔ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ ط

مٰلِكِ یَوْمِ الدِّیْنِ اُجِیْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ

اَلْحَیُّ الْقَیُّوْمُ ۔ قُلْ هُوَ اللّٰهُ اَحَدٌ اَللّٰهُ الصَّمَدُ

لَمْ یَلِدْ وَلَمْ یُوْلَدْ وَلَمْ یَكُنْ لَّهٗ كُفُوًا

اَحَدٌ ط

होवल्लाहुल्लज़ी ला इलाहा इल्लाहू। आलेमुल् ग़ैबे वश्शहादते। होवर्रहमानुर्रहीम। मालिके योमिद्दीन अल्-मलिकुल् क़ुद्दूसुस्सलामुल मोऽमिनुल् मोहैमेनुल् अज़ीजुल् जब्बारुल् मुतकब्बिर। होवल्लाहुल् ख़ालेक़ुल् बारेउल् मुसव्विरो लहुल् अस्माउल् हुस्ना। योसब्बेहो लहू मा फ़िस्समावाते वल् अर्ज़े व होवल् अज़ीजुल् हकीम। व होवा अला कुल्ले शैइन क़दीर। रब्बुलआलमीन। अर्र-हमानिर्रहीम। मालिके योमिद्दीन। उजीबो दावतद्दाए इज़ा दआन। अल् हय्युल्क़य्यूमों। क़ुल होवल्लाहो अहद। अल्लाहुस्समद। लम् यलिद् वलम यूलद् वलम् यकुल्लहू कोफ़ोवन अहद्।

अर्थात् वह परमेश्वर जो एक ही है और जिसकी समानता करने वाला कोई नहीं और जिसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपास्य नहीं। न ही कोई ऐसा है जिसकी उसके समान आज्ञा का पालन किया जाए। यह इस लिए कहा कि यदि वह अनुपम और बेजोड़ न हो तो कदाचित उस की शक्ति पर शत्रु ही अपनी शक्ति की धाक जमा ले। ऐसी परिस्थिति में उस प्रभु की प्रभुता को इसका सदैव भय लगा रहेगा। इसके साथ यह जो कहा है कि उस परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य देव नहीं। इसका यह अर्थ है कि वह ऐसा सर्व शक्तिमान परमेश्वर है जिसकी विशेषताएँ और कौशल इतने महान् और श्रेष्ठ हैं कि यदि सृष्टि में से सम्पूर्ण विशेषताओं के कारण एक परमेश्वर का निर्वाचन करना पड़े अथवा हृदय में सर्व श्रेष्ठ महान् परमेश्वर की विशेषताओं की कल्पना की जाय तो सर्वोत्तम परमेश्वर जिससे अधिक विशेषताओं का स्वामी अन्य कोई नहीं हो सकता। वही

परमेश्वर है जिसकी उपासना में किसी निकृष्ट को सांझीदार बनाना और उसे परमेश्वर के समान समझना अन्याय और अत्याचार है।

पुनः कहा है कि परमात्मा अन्तर्यामी और गुप्त भेदों का ज्ञाता है अर्थात् अपनी सत्ता को स्वयं जानता है। उसका पार कोई पा नहीं सकता। हम सूर्य चन्द्र तथा अन्य सृष्टि का आदि अन्त पूर्ण रूप से देख सकते हैं किन्तु परमेश्वर की सत्ता का आदि अन्त देखने की शक्ति हमारे इन नेत्रों में नहीं। पुनः कथन है कि वह व्यक्त और अव्यक्त सभी वस्तुओं का ज्ञाता है। अर्थात् उसकी दृष्टि से कोई भी वस्तु ओझल नहीं। यह उचित नहीं कि वह परमेश्वर कहला कर फिर वस्तु एवं पदार्थ ज्ञान से उपेक्षा करे। वह इस संसार के कण २ पर अपनी दृष्टि रखता है। किन्तु मनुष्य उस जैसी दृष्टि नहीं रख सकता उसे ज्ञात है कि कब इस सृष्टि की व्यवस्था को भंग कर देगा और प्रलय ले आएगा। उसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि ऐसा कब होगा। अतः वही परमेश्वर है जो उन समस्त स्थितियों और समयों का ज्ञाता है। पुनः कथन है कि :—

هُوَالرَّحْمٰنُ

होवर्रहमानो।

अर्थात् वह जीवधारियों के अस्तित्व तथा उनके कर्मों से पूर्व केवल अपनी कृपा से—किसी कर्म के बदले में अथवा किसी स्वार्थ से नहीं—उनके लिए सुख के साधन जुटाता है। जैसा कि सूर्य और पृथ्वी तथा अन्य समस्त जीवन सम्बन्धी उपकरणों को हमारे इस घटनाजगत में आने से पूर्व ही बना कर तैयार कर दिया। इस अनुग्रह और दान का नाम परमात्मा के पवित्र ग्रन्थ में "रहमानियत" है और इस काम

की दृष्टि से परमेश्वर رَحْمٰن रहमान अर्थात् कृपालू कहलाता है।

पुनः कथन है कि :—

اَلرَّحِيْمُ

अर्रहीम।

अर्थात् वह परमात्मा श्रेष्ठ कर्मों का श्रेष्ठ बदला देता है और किसी के परिश्रम को व्यर्थ नहीं जाने देता। इस काम की दृष्टि से رَحِيْمُ रहीम कहलाता है तथा इस विशेषता को "रहीमियत" की संज्ञा दी गई है। पुनः कथन है :—

مَالِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ

मालिके योमिद्दीन।

अर्थात् वह परमेश्वर प्रत्येक का बदला अपने अधिकार में रखता है। उसका कोई ऐसा लेखपाल (कारिन्दा) नहीं जिसको उसने पृथ्वी और आकाश का राज्य सौंप दिया एवं स्वयं दूर जाकर बैठ गया हो और स्वयं कुछ न करता हो और वही कारिन्दा सर्व प्रकार के पुरस्कार अथवा दण्ड देता हो या भविष्य में देने वाला हो। तत्पश्चात् कहा है :—

اَلْمَلِكُ الْقُدُّوْسُ

अलमलिकुलक़ुदूसो।

अर्थात् वह परमेश्वर सम्राट् है जो नितान्त निर्दोष पूर्ण है यह

बात स्पष्ट है कि मानवीय साम्राज्य दोष से रहित नहीं। उदाहरणतया यदि समस्त प्रजा निर्वासित होकर दूसरे देश की ओर भाग जावे तो फिर साम्राज्य स्थिर नहीं रह सकता अथवा जिस प्रकार यदि समस्त प्रजा के लोग दुर्भिक्ष से पीड़ित हो जाएं तो फिर राज्यकर आदि कहां से आएगा ? और यदि प्रजा उससे शास्त्रार्थ आरम्भ कर दे कि तुझ में हम से अधिक कौन सी वस्तु है ? तो वह अपनी कौन सी विशेष योग्यता सिद्ध करेगा ? अस्तु परमेश्वर का अधिपत्य इस प्रकार का काल्पनिक नहीं है। वह क्षणमात्र में समस्त देशों को नष्ट करके अन्य सृष्टि का निर्माण कर सकता है। यदि वह ऐसा स्रष्टा और सर्वशक्तिमान न होता तो बिना अत्याचार के उसकी यह व्यवस्था और यह प्रशासन चल न सकता क्योंकि वह संसार को एक बार क्षमा और मुक्ति देकर पुनः दूसरी संसृति कहाँ से लाता ? क्या मुक्ति को पाये हुए व्यक्तियों को संसार में भेजने के लिए पकड़ता तथा अत्याचार के द्वारा अपनी मुक्ति देने की विशेषता को वापस ले लेता ? ऐसी दशा में उसके ईश्वरत्व में अन्तर आ जाता तथा सांसारिक सम्राटों की न्याईं दोषपूर्ण सम्राट् होता। हां, वही सम्राट जो अपने राज्य के विधान बनाते हैं, वे बात बात में बिगड़ते हैं और अपने स्वार्थ के समय जब देखते हैं कि अत्याचार के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं तो अत्याचार को माता का दूध समझ लेते हैं। उदाहरणतया राज्य-विधान के अनुसार यह उचित है कि एक जलयान को बचाने के लिए एक नौका के सवारों को काल के विकराल मुख में फैंक दिया जाय और उनकी बलि दे दी जाए। किन्तु परमेश्वर को यह विवशता उपस्थित नहीं होनी चाहिए। अतः परमेश्वर सर्वशक्तिमान और शून्य से विराट् की उत्पत्ति करने वाला न होता तो या तो वह दुर्बल राजाओं की भांति शक्ति के स्थान पर अत्याचार करता अथव

न्यायशील बनकर ईश्वरत्व को ही अन्तिम नमस्कार कहता । सच तो यह है कि परमेश्वर का जलयान समस्त शक्तियों और भेदों के साथ सत्य-न्याय पर चल रहा है। पुनः कहा है :—

اَلسَّلَامُ

अस्सलाम

अर्थात् वह परमेश्वर जो न केवल हर प्रकार के दोषों और दुःखों और कठिनाइयों से सर्वथा सुरक्षित है अपितु वह अपनी सृष्टि को कुशल और क्षेम भी देने वाला है। इसका अर्थ स्पष्ट है; क्योंकि यदि वह स्वयं ही कष्टों में पड़ता, लोगों के हाथ से मारा जाता अथवा अपने लक्ष्य में असफल रहता तो फिर उस विकृत आदर्श को देखकर किस प्रकार हृदयों को सन्तोष होता कि ऐसा परमेश्वर हमें अवश्यमेव कठिनाइयों से मुक्ति देगा ? अतः परमेश्वर झूठे उपास्य देवों के विषय में कहता है :—

إِنَّ الَّذِيْنَ تَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ لَنْ

يَّخْلُقُوْا ذُبَابًا وَّلَوِ اجْتَمَعُوْا لَهٗ وَ اِنْ

يَّسْلُبْهُمُ الذُّبَابُ شَيْئًا لَّا يَسْتَنْقِذُوْهُ

مِنْهُ ضَعُفَ الطَّالِبُ وَ الْمَطْلُوْبُ مَا

قَدَرُوا اللّٰهَ حَقَّ قَدْرِهٖ اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِيٌّ

عَزِيْزٌ

इन्नल्लज़ीना यद्ऊना मिन्दूनिल्लोह लँय्यख़्लोक़ू ज़ोबाबन व लविज्तमऊ लहू । व ईयस्लोब्रोहोमुज़्ज़ुबाबो शैय्यल्ला यस्तन्क़ेज़ूहो मिनहो । ज़ोओफत्तालेबो वल मतलूब मा क़दरुल्लाहा हक़्क़ा क़द्रेही । इन्नल्लाहा ल क़वीऊन अज़ीज़ ।

अर्थात् जिन लोगों को तुम परमेश्वर और भगवान बनाए बैठे हो वे तो ऐसे हैं कि यदि सब मिलकर एक मक्खी उत्पन्न करना चाहें तो कदापि उत्पन्न नहीं कर सकते चाहे परस्पर एक दूसरे से सहायता भी लें। यही नहीं अपितु मक्खी यदि उनकी कोई वस्तु छीनकर ले जाए तो उनमें इतनी भी शक्ति नहीं कि वे मक्खी से चीज़ वापस भी ले सकें। इन झूठे उपास्य देवों के उपासक क्षीण बुद्धि वाले तथा वे उपास्य देव शक्ति में दुर्बल हैं। क्या परमेश्वर इस प्रकार के हुआ करते हैं ? परमेश्वर तो वह सत्ता है जो समस्त शक्ति वालों से अधिक शक्तिवान् तथा सब पर विजयी होने वाला है। उसको न तो कोई पकड़ सकता है और न मार सकता है। ऐसी त्रुटियों में जो लोग फंस जाते हैं वे परमेश्वर की महानता को नहीं पहचानते और न ही यह जानते हैं कि परमेश्वर कैसा है।

पुनः परमेश्वर का कथन है कि परमेश्वर शान्ति देने वाला और अपने चमत्कारों पर तथा अपने एक होने पर अकाट्य उक्तियाँ और तर्क देने वाला है। यह इस बात की ओर संकेत है कि सच्चे परमेश्वर पर विश्वास रखने वाला किसी सभा में लज्जित और पराजित नहीं हो सकता तथा न ही परमेश्वर के सम्मुख लज्जित होगा क्योंकि उसके पास सबल उक्तियाँ और अकाट्य तर्क होते हैं किन्तु कृत्रिम परमेश्वर पर आस्था रखने वाला बड़ी ही द्विविधा और

कठिनाई में फंसा रहता है। वह तर्क अथवा उक्तियाँ देने के स्थान पर प्रत्येक व्यर्थ और निस्सार बात को सूक्ष्म तत्त्व बताता है ताकि उसका उपहास न हो तथा सर्वसिद्ध और प्रसिद्ध त्रुटियों को गुप्त रखना चाहता है।

इसके अतिरिक्त परमेश्वर का कथन है कि :—

اَلْمُهَيْمِنُ الْعَزِيْزُ الْجَبَّارُ الْمُتَكَبِّرُ

अलमोहैमेनुल् अज़ीज़ु ल् जब्बारुल् मुतकब्बिर।

अर्थात् वह परमेश्वर सब का संरक्षक है और सब पर अपना आतंक रखने वाला तथा बिगड़े हुए कार्यों को बनाने वाला है एवं उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं। तत्पश्चात् कथन है :—

هُوَاللّٰهُ الْخَالِقُ الْبَارِئُ الْمُصَوِّرُ لَهُ

الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى۔

होवल्लाहुल् ख़ालेक़ुल् बारेउल् मुसव्वेरो लहुल् अस्माउल् हुस्ना।

अर्थात् वह परमेश्वर ऐसा परमेश्वर है कि वह शरीरों का भी स्रष्टा है और जीवात्माओं का भी स्रष्टा है। गर्भ में शिशु की आकृति का निर्माण करने वाला भी वही है। विश्व में जितने भी सुन्दर और श्रेष्ठ नामों की कल्पना की जा सकती है सब उसी के नाम हैं। फिर कथन है कि :—

يُسَبِّحُ لَهُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ وَهُوَ

الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ

योसब्बेहो लहू मा फ़िस्समावाते वलअर्ज़ व होवल् अज़ीज़ुल हकीम।

अर्थात् आकाश के लोग भी उसके नाम को पवित्रता से स्मरण करते हें तथा पृथ्वी पर बसने वाले भी। इस कथन में यह संकेत है कि सौर मण्डल में स्थित अगणित नक्षत्रों में आवादी है और वे लोग भी परमेश्वर की शिक्षा दीक्षा पर चलते हैं।

इसके अतिरिक्त कहा है कि :—

عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ

अला कुल्ले शैइन क़दीर।

परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। समस्त ब्रह्माण्ड का अधिनायक है। यह भक्तों के लिए सन्तोष और प्रसन्नता की बात है क्योंकि यदि परमेश्वर दुर्बल हो तथा सर्वशक्तिमान न हो तो ऐसे परमेश्वर से क्या आशाएँ रखी जा सकती हैं। पुनः कथन है :—

رَبِّ الْعٰلَمِينَ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيمِ مَالِكِ

يَوْمِ الدِّينِ أُجِيبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ إِذَا

دَعَانِ

रब्बिल आलमीन। अर्रहमानिर्रहीम। मालिके योमिद्दीन।
उजीबो दावतद्दाइ इज़ा दआन।

अर्थात् वही परमेश्वर है जो समस्त ब्रह्माण्डों का पालनहार, असीम कृपाएं करने वाला और बारम्बार दया करने वाला है तथा हिसाब किताब के दिन अर्थात् प्रलय के दिन का स्वामी है। उसने पुरस्कार अथवा दण्ड विधान का कार्य किसी अन्य के हाथ में नहीं सौंपा। परमेश्वर प्रत्येक पुकारने वाले की ध्वनि को सुनने वाला तथा उत्तर देने वाला है अर्थात् वह प्रार्थनाओं को स्वीकार करने वाला है। तत्पश्चात् कहा है :—

اَلْحَيُّ الْقَيُّوْمُ

अल् हय्युल् क़य्यूम।

अर्थात् सदैव स्थिर रहने वाला तथा समस्त प्राणियों के प्राणों और सबके अस्तित्व का आधार वही है। यह इस लिए कहा कि वह चिरस्थायी अविनाशी न हो तो उसके जीवन के विषय में भी सन्देह और भय रहेगा कि कदाचित् हम से पहले ही वह मृत्यु का आखेट न बन जाए।

पुनः कहा है कि वह परमेश्वर अकेला ही है, न वह किसी का पुत्र और न कोई उसका पुत्र है। न कोई उसके समान तथा न कोई उसका सजातीय है।

स्मरण रहे कि परमेश्वर की एकता को समुचित ढंग से स्वीकार करना उसमें कमी या अधिकता न करना यह वह न्याय है जो मनुष्य अपने परम स्वामी परमेश्वर के निमित्त सम्पन्न करता है। यह आंशिक वर्णन चारित्रिक शिक्षा का भाग है जो पवित्र क़ुरान की

शिक्षा से उद्धृत किया गया है। इस में नियम यह है कि परमेश्वर ने चरित्रगत सभी विधाओं को न्यूनता एवं अधिकता की पराकाष्ठा से बचाया है। प्रत्येक आचरण को उस दशा में चरित्र की संज्ञा दी गई है जब कि अपनी मर्यादा से न्यूनाधिक न हो।

यह तो स्पष्ट है कि वास्तविक कल्याण वही है जो दो सीमाओं के मध्य में होता है अर्थात् अधिकता और न्यूनता या अतिशय उत्कृष्टता और अतिशप निष्कृष्टता के मध्य स्थल पर होता है। प्रत्येक प्रवृत्ति जो मध्यमता की ओर आकर्षित करे और मध्य स्थल पर पहुँचाए, वह प्रवृत्ति महान् चरित्र को जन्म देती है। समय और स्थिति को पहचानना एक मध्यमता है। उदाहरणतया यदि कृषक अपना बीज समय से पूर्व बो दे अथवा समय व्यतीत हो जाने पर बोए, दोनों अवस्थाओं में वह मध्यवर्गीय मार्ग को छोड़ता है। कल्याण, पुण्य, सत्य तथा सूक्ष्मता सब मध्य में हैं और मध्यमता अवसर-वादिता में है। अथवा यूँ समझ लो कि वास्तविकता वह वस्तु है जो सदैव दो विभिन्न विरोधी असत्यों के मध्य में होती है। यह बात असन्दिग्ध है कि ठीक अवसर को समझ लेना मानव को सदैव मध्य में रखता है। परमेश्वर की पहचान के विषय में मध्यमता की पहचान यह है कि परमेश्वर की विशेषता का वर्णन करने में न तो विशेषताओं के ऋणपक्ष में झुक जाए और न परमेश्वर को भौतिक स्थूल वस्तुओं के समकक्ष ठहराए। यही विधि पवित्र .कुरान ने परमेश्वर की विशेषताएँ वर्णन करने में अपनाई है।

अस्तु, वह यह भी कहता है कि परमेश्वर सुनता, जानता,

बोलता और वार्तालाप करता है तथा सृष्टि की समानता से बचाने के लिए यह भी कहता है :—

لَيْسَ كَمِثْلِهِ شَيْئٌ فَلَا تَضْرِبُوا لِلّٰهِ
الْاَمْثَالَ

लैसा कमिस्लेही शैऊन फ़ला तज़रेबू लिल्लाहिल् अमसाल।

अर्थात् परमेश्वर की सत्ता तथा उसकी विशेषता में उसका कोई समकक्ष नहीं। उसके लिए सृष्टि में से उपमाएं मत ढूँढो। अतः परमेश्वर की सत्ता को दृष्टान्तों और उपमाओं के मध्य में रखना यह मध्यवर्गीय मार्ग है।

सारांश यह कि इस्लाम की शिक्षा मध्यवर्गीय शिक्षा है। सूरः फ़ातेहा में मध्यवर्गीय मार्ग ग्रहण करने का आदेश दिया गया है क्योंकि परमेश्वर का कथन है :—

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ

ग़ैरिल् मग़ज़ूबे अलैहिम वलज़्वालीन।

"मग़ज़ूबे अलैहिम" से तात्पर्य वे लोग हैं जो परमेश्वर के विरुद्ध अपनी क्रोधाग्नि को प्रयुक्त करके हिंसावृत्ति के वशीभूत हो जाते हैं। ज़्वालीन से अभिप्राय वे लोग हैं जो पाशविकता के अधीन होकर चलते हैं। मध्यवर्गीय मार्ग वह मार्ग है जिसको :—

أَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ،

अन् अम्ता अलैहिम।

(अर्थात् उन लोगों का मार्ग जिन पर तेरा पुरस्कार हुआ) से अभिहित किया गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस पावन उम्मत (जाति) के निमित्त पवित्र क़ुरान में मध्यमता का आदेश है। तौरात में परमेश्वर ने प्रतिहिंसा की ओर अधिक ध्यान दिलाया था और इञ्जील में क्षमा को अत्यधिक महानता दी गई। किन्तु इस उम्मत (इस्लाम) को मध्य-वर्गीय शिक्षा मिली। अतः परमेश्वर का कथन है :—

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا ،

व कज़ालेका जअलनाकुम उम्मतौं वसतन।

अर्थात् हमने तुमको मध्य में कर्मयोगी बनाया तथा मध्यवर्गीय शिक्षा तुम्हें दी। अतः सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो मध्यमार्ग पर चलते हैं।

خَيْرُ الْاُمُوْرِ اَوْسَطُهَا .

ख़ैरुल् उमूरे औसतोहा।

अर्थात् प्रत्येक वह कार्य जो मध्यमता को अपनाए हुए होता है श्रेयस्कर होता है।

३—आध्यात्मिक अवस्थाएँ

तृतीय प्रश्न यह है कि आध्यात्मिक अवस्थाएँ क्या हैं ? विदित होना चाहिए कि हम इस से पहले बता चुके हैं कि पवित्र क़ुरान के आज्ञानुसार आध्यात्मिक अवस्थाओं का

स्रोत और उद्गम स्थान सात्विक वृत्ति है। जो मनुष्य को चरित्रवान होने के स्तर से उठाकर ईश्वर भक्त के शिखर पर पहुंचा देती है। जैसा कि परमेश्वर का कथन है कि :—

يَآيَّتُهَا النَّفْسُ الْمُطْمَئِنَّةُ ارْجِعِيْٓ اِلٰى
رَبِّكِ رَاضِيَةً مَّرْضِيَّةً ۚ فَادْخُلِيْ
فِيْ عِبَادِيْ وَادْخُلِيْ جَنَّتِيْ ۔

ईया अय्यतोहन्नफ़्सुल् मुत्मइन्नतुर्जेई इला रब्बेके राज़ियतम्मर्ज़ियतन। फ़द्ख़ोली फ़ी इबादी वद्ख़ोली जन्नती।

अर्थात् हे शुद्ध सात्विक मन ! जिसका आनन्दकुन्द परमेश्वर के साथ विश्राम निश्चित है, अपने पालक परमेश्वर की ओर चला जा। वह तुझ से प्रसन्न और तू उससे प्रसन्न है। अतः तू मेरे भक्तों में प्रविष्ट हो तथा मेरे बैकुण्ठ के भीतर आ जा। इस स्थान पर उचित है कि हम आध्यात्मिक अवस्थाओं के वर्णन करने के लिए परमेश्वर के इस पवित्र कथन की व्याख्या कुछ विस्तार पूर्वक करें।

स्मरण रखना चाहिये कि सर्वोत्तम आध्यात्मिक अवस्था मानव की इस भौतिक जीवन में यह है कि परमेश्वर के साथ विश्राम पा जाए अर्थात् परमेश्वर की सत्ता में ही पूर्ण सन्तोष, आह्लाद और आनन्दानुभव करे। यही वह अवस्था है जिसको दूसरे शब्दों में स्वर्गीय जीवन कहा जाता है। इस अवस्था में मनुष्य अपनी पूर्ण सत्यता, शुद्ध हृदयता तथा आज्ञाकारी के बदले में एक नक़द स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। अन्य

लोग मृत्योपरान्त इसकी प्रतीक्षा करते हैं जबकि यह व्यक्ति इसी लोक में स्वर्ग पा लेता है। इस स्थान पर पहुंच कर मनुष्य समझता है कि वे उपासनाएं जिनका भार उस के सिर पर डाला गया है, वास्तव में वही एक ऐसा पौष्टिक भोजन है जिससे उसकी आत्मा का पालन पोषण होता है और निश्चय ही यह उसके आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला है। इसकी फल प्राप्ति किसी अन्य लोक में नहीं अपितु इसी जगत में होती है। वे समस्त ताड़नाएं जो मन की राजसिक वृत्ति द्वारा मनुष्य के अपवित्र जीवन पर पड़ती हैं। परन्तु फिर भी रजोगुणयुक्त मनकी यह दुर्बल अवस्था मानव की शुभ कामनाओं को भली प्रकार विकसित नहीं कर सकती। न ही हीन भावनाओं और दूषित इच्छाओं के प्रति घृणा उत्पन्न करा सकती है और न ही पुण्य के पावन पथ पर डटे रहने की समर्थ्य दे सकती है--वे उस पावन क्रिया के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं जो सात्विक वृत्ति के विकसित होने का आरम्भिक रूप होती है। इस स्थिति पर पहुंच कर एक ऐसा समय आ जाता है कि मनुष्य पूर्ण सफलता प्राप्त करे। और तब समस्त निम्न कोटि के मानसिक उद्वेगों का स्वतः ही ह्रास होने लगता है तथा आत्मा के ऊपर एक ऐसी शक्तिदायिनी पवन बहने लगती है जिससे मनुष्य को अपनी दुर्बलताओं पर आत्मग्लानी का अनुभव होने लगता है। उस समय मानवीय स्वभाव में एक भारी परिवर्तन आ जाता है और उसकी प्रकृति में आश्चर्यजनक क्रान्ति आ जाती है और तब मनुष्य अपनी पहली अवस्थाओं से बहुत ही दूर चला जाता है। उसका परिक्षालन किया जाता है, स्वच्छ और पावन किया जाता हैं तथा परमेश्वर कल्याणकारी की सद्भावना अपने हाथ से उसके हृदयपटल पर अंकित कर देता है तथा बुराई की दुर्गन्ध अपने हाथ से उसके हृदय से निकाल कर बाहर फैंक देता है। सत्यता की सभी

सेनाएं हृदय नगर में आ जाती हैं और प्रकृति के दुर्ग के सभी द्वारों पर ईमानदारी का अधिकार हो जाता है तथा सत्य की विजय होती है और असत्य अपने हथियार फैंक कर भाग जाता है। उस व्यक्ति के हृदय पर परमेश्वर का हाथ होता है। उसका प्रत्येक पग परमात्मा की छत्रछाया में ही पड़ता है। अतः परमेश्वर अपने निम्नलिखित पवित्र कथन में इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

أُولَٰئِكَ كَتَبَ فِي قُلُوبِهِمُ الْإِيمَانَ وَ

أَيَّدَهُم بِرُوحٍ مِّنْهُ وَزَيَّنَهُ فِي قُلُوبِكُمْ

وَكَرَّهَ إِلَيْكُمُ الْكُفْرَ وَالْفُسُوقَ وَالْعِصْيَانَ

أُولَٰئِكَ هُمُ الرَّاشِدُونَ ۝ فَضْلًا مِّنَ

اللَّهِ وَنِعْمَةً ۚ وَاللَّهُ عَلِيمٌ حَكِيمٌ ۝ جَاءَ

الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ إِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ

زَهُوقًا ط

उलाएका कतबा फ़ी क़ुलूबेहिमुलईमाना व अय्यदाहुम बेरूहिम्मिन हो। व ज़य्यनहू फ़ी क़ुलूबेकुम व करहा इलै कोमुल् कुफ़रा वल् फ़ोसूक़ा वल् इस्याना। उलाएका होमुर्रशेदूना। फ़ज़्लम्मिनल्लाहे व नेअमतन वल्लाहो

अलीमुन हकीम । जाअल् हक़्क़ो व ज़हक़ल् वातेलो इन्नल वातेला काना ज़हूक़ा ।

अर्थात् परमेश्वर ने अपने परम भक्तों के हृदय में ईमान और विश्वास को स्वयं अपने हाथ से लिख दिया है और रूहुल कुदस अर्थात् ईश्वरीय देवदूत के द्वारा उनकी सहायता की। हे ईश्वर भक्तो! उसने ईमान और विश्वास को तुम्हारे लिए परम प्रिय बना दिया तथा उसका अलौकिक सौन्दर्य तुम्हारे हृदय में बिठा दिया । नास्तिकता, व्यभिचार तथा पापाचार के प्रति तुम्हारे अन्तःकरण में घृणा उत्पन्न कर दी। अनुचित मार्गों का अनौचित्य भी तुम्हारे हृदय पर जमा दिया। यह सब कुछ परमेश्वर की अपार कृपा और उसकी वदान्यता से हुआ। सत्य आया और असत्य भाग गया तथा असत्य, सत्य के सम्मुख कब ठहर सकता है!

तात्पर्य यह है कि ये सभी संकेत उस आध्यात्मिक अवस्था की ओर हैं जो तृतीय श्रेणी पर मनुष्य को प्राप्त होती है। ममुष्य को वास्तविक प्रकाश उस समय तक नहीं मिल सकता जब तक यह अवस्था और यह स्थान उसे उपलब्ध न हो जाए । परमेश्वर ने यह जो कहा है कि मैंने ईमान और विश्वास उनके हृदय पटल पर अपने हाथ से लिखा और रुहुलकुदुस (ईश्वरीय देवदूत) के द्वारा उनकी सहायता की, यह इस बात की ओर संकेत है कि मानव को वास्तविक पवित्रता और शुद्धता उस समय तक उपलब्ध नहीं हो सकती जब तक अलौकिक दैवी सहायता उसके साथ न हो।

मन की राजसिक अवस्था में मनुष्य की यह दशा होती है कि बारम्बार प्रायश्चित करता है और बार २ पतित होता है अपितु यदा कदा अपनी सामर्थ्य से निराश भी हो जाता है और अपने रोग को

उपचार की सीमा से बाहर समझ लेता है और एक समय तक इसी अवस्था में रहता है, पुनः जब निश्चित समय बीत जाता है तो रात्रि अथवा दिवस को सहसा एक बार एक ज्योति उसके अन्तःकरण में प्रवेश करती है। उस ज्योति में परमेश्वरीय शक्ति निहित होती है। उस ज्योति के आने के साथ ही उसमें एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जाता है तथा उस अलौकिक परिवर्तन के पीछे एक अव्यक्त सशक्त सत्ता का हाथ का आभास होता है। उसके सम्मुख एक अनोखा संसार आ जाता है। उस समय मनुष्य को यूँ मालूम होता है कि वह स्वयं परमेश्वर है। उसके नेत्रों में वह ज्योति आ जाती है जो पहले नहीं थी। किन्तु इस मार्ग को कैसे पाया जाए ? और इस ज्योति को किस प्रकार प्राप्त किया जाए ?

इस विषय में ज्ञात होना चाहिए कि इस जगत में जिसे घटना जगत की संज्ञा दी गई है अर्थात् इसकी रचना कारणों द्वारा हुई है—प्रत्येक कार्य के लिए एक कारण है और प्रत्येक क्रिया के लिए एक कर्त्ता है तथा हर प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक मार्ग है जिसे सरल और सीधा मार्ग कहते हैं। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जो उन नियमों और सिद्धान्तों की अधीनता स्वीकार किए बिना उपलब्ध हो सके जो प्रकृति ने आदि काल से उसके लिए नियुक्त कर रखे हैं। प्राकृतिक विधान बतला रहा है कि प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिए एक स्वाभाविक और सरल मार्ग होता है और यह बात स्पष्ट है कि उसकी सहज प्राप्ति उस स्वाभाविक मार्ग पर चल कर ही हो सकती है। उदाहरणतया यदि हम एक अन्धेरी कोठरी में बैठे हों और हमें सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता हो, तो हमारे लिये यह सीधा मार्ग है कि हम उस खिड़की को खोल दें जो सूर्य की ओर है तब सूर्य का प्रकाश तुरन्त हम तक पहुँच जायेगा। यहाँ पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

ठीक इसी प्रकार परमेश्वर का सच्चा और वास्तविक वरदान पाने के लिए भी कोई खिड़की होगी तथा पवित्र आध्यात्मिकता की प्राप्ति के लिए कोई विशेष साधन भी होगा। वह साधन यह है कि आध्यात्मिक सम्बन्धों के लिए सरल मार्ग ढूंढें। जैसा कि हम अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी सफलताओं के निमित्त सरल मार्ग ढूंढते हैं। किन्तु क्या वह विधि यही है कि हम केवल अपनी ही बुद्धि के बल पर और अपनी ही स्वकल्पित और मनगढ़त बातों से परमेश्वर के सम्पर्क की खोज करें? क्या केवल हमारे अपने ही तर्क और अपनी ही दार्शनिकता से उस के वे द्वार हमारे लिए खुल सकते हैं जिनका खुलना उसी परम सत्ता के बाहुबल पर आश्रित है? निश्चय जानों कि यह विधि सर्वथा शुद्ध नहीं है। हम उस अजर अमर अविनाशी परमेश्वर को केवल अपने ही प्रयत्नों से कदापि नहीं पा सकते। अपितु उस मार्ग में सरल मार्ग केवल यह है कि सर्वप्रथम हम अपने जीवन को अपनी समस्त शक्तियों सहित परमेश्वर के मार्ग में समर्पित करके पुनः उस परब्रह्म की प्राप्ति और उसके दर्शन के लिये सतत निरन्तर प्रार्थनाओं में व्यस्त रहें ताकि परमेश्वर को परमेश्वर के द्वारा ही प्राप्त करें।

एक सुन्दर प्रार्थना

प्रार्थनाओं में सर्व प्रिय प्रार्थना जो हमें परमेश्वर से याचना करने और उसके सामने अपनी आवश्यकताओं को रखने का ठीक समय तथा उचित अवसर हमें सिखाती है और स्वाभाविक आध्यात्मिक संवेगों का ढांचा हमारे सम्मुख रखती है—वह प्रार्थना है जो परमेश्वर ने अपने पवित्र ग्रन्थ क़ुरान शरीफ़ में सूरः फातेहा में हमें सिखाई है। वह यह है —

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अर्थ :—प्रारम्भ करता हूं, परमेश्वर के नाम से जो अतीव कृपालू और दयालू है।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ۔

अलूहम्दो लिल्लाहे रब्बिल आलमीन।

अर्थ—समस्त पवित्र प्रशंसाएं जो हो सकती हैं, उस परमेश्वर के लिए हैं जो समस्त ब्रह्माण्डों का स्रष्टा और पालनहार है।

اَلرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अर्रहमानिर्रहीम

अर्थ—वही परमेश्वर जो हमारे कर्मों से पहले हमारे लिये अपनी अनुग्रह और दया की सामग्री जुटाने वाला है और हमारे कर्मों के पश्चात् कृपा और दया के साथ हमें बदला देने वाला है।

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ

मालिके योमिद्दीन।

अर्थ—वह परमेश्वर जो हिसाब किताब के दिन अर्थात् प्रलय के दिन का एक मात्र स्वामी है। किसी अन्य को वह दिन नहीं सौंपा गया है।

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ۔

ईयाकानाऽब्रोदो व ईयाका नस्ताईन।

अर्थ—उक्त तीनों विशेषताओं के स्वामी हे परमात्मन्! हम तेरी ही उपासना करते हैं और हम प्रत्येक कार्य में तुझ से ही सामर्थ्य की याचना करते हैं। इस स्थान पर "हम" के शब्द से उपासना को स्वीकार करना इस बात की ओर संकेत है कि हमारी सभी शक्तियां और इन्द्रियां तेरी उपासना और भक्ति में तल्लीन हैं और तेरे द्वार पर नतमस्तक हैं क्योंकि मनुष्य अपनी भीतरी शक्तियों की दृष्टि से एक समाज तथा एक जाति का रूप है और इस प्रकार समस्त इन्द्रियों और शक्तियों का परमेश्वर के समक्ष दण्डवत (अर्थात् उसकी प्रत्येक आज्ञा के सामने ननुनच किए बिना तन-मन-धन से पूर्णतया नत मस्तक हो जाना) यही वह अवस्था है जिसको इस्लाम कहते हैं।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ صِرَاطَ
الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۔

एहदिनस्सिरात्वलमुस्तक़ीमा सिरात्वल्लज़ीना अनअमता अलैहिम।

अर्थात्—हमें अपने सरल और सीधे मार्ग पर चला तथा उसी पर दृढ़ निश्चयी बनाकर उन लोगों के मार्ग का पथ प्रदर्शन कर जिन पर तेरा पुरस्कार हुआ तथा जिन पर तेरी अपार कृपा और अनुग्रह और पुरस्कारों की वृष्टि हुई।

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ

ग़ैरिलमग़ज़ूबे अलैहिम वलज़्ज़ाल्लीन।

अर्थात्—हमें उन लोगों के मार्ग से बचा जिन पर तेरा प्रकोप हुआ तथा जो पथ-भ्रष्ट हुए और तुझ तक नहीं पहुँच सके।

اٰمِيْن

आमीन

हे परमेश्वर ! तू ऐसा ही कर।

परमेश्वर के यह पवित्र कथन बता रहे हैं कि उसके पुरस्कार जिनको दूसरे शब्दों में कृपा और दया भी कहते हैं। उनकी वृष्टि उन्हीं लोगों पर होती है जो अपने जीवन की आहुति परमेश्वर की बलिवेदी पर दे देते हैं और अपना सर्वस्व उसी की राह में अर्पण करके तथा उसी की इच्छा में लीन रहते हैं, पुनः इसलिए प्रार्थना और विनय करते रहते हैं कि मनुष्य को जो कुछ आध्यात्मिक अनुदान परमात्मा की निकटता तथा उसका संयोग और उसकी ईशवाणी तथा उससे वार्तालाप आदि में से प्राप्त हो सकता है, वह सब उनको मिले। वे उस प्रार्थना के साथ २ अपनी समस्त इन्द्रियों से परमेश्वर की उपासना करते हैं, पाप पङ्क से दूर रहते तथा परमेश्वर के द्वार पर पड़े रहते हैं एवं जहां तक उनके लिए सम्भव है अपने को द्वेषों से बचाते हैं, परमेश्वर के प्रकोप वाले मार्गों से दूर रहते है। अतएव चूंकि वे एक दृढ़ साहस और अटूट निष्ठा के द्वारा परमात्मा को खोजने और उसे पाने की चेष्टा करते हैं। इसलिए उसको पा लेते हैं। तथा परमात्मा के पवित्र ज्ञानामृत के पान से तृप्त किये जाते हैं।

इस पवित्र कथन में जो "इस्तक़ामत" (दृढ़ता) का उल्लेख

हुआ है। यह इस बात की ओर संकेत है कि वास्तविक तथा पूर्णानुदान जो आध्यात्मिक जगत् तक पहुंचाता है, पूर्ण दृढ़ता से सम्बन्धित हैं। पूर्ण दृढ़ता से तात्पर्य सत्यता, आज्ञाकारी एवं हित की वह अवस्था है जिसको कोई परीक्षा हानि न पहुँच सके अर्थात् दृढ़ता एक ऐसा सम्बन्ध है जिस को न तलवार काट सके, न अग्नि जला सके तथा न ही कोई अन्य विपत्ति हानि पहुंचा सके निकटवर्ती सम्बन्धियों और बन्धुओं की मृत्यु उस से पृथक् न कर सके। प्रेमियों और मित्रजनों का वियोग उसमें विघ्न न डाल सके। मान हानि का भय उसको आतंकित न कर सके। भयानक दुःखों से मारा जाना उस को लेशमात्र भी विचलित न कर सके। यह द्वार अति संकुचित और यह मार्ग अति दुर्गम है। कितना कठिन है। ओह.........ओ......ह !!!

इसी ओर परमात्मा का इन पंक्तियों में संकेत है—

قُلْ إِنْ كَانَ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ وَإِخْوَانُكُمْ

وَأَزْوَاجُكُمْ وَعَشِيرَتُكُمْ وَأَمْوَالٌ

اقْتَرَفْتُمُوهَا وَتِجَارَةٌ تَخْشَوْنَ كَسَادَهَا

وَمَسَاكِنُ تَرْضَوْنَهَا أَحَبَّ إِلَيْكُمْ مِنَ

اللَّهِ وَرَسُولِهِ وَجِهَادٍ فِي سَبِيلِهِ

فَتَرَبَّصُوا حَتَّى يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ وَاللَّهُ

لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفَاسِقِيْنَ ۝

क़ुल् इन काना आबाओकुम् व अबनाओ कुम् व इख़्वानोकुम् व अज़वाजोकुम् व अशीरतोकुम् व अमवालो निक़्तरफ़्तोमूहा व तिजारतुन तख़्शौना कसादहा व मसाकेनो तर्ज़ौनहा अहब्बा इलैकुम् मिनल्लाहे व रसूलेही व जेहादिन फ़ी सबीलेही फ़ तरब्बसू हत्ता यातेयल्लाहो वे अमूरे ही वल्लाहो ला यहदिल् क़ौमल् फ़ासेक़ीन।

अर्थात् इन को कह दो कि यदि तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे भाई, तुम्हारी स्त्रियां, तुम्हारे बन्धु तथा तुम्हारा वह धन जिसको तुमने परिश्रम से कमाया है, तुम्हारा वाणिज्य और व्यापार जिसके बन्द होने का तुम्हें भय है, तुम्हारे भव्य भवन जो तुम्हें मनोवांछित हैं, परमेश्वर से और उस के रसूल (परमात्मा उस पर अपनी कृपा, दया और अनुग्रह की असीम वृष्टि करे) तथा उसके पथ में अपने प्राण न्यौछावर कर देने से अधिक प्रिय हैं तो तुम उस समय की प्रतीक्षा करो जब परमेश्वर अपना भयानक दमन चक्र चलाए। परमात्मा ऐसे दुष्टों और आज्ञा का उल्लंघन करने वालों को अपने सीधे मार्ग का कभी पथ-प्रदर्शन नहीं करता।

इस कथन से स्पष्ट है कि जो लोग परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध अपने बन्धुओं और धन से प्रेम करते हैं, वे परमेश्वर के निकट व्यभिचारी हैं, उनको अवश्यमेव मिटाया जाएगा क्योंकि उन्होंने परमेश्वर के सन्मुख दूसरे को महानता दी। यही वह तीसरी श्रेणी है जिसमें वह व्यक्ति ईश्वर भक्त बनता है जो उसके लिए सहस्रों विपत्तियों की विभीषिका में अपने को झोंक दे और परमेश्वर के

सन्मुख ऐसे पवित्र मन तथा शुद्ध हृदय से नत मस्तक हो जाए कि परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई उसका न रहे, मानो सब मर गये।

अस्तु, यह बात असन्दिग्ध है कि जब तक हम स्वयं मृत्यु को आलिंगन न करें उस समय तक अमर परमेश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। परमेश्वर के दर्शन का दिन वही होता है जब हमारे भौतिक जीवन पर मृत्यु आ जावे। हम उस समय तक अन्धे हैं जब तक दूसरों की दृष्टि में हम अन्धे न हो जाएं तथा परमेश्वर के हाथ में मृतक सदृश न हो जाएं। जब हमारा मुख उसके सन्मुख उचित ढंग से यथाविधि पड़ेगा तब वह सच्ची दृढ़ता जो समस्त वासनाओं को दबाकर उन पर विजयी होती है, हमें प्राप्त होगी इससे पहले नहीं। यही वह दृढ़ता है जिस से वासनात्मक और अभिमानी जीवन पर मृत्यु आ जाती है। हमारी दृढ़ता यह है जैसा कि परमेश्वर का कथन है—

بَلٰى مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ.

बला मन अस्लमा वज्हहू लिल्लाहे व होवा मोहसिनुन।

अर्थात् बलि के समान मेरे आगे अपना शीश रख दो। ऐसा ही हम उस समय दृढ़ता के स्थान को प्राप्त कर सकेंगे जब कि हमारे व्यक्तित्व और शरीर के अंग प्रत्यंग तथा हमारे मन की समस्त शक्तियां उसी कार्य में संलग्न हो जाएं और हमारी मृत्यु हमारा जीवन उसी के लिए हो जाए। जैसा कि परमेश्वर का कथन है—

قُلْ اِنَّ صَلَاتِيْ وَنُسُكِيْ وَمَحْيَايَ وَ

مَمَاتِيْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ.

क़ुल इन्ना सलाती व नोसोकी व मह्याया व ममाती लिल्लाहे रब्बिल आलमीन।

अर्थात् इनको कह दो कि मेरी उपासना, मेरा बलिदान, मेरा जीवन, मेरा मरण सब परमेश्वर के लिए है। जब मनुष्य का प्रेम परमेश्वर के प्रति इस अवस्था तक पहुंच जाए कि उसका मरना और जीना अपने लिए नहीं प्रत्युत्त परमेश्वर के लिए ही हो जाता है तब परमेश्वर जो आदि काल से प्रेम करने वालों के साथ प्रेम करता आया है अपने अनुराग की चादर उस पर डाल देता है। इस प्रकार उन दो प्रेमों के संयोग से मनुष्य के अन्तःकरण में एक ज्योति उत्पन्न होती है जिसको संसार के लोग नहीं पहचान सकते और न समझ सकते हैं। सहस्रों सत्यप्रेमियों और ब्रह्मज्ञानियों का इसी लिए रक्त बहाया गया कि संसार ने उन्हें नहीं पहचाना वे केवल मात्र इसीलिए मक्कार और स्वार्थी कहलाए कि संसार उनके ज्योतिर्मय मुखमण्डल को देख न सका। जैसा कि परमात्मा का कथन है—

يَنْظُرُوْنَ اِلَيْكَ وَهُمْ لَا يُبْصِرُوْنَ

यन्ज़ोरूना इलैका व हुम ला युबसेरुन।

अर्थात् वे लोग जो अधर्मी हैं, तेरी ओर देखते तो हैं किन्तु उन्हें तू दिखाई नहीं देता। अतः जब उस अमर ज्योति का उद्भव होता है तो उस ज्योति के जन्म लेने के दिन से एक पार्थिव और सांसारिक व्यक्ति आध्यात्मिक महापुरुष बन जाता है। वह (परमेश्वर) जो प्रत्येक सत्ता का स्वामी है उसके भीतर से बोलता है और अपने परमेश्वरीय चमत्कार दिखलाता है और उसके हृदय को जो शुद्ध सात्विक प्रेम से परिप्लावित होता है, अपना परमासन बनाता है।

जब से यह व्यक्ति एक अलौकिक परिवर्तन पाकर एक नवीन व्यक्ति बन जाता है, उस समय से वह परमेश्वर उस व्यक्ति के लिए एक नवीन परमेश्वर हो जाता है तथा अपने नवीन स्वभावों और नवीन विधानों का प्रदर्शन करता है। यह बात नहीं कि वह नवीन परमेश्वर है अथवा स्वभाव नवीन है अपितु वही परमेश्वर नित्य के साधारण स्वभावों से सर्वथा भिन्न होता है जिससे सांसारिक दर्शन-शास्त्र सर्वथा अनभिज्ञ है। यह लोग जैसा कि परमेश्वर का कथन है—

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْرِىْ نَفْسَهُ ابْتِغَآءَ

مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌ بِالْعِبَادِ ۝

व मिनन्नासे मँयश्री नफ़्सहुब्तेग़ाअ मर्ज़ातिल्लाहे
वल्लाहो रऊफ़ुम्बिल् इबाद।

अर्थात् मनुष्यों में वे उच्चकोटि के मनुष्य हैं जो परमेश्वर की इच्छा में विलीन हो जाते हैं और अपने प्राण बेचकर परमेश्वर की इच्छा खरीद लेते हैं। यही वे महानुभाव हैं जिन पर परमेश्वर की अपार दया और कृपा है।

ऐसा ही वह व्यक्ति जो आध्यात्मिक अवस्था के स्थान तक पहुंच गया है वह अपने को परमेश्वर की भेंट कर देता है। परमेश्वर इस कथन में कहता है कि समस्त दुःखों से वह व्यक्ति मुक्ति पाता है जो मेरे लिए और मेरी इच्छा के लिए अपने प्राणों को दे देता है। और प्राण होमकर अपनी उस स्थिति का प्रमाण देता है कि वह परमेश्वर का है। वह अपनी सम्पूर्ण सत्ता और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ऐसी वस्तु समझता है जो सृष्टिकर्ता परमेश्वर की

आज्ञाकारी और सृष्टि की सेवा के लिए बनाई गई है। तदुपरान्त वास्तविक और सच्चे सत्कर्म और जो प्रत्येक प्रकार की शक्ति से सम्बन्धित हैं ऐसे प्रसन्न मन, प्रसन्न चित्त तथा शुद्ध हृदय से करता है मानो वह अपनी आज्ञाकारी और वफ़ादारी के दर्पण में अपने परमप्रिय परमेश्वर के दर्शन कर रहा है तथा उसका विचार और उसकी इच्छा परमेश्वर के विचार तथा परमेश्वर की इच्छा में एक रंग हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति सम्पूर्ण प्रतिष्ठा परमेश्वर आज्ञाकारी में पाता है। समस्त समुचित सात्विक-सरल-शुद्ध-कर्म दुःखद तथा अप्रिय-कठोर परिश्रम द्वारा नहीं, अपितु सुख और आनन्दाकर्षण से प्रगट होने लगते हैं। यह वह नक़द स्वर्ग है जो आध्यात्मिक पुरुष को इसी जीवन में मिलता है और वह स्वर्ग जो मृत्योपरान्त मिलेगा वह वास्तव में इसका प्रतिबिंब और प्रतीक है जिस को परलोक में परमेश्वर की महिमा साकार रूप में रूपान्तरित करके दिखलाएगी। परमेश्वर के पवित्र ग्रन्थ क़ुरान में इसी की ओर संकेत है :—

وَلِمَنْ خَافَ مَقَامَ رَبِّهِ جَنَّتَانِ ۝ وَ

سَقَاهُمْ رَبُّهُمْ شَرَابًا طَهُورًا - إِنَّ

الْأَبْرَارَ يَشْرَبُونَ مِنْ كَأْسٍ كَانَ

مِزَاجُهَا كَافُورًا - عَيْنًا يَشْرَبُ بِهَا عِبَادُ

اللّٰهِ يُفَجِّرُونَهَا تَفْجِيرًا - يُسْقَوْنَ فِيهَا

كَاسًا كَانَ مِزَاجُهَا زَنْجَبِيلًا عَيْنًا

فِيهَا تُسَمّٰى سَلْسَبِيلًا - اِنَّا اَعْتَدْنَا

لِلْكٰفِرِيْنَ سَلٰسِلَ وَاَغْلٰلًا وَّسَعِيْرًا

وَمَنْ كَانَ فِيْ هٰذِهٖ اَعْمٰى فَهُوَ فِي الْاٰخِرَةِ

اَعْمٰى وَاَضَلُّ سَبِيْلًا

वलेमन ख़ाफ़ा मक़ामा रब्बेही जन्नतान। व सक़ाहुम रब्बोहम शराबन तहूरा। इन्नल् अबरारा यश्रबूना मिन कासिन काना मिज़ाजोहा काफ़ूरा। ऐनैं यश्रबो बेहा इबादुल्लाहे युफ़ज्जेरुनहा तफ़्जीरा। युस्क़ौना फ़ीहा कासन काना मिज़ाजोहा ज़ञ्जबीला। ऐननफ़ीहा तुसम्मा सलसबीला। इन्ना आतदना लिल् काफ़िरीना सलासेला व अग़लालौं व सईरा। व मन काना फ़ी हाज़ेही आऽमा फ़ होवा फ़िल् आख़िरते आऽमा व अज़ल्लो सबीला।

अर्थात् जो व्यक्ति परमेश्वर से भय रखता है और उसकी महानता और तेजस्विता से डरता रहता है उसके लिए दो स्वर्ग हैं। एक यह लोक दूसरा परलोक। ऐसे लोग जो परमेश्वर में तल्लीन रहते हैं उन्हें परमेश्वर ने वह मधुर रस पिलाया है जिसने उन के हृदय तथा विचारों तथा धारणाओं को पवित्र कर दिया। भगद्भक्त वह शर्बत पी रहे हैं जिसमें काफ़ूर का मिश्रण है वे उस स्रोत से मधुपान करते हैं जिनका निर्माण वे स्वयं करते हैं।

काफ़ूरी और ज़न्जबीली शर्बत का भावार्थ :—

मैं पहले भी यह कह चुका हूँ कि "काफ़ूर" का शब्द इसलिए इस आयत (पवित्र कथन) में प्रयुक्त हुआ है कि अरबी भाषा में "कफ़र" दबाने और ढांपने को कहते हैं। अतः यह इस बात की ओर संकेत है कि उन्हों ने इतने शुद्ध हृदय से अपना सर्वस्व त्याग कर परमेश्वर की ओर झुकने का मधुर रस पिया है कि सांसारिक स्नेह की अग्नि सर्वथा मन्द पड़ गई है। यह बात सर्वमान्य है कि समस्त उद्वेग हृदयगत भावनाओं से जन्म लेते हैं। अतः जब हृदय दूषित भावनाओं से दूर चला जाए और उससे कोई सम्बन्ध शेष न रहे तो वे उद्वेग भी शनैः २ कम होने लगते हैं यहां तक कि समाप्त हो जाते हैं। अस्तु इस स्थान पर परमेश्वर के कथन का तात्पर्य यही है। वह अपने इस कथन में यह समझाता है कि जो उसकी ओर पूर्ण रूप से झुक गए वे मन के विकारों से बहुत दूर निकल गए और परमात्मा की ओर ऐसे झुक गए कि सांसारिक तत्परताओं से उनके हृदय ठण्डे हो गए तथा उनके विकृत उद्वेगों का दमन ऐसा हुआ जैसे काफ़ूर विषैले अंश को दबा देता है। पुनः कहा है कि वे लोग इस काफ़ूरी प्याला के पश्चात् ऐसे प्याले पीते हैं जिसमें 'ज़न्जबील' का मिश्रण है।

अब ज्ञात होना चाहिए कि 'ज़न्जबील' दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् 'ज़नाअ' और जबल से। ज़नाअ अरबी भाषा में ऊपर चढ़ने को कहते हैं और 'जबल' पर्वत को। अतः उसके शाब्दिक अर्थ यह हुए कि पर्वत पर चढ़ गया। अब ज्ञात होना चाहिए कि एक विषैले रोग के दब जाने के पश्चात् पूर्ण स्वस्थ होने तक मनुष्य पर दो अवस्थाएं आती हैं।

एक वह अवस्था जब कि विषैले अंश का आवेग सर्वथा समाप्त

हो जाता है तथा भयानक विकारों का वेग सुधार मार्ग की ओर चल पड़ता है। तथा विषैली अवस्थाओं का आक्रमण सकुशल बीत जाता है। एक भयानक घातक प्रकोप जो उठा था नीचे दब जाता है। किन्तु अभी तक अंगों में दुर्बलता शेष रहती है। कोई शक्ति का कार्य नहीं हो सकता। अभी मृतक की न्याईं गिरता पड़ता चलता है।

दूसरी वह अवस्था है जब कि वास्तविक स्वास्थ्य अपनी पूर्व दशा में आ जाता है तथा शरीर में शक्ति भी आ जाती है और खोई हुई शक्ति के वापस आ जाने से यह साहस उत्पन्न हो जाता कि निडर होकर बेधड़क पर्वत पर चढ़ जाए तथा सप्रसन्न हंसते खेलते ऊंची घाटियों पर दौड़ता चला जाए। अतः व्यवहार के तीसरे स्तर पर इस अवस्था के दर्शन होते हैं। ऐसी अवस्था के विषय में परमेश्वर अपने पवित्र कथन में कहता है कि परमेश्वर के सर्वोत्कृष्ट भक्त वे प्याले पीते हैं जिनमें ज़न्जबील (सोंठ) मिली हुई है। अर्थात् वह आध्यात्मिक अवस्था की पूर्ण शक्ति प्राप्त करके बड़ी २ घाटियों पर चढ़ जाते हैं और बड़े कठिन कार्य उनके सम्पन्न होते हैं तथा परमेश्वर के लिए आश्चर्यजनक मौत से खेलने वाले चमत्कारों को दिखलाते हैं।

ज़न्जबील का प्रभाव :—

इस स्थान पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वास्थ्य विज्ञान-वैद्यक शास्त्र में "ज़ंजबील" वह औषधि है जिसको हिन्दी में 'सोंठ' कहते हैं। वह जठराग्नि को शक्ति प्रदान करती है तथा दस्तों को रोकती है। उस का ज़ंजबील नाम इसलिए रखा गया कि मानो वह दुर्बलों को ऐसा सबल बनाती है और ऐसी गर्मी पहुंचाती है जिससे वे पर्वतों पर चढ़ सकें।

परमेश्वर के इन विभिन्न पवित्र कथनों के उल्लेख करने में

जिन में एक स्थान पर काफ़ूर का उल्लेख हुआ है और एक स्थान पर सोंठ का। उस का यह उद्देश्य है कि अपने भक्तों को समझाए कि जब मनुष्य मानसिक विकारों से विमुख होकर कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होता है तो सर्वप्रथम उस क्रिया के पश्चात् यह अवस्था उत्पन्न होती है कि जिससे उसके विषैले अंश नीचे दबाए जाते हैं तथा मानसिक विकार शनैः २ मिटने लगते हैं। जैसा कि कर्पूर विषैले अंश को दबा लेता है। इसी लिए वह हैज़ा और विषम ज्वरों में लाभदायक है। जब विषैले अंश का वेग सर्वथा जाता रहे और एक साधारण स्वास्थ्य जो दुर्बलता के साथ जुड़ा होता है, प्राप्त हो जाए तो फिर दूसरी अवस्था यह है कि वह दुर्बल रोगी ज़ंजबील के शर्बत से शक्ति पाता है। ज़न्जबील शर्बत से तात्पर्य परमेश्वर के सौन्दर्य की एक किरण है जो आत्मा का भोजन है। जब उस किरण के तेज से मनुष्य को बल मिलता है तो फिर बड़ी बड़ी ऊंची घाटियां और उच्च शिखरों पर चढ़ने के योग्य हो जाता है और परमेश्वर के रास्ते में ऐसे अश्चर्यजनक कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न कर लेता है कि जब तक यह प्रेमाग्नि किसी के हृदय में उत्पन्न न हो, कदापि ऐसे कार्य दिखला नहीं सकता। अतः परमेश्वर ने इस स्थान पर इन दो अवस्थाओं के समझाने के लिए अरबी भाषा के दो शब्दों से काम लिया है। एक 'काफ़ूर' से जो नीचे दबाने वाले को कहते हैं और दूसरे 'ज़ंजबील' से जो ऊपर चढ़ने वाले को कहते हैं। इस प्रकार योगियों के लिए इस मार्ग में यह दो अवस्थाएं नियत हैं।

परमेश्वर के उक्त पवित्र कथन का शेष भाग यह है :—

إِنَّآ أَعْتَدْنَا لِلْكَٰفِرِينَ سَلَٰسِلَا۟ وَأَغْلَٰلًا وَسَعِيرًا

इन्ना आऽतदना लिल् काफ़िरीना सलासेला व अग़्लालौं व सईरा।

अर्थात् हमने अधर्मियों के लिए जो सत्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं शृंखलाएं तैयार कर दी हैं एवं उनकी ग्रीवा के लिए तौक़ तथा धधकती हुई भयानक अग्नि की तीव्र लपटें भी। इस आयत का अर्थ यह है कि जो लोग शुद्ध हृदय से परमेश्वर को नहीं खोजते हैं उन पर परमेश्वर की ओर से मार पड़ती है। वे सांसारिक माया जाल और विपदाओं से ऐसे ग्रस्त रहते हैं मानों पैरों में जंजीरों से जकड़े हुए हैं तथा पार्थिव कार्यों में ऐसे उलटे घिरे होते हैं मानों उनकी गर्दन में एक तौक़ है जो आकाश (आध्यात्मिकता) की ओर सिर नहीं उठाने देता। उनके हृदयों में लोभ और मोह की एक प्रबल ज्वाला धू-धू करती रहती है कि यह धन प्राप्त हो जाए और वह जायदाद मिल जाए तथा अमुक वस्तु हमारे अधिकार में आ जाए तथा अमुक शत्रु पर हम विजय प्रप्त कर लें। इतना रुपया हो, इतना धन हो। चूंकि परमात्मा इन लोगों को नीच और पतित समझता है अतएव यह तीनों विपत्तियां उनको लगा देता है। इस स्थान पर इस बात की ओर संकेत है कि जब मनुष्य से कोई क्रिया सम्पन्न होती है तो उसी के अनुरूप परमेश्वर भी अपनी ओर एक क्रिया करता है। उदाहरतया मनुष्य जिस समय अपनी कोठरी के समस्त द्वार बंद कर दे तो मनुष्य की इस क्रिया के पश्चात्

परमेश्वर की ओर से यह प्रतिक्रिया होगी कि वह उस कोठरी में अन्धकार उत्पन्न कर दे क्योंकि जो बातें परमेश्वर के प्राकृतिक विधान में हमारे कर्मों के लिए एक अनिवार्य परिणाम के रूप में निश्चित हो चुकी हैं वे सब परमेश्वर के कार्य हैं। कारण यह है कि वही सब कार्यों का आदि कारण है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति कालकूट विषपान करले तो उसकी इस क्रिया के पश्चात परमेश्वर का यह कर्म होगा कि उसे मृत्यु दे देगा। इसी प्रकार यदि कोई अनुचित कर्म करे जो किसी संक्रामक और छूत के रोग का कारण हो तो उसकी उस क्रिया के पश्चात् परमेश्वर की क्रिया यह होगी कि वह छूत का रोग उसे पकड़ लेगा ।

अतः जिस प्रकार हमारे सांसारिक जीवन में स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारी प्रत्येक क्रिया के लिए एक अनिवार्य परिणाम है और वह परिणाम परमेश्वर मा कार्य है। इसी प्रकार कर्म के विषय में भी यही नियम है। जैसा कि परमेश्वर इन दो उदाहरणों में स्पष्ट बताता है।

اَلَّذِيْنَ جَاهَدُوْا فِيْنَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا ۚ فَلَمَّا زَاغُوْٓا اَزَاغَ اللّٰهُ قُلُوْبَهُمْ ۭ

अल्लज़ीना जाहदू फ़ीना.ल नहदेयन्नाहुम सोबोलना। फ़लम्मा ज़ाग़ू अज़ाग़ल्ला हो क़ुलूबहुम।

अर्थात् जो लोग इस कर्त्तव्य की ओर जागरुक हुए कि उन्होंने परमेश्वर की खोज में पूर्ण रूप से यथाविधि प्रयत्न किया तो

इस क्रिया के लिए अनिवार्य रूप में हमारी ओर से यह प्रतिक्रिया होगी कि हम उनको अपने मिलने का मार्ग दिखाएंगे। जिन लोगों ने अपने स्वभाव को पेच दर पेच बनाया तथा सरल और सीधे मार्ग पर चलना स्वीकार न किया तो इसके परिणाम स्वरूप हमारा कार्य यह होगा कि हम उनके हृदयों को टेढ़ा कर देंगे। इस अवस्था को अधिक स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझाया गया है :—

مَنْ كَانَ فِيْ هٰذِهٖٓ اَعْمٰى فَهُوَ فِى الْاٰخِرَةِ

اَعْمٰى وَاَضَلُّ سَبِيْلًا

मन काना फ़ी हाज़ेही आऽमा फ़होवा फ़िल आख़ेरते आऽमा व अज़ल्लो सबीला।

अर्थात् जो व्यक्ति इस संसार में अन्धा रहा वह आने वाले संसार में भी अन्धा ही होगा। अपितु अन्धों से अधिक अन्धा। यह इस बात की ओर संकेत है कि भक्त जनों को परमेश्वर के दर्शन इसी संसार में हो जाते हैं और वे इसी लोक में अपने प्रिय का संयोग पा लेते हैं जिसके लिए वे सब कुछ खोते हैं। इस आयत का तात्पर्य यह है कि स्वर्गीय जीवन की नींव इसी लोक से पड़ती है और नारकीय नेत्रहीनता की जड़ भी इस संसार का दूषित और अन्धकारमय जीवन है। पुनः कहा है—

وَبَشِّرِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ

اَنَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ

व बश्शेरिल्लज़ीना आमनू व अमेलुस्स्वालेहाते
अन्नालहुम जन्नातिन तजरी मिन तहतेहल अनहारो ।

अर्थात् जो लोग शुद्ध हृदय से परमेश्वर और उसके रसूल पर विश्वास करके पवित्रात्मीय वनते हैं तथा सत्कर्म करते हैं। वे उन वाटिकाओं के स्वामी हैं जिनके नीचे नहरें बह रही हैं।

इस कथन में परमेश्वर ने ईमान और विश्वास को वाटिका से उपमा दी है जिनके नीचे नहरें बहती हैं। अतः यह ज्ञात होना चाहिए कि इस स्थान पर एक उच्चकोटि के सूक्ष्म दार्शनिक तत्व के रूप में वतलाया गया है कि जो सम्बन्ध नहरों का वाटिका के साथ है वही सम्बन्ध कर्मों का विश्वास के साथ है। जैसे कोई वाटिका पानी के विना जीवित नहीं रह सकती इसी प्रकार कोई विश्वास विना सत्कर्मों के सजीव विश्वास नहीं कहला सकता। यदि विश्वास हो और सत्कर्म न हो तो वह विश्वास हेय है और यदि सत्कर्म हो और विश्वास न हो तो वे क्रियाएं आडम्बर तथा प्रदर्शन मात्र हैं।

इस्लामी स्वर्ग : स्वरूप

इस्लामी स्वर्ग की यही वास्तविकता है कि वह इस संसार के विश्वास और धर्म कर्म का एक प्रतिविंव है। वह कोई नवीन वस्तु नहीं जो वाहर से आकर मनुष्य को मिलेगी अपितु मनुष्य का स्वर्ग उसके भीतर से ही निकलता है तथा प्रत्येक का स्वर्ग उसी का ईमान (विश्वास) और उसी के सत्कर्म हैं जिनका इसी संसार में आनन्दानुभव होने लगता है तथा गुप्त रूप में ईमान और कर्मों के वाग, वाटिकाएं दृष्टिगोचर होने लगते

हैं और नहरें भीं दिखाई देती हैं। किन्तु परलोक में यही बाटिकाएँ खुले रूप में स्पष्टतया दिखाई देंगी। परमेश्वर की पवित्र वाणी हमें यही शिक्षा देती है कि सत्य तथा पवित्र, सुदृढ़ एवं सर्व प्रकार से पूर्ण विश्वास जो परमेश्वर और उसकी विशेषताओं और उसकी इच्छाओं के विषय में हो वह अति सुन्दर स्वर्ग तथा फलदार वृक्ष है। सत्कर्म उस स्वर्ग की नहरें हैं। जैसा कि उसका पवित्र कथन है :—

ضَرَبَ اللّٰهُ

مَثَلًا كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ

اَصْلُهَا ثَابِتٌ وَفَرْعُهَا فِي السَّمَآءِ

تُؤْتِيْ اُكُلَهَا كُلَّ حِيْنٍ ط

ज़रबल्लाहो मसलन कलेमतन त्वैयेबतन कशजरतिन त्वैयेबतिन अस्लोहा साबेतुन व फ़रूओहा फ़िस्समाए तोऽती ओकोलोहा कुल्ला हीन।

अर्थात् वह ईमान और विश्वास युक्त पौधा जो प्रत्येक अधिकता और अतिक्रमण अथवा न्यूनता एवं त्रुटि, विकार तथा भूठ एवं उपहास से अछूता और पवित्र तथा सर्व रूप से सम्पूर्ण हो उस वृक्ष के अनुरूप है जो प्रत्येक त्रुटि से पवित्र हो जिसकी मूल पृथ्वी में तथा शाखाएं आकाश में हों तथा अपने फल को सदा देता हो। ऐसा समय उस पर कभी नहीं आता कि उन शाखाओं में फल

न हों। इस दृष्टान्त में परमेश्वर ने ईमानी अर्थात् विश्वास युक्त वाक्य को सदैव फलदार वृक्ष से उपमा देकर तीन चिन्ह उसके वर्णन किए हैं :—

(१) प्रथम यह कि उसकी मूल जो उसके वास्तविक अर्थों का स्वरूप है मनुष्य की हृदय भूमि में लगी हुई हो अर्थात् मानवीय स्वभाव तथा अन्तः प्रेरणा ने उसकी वास्तविक सचाई सत्यता और तथ्य को स्वीकार कर लिया हो।

(२) दूसरा चिन्ह यह है कि इस "कलिमा" की शाखाएं आकाश में हों अर्थात यह विश्वास अपने भीतर समझ बूझ रखता हो तथा आकाशीय अर्थात आध्यात्मिक विधान जो परमेश्वर का कर्म है उस कर्म के अनुरूप हो। इसका अर्थ यह है कि उसकी शुद्धि तथा वास्तविकता के ठोस प्रमाण और तर्क प्राकृतिक विधान से मिल सकते हों तथा वे तर्क और प्रमाण ऐसे हों कि मानों आकाश है जिस तक आक्षेप का हाथ नहीं पहुंच सकता।

(३) तीसरा चिन्ह यह है कि वह फल जो खाने के योग्य हैं, सदैव रहने वाले तथा समाप्त न होने वाले हों अर्थात् संतत-सतत-निरन्तर अभ्यास के पश्चात् उसके वरदान, उसके सद्प्रभाव सदैव तथा प्रत्येक युग में प्रगट होते रहें और संसार उनका अनुभव करता रहे। यह नहीं कि किसी विशेष युग तक प्रगट हो कर पुनः आगे के लिए बन्द हो जाएं।

पुनः कहा है :—

وَمَثَلُ كَلِمَةٍ خَبِيثَةٍ كَشَجَرَةٍ

خَبِيثَةٍ اجْتُثَّتْ مِنْ فَوْقِ الْأَرْضِ

مَا لَهَا مِنْ قَرَارٍ

मसलो कलेमतिन ख़बीसतिन कशजरतिन ख़बीसति-
निजतुस्सत मिन फ़ौक़िल् अर्ज़ मा लहा मिन क़रार ।

अर्थात् पलीद और अपवित्र ईमानी कलिमा (विकृत विश्वास) उस वृक्ष के समान है जो पृथ्वी में उखड़ा पड़ा हो। अर्थात् मानवीय प्रवृति उसे स्वीकार नहीं करती और किसी प्रकार से उसे सन्तोष और चैन नहीं मिलता। न बौद्धिक तर्क वितर्कों से और न ही प्राकृतिक विधान से। वह केवल छिछली और कपोलकल्पित कहानियों के रूप में होता है।

इसके अतिरिक्त जैसा कि पवित्र क़ुरान ने परलोक में विश्वास के पवित्र वृक्षों को अंगूर (दाख) तथा दाड़िम एवं अत्युत्तम फलों और मेवों से उपमा दी है और बताया है कि उस दिन वे फल उन मेवों के अनुरूप होंगे तथा उसी प्रकार दिखाई भी देंगे। इसी प्रकार बेईमानी और अविश्वास के अपवित्र वृक्ष का नाम परलोक में जक़्क़ूम (थूहर) रखा है। जैसा कि परमेश्वर का पवित्र कथन है—

أَذَٰلِكَ خَيْرٌ نُّزُلًا أَمْ شَجَرَةُ الزَّقُّومِ

إِنَّا جَعَلْنَاهَا فِتْنَةً لِّلظَّالِمِينَ ۝ إِنَّهَا

شَجَرَةٌ تَخْرُجُ مِنْ أَصْلِ الْجَحِيمِ ۝

طَلْعُهَا كَأَنَّهُ رُءُوسُ الشَّيَاطِينِ ۝

إِنَّ شَجَرَةَ الزَّقُّومِ طَعَامُ الْأَثِيمِ

كَالْمُهْلِ يَغْلِي فِي الْبُطُونِ كَغَلْيِ

الْحَمِيمِ ۝ ذُقْ إِنَّكَ أَنتَ الْعَزِيزُ

الْكَرِيمُ ۝

अज़ालेका खैरुन्नोज़ोलन अम शजरतिज़्ज़क्कूमे इन्ना जअलनाहा फ़ितनतल्लिज़्ज़ालेमीना । इन्नहाशजरतुन तख़रोजो फ़ी अस्लिलजहीम । तलओहा कअन्नहू रऊसुश्शयातीने । इन्ना शजरतज़्ज़क्कूमे तआमुल असीम । कलमोहले यग़ली फ़िलबुतूने कग़लिल् जहीम । ज़ुक़ इन्नका अन्तल अज़ीज़ुल् करीम ।

अर्थात् तुम बतलाओ कि स्वर्ग की वाटिकाएं सुन्दर हैं अथवा थूहर का वृक्ष जो अत्याचारियों और आतताईयों के लिए एक भयानक प्रकोप है। थूहर वह एक वृक्ष है जो नरक की नींव से उगता है

अर्थात् अहं तथा गर्व और स्वाभिमान से जन्म लेता है। यही नरक का मूल है। इसका अंकुर ऐसा है जैसे शैतान (राक्षस) का मस्तक। शैतान का अर्थ है मिटने वाला। यह शब्द 'शैत' से निकला है। तात्पर्य यह कि इसका खाना मृत्यु को प्राप्त होना है। पुनः आया है कि ज़क़्क़ूम' का वृक्ष उन नारकीय लोगों का भोजन है जो जान बूझ कर पाप पंक में पग रखते थे। वह भोजन ऐसा है जैसा कि पिघला हुआ तांबा। खौलते हुए पानी के समान पेट में जोश मारने वाला। पुनः नारकीय लोगों को सम्बोधन करके कहा है कि उस वृक्ष को चखो। परमेश्वर प्रतिष्ठावान तथा महान है। यह कथन अत्यन्त क्रोध को प्रगट करने वाला है। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि यदि तू अभिमान न करता और अपनी बड़ाई तथा प्रतिष्ठा को सामने रख कर सत्यता से विमुख न होता तो आज तुझ को यह दारुण दुःख न उठाने पड़ते।

यह आयत इस ओर भी संकेत करती है कि वास्तव में यह शब्द 'ज़ुक़' और (अम) का योगिक शब्द है और अम् *"इन्नका अन्तलअज़ीज़ुल करीम"* का सारांश है। जिसमें एक अक्षर प्रारम्भ का तथा एक अक्षर अन्त का विद्यमान है और प्रयोग की अधिकता ने 'ज़ाल' को 'ज़ा' के साथ परिवर्तित कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसा कि परमेश्वर ने इसी संसार के ईमान और विश्वास के पौधे को अर्थात् विश्वास को स्वर्ग के साथ उपमा दी है। इसी प्रकार इस संसार के बेईमानी और अविश्वास को 'ज़क़्क़ूम' (थूहर) के साथ उपमा दी है। इसको नरक का वृक्ष बताया है और स्पष्ट कर दिया है कि स्वर्ग और नरक की जड़ इसी संसार से प्रारम्भ होती है जैसा कि नरक के प्रसंग में एक अन्य स्थान पर कहा है :—

نَارُ اللّٰهِ الْمُوْقَدَةُ الَّتِیْ تَطَّلِعُ عَلَی الْاَفْـِٕدَةِ ۝

नारुल्लाहिल मोक़दतुल्लतो तत्तलेओ अलल अफ़एदते ।

अर्थात् नरक वह अग्नि है जिसका उद्गम स्थान परमेश्वर का प्रकोप है और पाप से भड़कती है। यह हृदय पर अपना आतंक जमाती है। यह इस बात की ओर संकेत है कि उस अग्नि की वास्तविक जड़ वह दुःख, शोक, आकांक्षाएं और टीसें हैं जो हृदय को पकड़ती हैं क्योंकि समस्त आध्यात्मिक प्रकोप सर्वप्रथम हृदय से ही प्रारम्भ होते हैं पुनः समस्त शरीर पर छा जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक स्थान पर और कहा है—

وَقُوْدُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ ط

वक़ूदोहन्नासो वल् हिजारतो ।

अर्थात् नरक की अग्नि का ईंधन जिस से वह ज्वाला सदैव प्रज्वलित रहती है दो वस्तुएं है एक वे मनुष्य जो सच्चे परमेश्वर को छोड़ कर अन्य वस्तुओं की पूजा करते है अथवा उनकी इच्छा से उनकी पूजा की जाती है जैसा कि कहा है—

اِنَّكُمْ وَمَا تَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ حَصَبُ جَهَنَّمَ ۔

इन्नकुम वमा ताऽबोदूना मिन दूनिल्लाहे हसबो जहन्नमा।

अर्थात् तुम और तुम्हारे उपास्य देव जो मनुष्य हो कर परमेश्वर कहलाते रहे नरक में डाले जाएंगे।

(२) नरक का दूसरा ईंधन मूर्तियां हैं। तात्पर्य यह है कि यह वस्तुएं न होती तो नरक भी न होता। अतः इन समस्त आयतों से स्पष्ट है कि परमेश्वर के पवित्र कथन में स्वर्ग और नरक इस भौतिक संसार की न्याईं नहीं हैं अपितु इन दोनों का स्रोत और उद्गम स्थान आध्यात्मिक तथ्य है। इतना अवश्य है कि वे वस्तुएं परलोक में स्थूल रूप में दृष्टिगोचर होंगी किन्तु इस भौतिक जगत में नहीं होगी।

अब हम पुनः पूर्व विषय की ओर लौट कर कहते हैं कि परमेश्वर के साथ आध्यात्मिक एवं पूर्ण सम्बन्ध पैदा होने का साधन जो पवित्र क़ुरान ने हमें सिखलाया है इस्लाम और "*फ़ातेहा*" की प्रार्थना है। अर्थात् प्रथम यह कि अपने सम्पूर्ण जीवन को परमेश्वर के मार्ग में समर्पण कर देना तथा दूसरा यह कि उस प्रार्थना में लगे रहना जो सूरः फातेहा में मुसलमानों को सिखाई गई है। सम्पूर्ण इस्लाम का तत्व ये दोनों वस्तुएं हैं। 'इस्लाम' और 'फ़ातेहा' की प्रार्थना। संसार में परमेश्वर तक पहुंचने और वास्तविक मोक्ष का शीतल जल पीने के निमित्त यही एक उत्तम साधन है। अपितु यही एक वह साधन है जो प्राकृतिक विधान से मानव की चरम उन्नति तथा परमेश्वर प्राप्ति के लिए निश्चित किया है। वही लोग परमेश्वर को पाते हैं जो उस अध्यात्मिक अग्नि के भीतर—जो इस्लाम धर्म का वास्तविक अर्थ है—अपने आप को डालते हैं और जो फ़ातेहा की प्रार्थना में ध्यान मग्न रहते हैं।

इस्लाम क्या वस्तु है? वही प्रज्वलित अग्नि जो हमारे पाश-

विक और नीच जीवन को भस्म करके हमारे कृत्रिम और मिथ्या उपास्य देवों को जला कर सत्य और पावन उपास्य देव परमेश्वर के आगे हमारे प्राण, धन तथा हमारी प्रतिष्ठा और मान मर्यादा की वलि दे देती हैं। ऐसे स्रोत(चश्मा) में प्रवेश करके हम एक नवीन जीवन का जल पीते हैं और हमारी समस्त आध्यात्मिक शक्तियाँ परमेश्वर के साथ ऐसी एकमेक हो जाती हैं जैसे एक रिश्ते (नाते) का दूसरे रिश्ते के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है। विद्युत की न्याईं एक अग्नि हमारे भीतर से निकलती है और एक अग्नि ऊपर से हम पर उतरती है। इन दोनों लपटों के संयोग से हमारी समस्त आकांक्षाओं—काम, क्रोध, मद मोह, लोभ अहंकार आदि—तथा परमेश्वरेतर अन्य वस्तुओं का प्रेम भस्म हो जाता है और ईश प्रेम के आगे शेष समस्त वस्तुएं और इच्छाएं तुच्छ और हेय दिखाई देती हैं। और तव हम अपने पहले जीवन से मर जाते हैं। इस अवस्था का नाम पवित्र क़ुरान के अनुसार इस्लाम है। इस्लाम से हमारे मानसिक विकारों को मौत आती है तथा प्रार्थना से हमें दूसरे जीवन का दान मिलता है। इस दूसरे जीवन के लिए परमेश्वर की ईशवाणी की आवश्यकता है। इस अवसर पर पहुँचने का नाम *"लेक़ाए इलाही"* है अर्थात् परमेश्वर मिलन और उस के दर्शन। इस स्थान पर पहुँच कर मनुष्य का परमेश्वर के साथ ऐसा मिलाप होता है मानों वह उस को आंख से देखता है। उसे अलौकिक वल का वरदान मिलता है और उस की समस्त इन्द्रियां तथा सम्पूर्ण भीतरी शक्तियां निखर उठती हैं तथा उसके पवित्र जीवनाकर्षण में तीव्रता आ जाती है। इस अवस्था पर आकर परमेश्वर मनुष्य के नेत्र बन जाता है जिसके साथ वह देखता है। उस की वाणी हो जाता है जिस के साथ वह बोलता है। वह हाथ हो जाता है जिसके साथ वह आक्रमण करता है, और

कान हो जाता है जिस के साथ वह सुनता है और पैर हो जाता है जिस के साथ वह चलता है। परमेश्वर के इस पवित्र कथन में इसी तथ्य की ओर संकेत है—

يَدُ اللهِ فَوْقَ اَيْدِيْهِمْ

यदुल्लाहे फ़ौक़ा ऐदीहिम।

उस का यह हाथ परमेश्वर का हाथ है जो उन के हाथों पर है। इसी प्रकार परमेश्वर का कथन है—

وَمَا رَمَيْتَ اِذْ رَمَيْتَ وَلٰكِنَّ اللهَ رَمٰى۔

व मा रमैता इज़ रमैता व ला किन्नल्लाहा रमा।

अर्थात् जो तू ने चलाया, तू ने नहीं अपितु परमेश्वर ने चलाया है।

सारांश यह कि इस अवस्था में परमेश्वर के साथ प्रगाढ़ सम्पर्क स्थापित हो जाता है। परमेश्वर की पावन इच्छा आत्मा के कण-कण में समा जाती है तथा वे चारित्रिक अवस्थायें जो दुर्बल थीं, इस अवस्था में पहुंच कर सुदृढ़ पर्वतों की भांति अटल दिखाई देने लगती हैं। बुद्धि और विचार शक्ति अति तीक्ष्ण और कुशाग्र हो जाती है। इस कथन का यह अर्थ हैं। जैसाकि परमेश्वर का कहना है—

وَاَيَّدَهُمْ بِرُوْحٍ مِّنْهُ

व अय्यदहुम बेरूहिम्मिन हो ।

अर्थ—और हमने उन की ईशवाणी के द्वारा सहायता की इस स्थिति में प्रेम की निर्झरणी इस प्रकार ठाठें मारती है कि परमेश्वर के लिए मरना और परमेश्वर के लिए सहस्रों कष्ट सहन करना तथा अपमानित होना ऐसा सरल हो जाता है जैसे एक साधारण तृण का तोड़ना। ऐसा भक्त परमेश्वर की ओर खिंचा चला जाता है। उसे यह पता नहीं चलता कि कौन खींच रहा है। एक अलक्षित हाथ उसे उठाये फिरता है। परमेश्वर की इच्छाओं को पूरा करना उस के जीवन का मूलोद्देश्य हो जाता है। इस अवस्था में परमेश्वर अति निकट दिखाई देता है जैसा कि उस ने कहा है :—

نَحْنُ أَقْرَبُ إِلَيْهِ مِنْ حَبْلِ الْوَرِيدِ

नहनो अक़रबो इलैहे मिन हबलिल् वरीय

कि हम उस से उसकी प्राणनलिका से भी अधिक निकट हैं। ऐसी स्थिति में इस श्रेणी का व्यक्ति ऐसा होता है कि जिस प्रकार फल पक कर स्वयमेव वृक्ष पर से गिर जाता है। उसी प्रकार इस श्रेणी के मनुष्य के समस्त मायावी सम्बन्ध टूट जाते हैं। उस का अपने परमेश्वर से सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। वह संसार से बहुत दूर चला जाता है और परमेश्वर से उसका वार्तालाप प्रारम्भ हो जाता है।

इस पदवी की उपलब्धि के लिए अब भी द्वार खुले हुए हैं जैसे कि पहले खुले थे और अब भी परमेश्वर की विशेष कृपा द्वारा जिज्ञासुओं और खोजने वालों को यह पुरस्कार मिलता है जैसा कि पहले मिलता था। किन्तु यह पदवी केवल मौखिक प्रलापों और मुगलपाड़ों के साथ प्राप्त नहीं होती और न ही निस्सार लम्बी चौड़ी बातों से यह द्वार

खुलता है। चाहने वाले बहुत हैं किन्तु पाने वाले कम। इस का क्या कारण है? यहीकि यह पदवी सच्ची तपस्या एवं सच्चे परिश्रम पर आश्रित है। प्रलय पर्यंत कोरी बातें हांकते रहो, इस से क्या हो सकता है? इस प्रज्जवलित अग्नि में शुद्ध हृदय से पग रखना—जिस के भय से अन्य लोग दूर भागते हैं—इस मार्ग की पहली शर्त है। यदि क्रियाशीलता और कर्तव्य परायणता नहीं तो गप्पें मारना व्यर्थ है। इस विषय में परमेश्वर का कथन है:—

وَإِذَا سَأَلَكَ عِبَادِي عَنِّي فَإِنِّي

قَرِيبٌ ط أُجِيبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ إِذَا دَعَانِ

فَلْيَسْتَجِيبُوا لِي وَلْيُؤْمِنُوا بِي لَعَلَّهُمْ

يَرْشُدُونَ۔

व इज़ा सअलका इबादी अन्नी फ़इन्नी क़रीब। उज़ीबो दावतद्दाए इज़ादआने। फ़लयस्तजीबूली वल योऽमेनूबी लअल्लाहुम यर्शोदून।

अर्थात् मेरे भक्त यदि मेरे विषय में प्रश्न करें कि वह कहां हैं? तो उन को कह दो कि वह तुम से बहुत ही निकट है। परमेश्वर का कथन है कि मैं प्रार्थना करने वालों की प्रार्थना सुनता हूँ। अतः उन्हें चाहिये कि प्रार्थनाओं से मेरा दर्शन और मेरा सामीप्य खोजें और मुझ पर दृढ़ विश्वास रखें, और श्रद्धा उत्पन्न करें ताकि सफल हो जायें।

प्रश्न नं०—२

मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की क्या दशा होती है ?

इस प्रश्न के उत्तर में निवेदन है कि मृत्यु के पश्चात् जो कुछ मनुष्य की दशा होती है, वास्तव में वह कोई नवीन दशा नहीं होती प्रत्युत वही सांसारिक जीवन की अवस्थायें अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो जाती हैं। जो कुछ मनुष्य के विश्वास और कर्मों की उच्च अथवा पतित स्थिति होती है वह इस लोक में गुप्त रूप में उस के भीतर होती है और उसका जीवनप्रद अथवा विषाक्त प्रभाव गुप्त रूप में मानवीय शरीर पर डालता है किन्तु आने वाले लोक में ऐसा नहीं रहेगा, अपितु वे सभी स्थितियां स्पष्ट रूप से खुला खुला अपना रूप दिखायेंगी। इस का प्रतिरूप स्वप्नावस्था में पाया जाता है। मनुष्य के शरीर पर जिस प्रकार के विकार अपना आतंक जमाये रहते हैं, स्वप्न जगत में उसी प्रकार की स्थूल और शारीरिक स्थितियां दृष्टिगोचर होती हैं। जब कोई तीव्र ज्वर चढ़ने को होता है तो स्वप्न में प्रायः अग्नि की लपटें दिखाई देती हैं। ठीक इसी प्रकार बलग़मी ज्वरों, नज़ला, जुकाम तथा रेशा के आक्रमण में मनुष्य अपने को जल में देखता है। अस्तु जिस प्रकार के रोगों के लिये शरीर ने तैयारी की हो, वही दशा स्वप्नावस्था में प्रतिबिम्बित हो जाती है।

अतः स्वप्न की दशा पर विचार करने से प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है कि परलोक में भी यह परमेश्वरीय विधान है क्योंकि जिस प्रकार स्वप्न हम में एक विशेष परिवर्तन लाकर आत्मिक सूक्ष्मता को

भौतिक स्थूलता के रूप में परिवर्तित करके दिखलाता है। ऐसा ही उस लोक में भी होगा। उस दिन हमारे कर्म और उन के फल स्थूल रूप में प्रकट होंगे और जो कुछ इस लोक से गुप्त रूप में साथ ले जायेंगे वह सब उस दिन हमारी मुखाकृति पर दिखाई देगा। जैसा कि मनुष्य जो कुछ स्वप्नावस्था में भांति भांति की चित्रावलि देखता है और यदाकदा वह उन्हें अवास्तविक रूप में नहीं अपितु उन्हें वास्तविक वस्तुएं समझ कर उन पर पूर्ण विश्वास कर लेता है, वैसा ही उस लोक में होगा अपितु परमेश्वर रूपकों के द्वारा अपनी नवीन शक्ति और नवीन सत्ता प्रदर्शित करेगा। चूंकि वह सर्वरूप सम्पूर्ण शक्ति है अतः यदि हम रूपकों का नाम भी न लें और यह कहें कि वह परमेश्वर की लीला से एक नवीन उत्पत्ति है तो यह कहना सर्वथा उचित, शुद्ध और तर्क-संगत है, परमात्मा का पवित्र कथन है:—

فَلَا تَعْلَمُ نَفْسٌ مَّآ اُخْفِىَ لَهُمْ

مِّنْ قُرَّةِ اَعْيُنٍ

फ़ला ताऽलमो नफ़सुम्मा उख़्फ़िया लहुम मिन कुर्रते आयोनिन।

अर्थात् कोई भी भलाई करने वाला व्यक्ति यह नहीं जानता कि वे क्या २ पुरस्कार हैं जो उसके लिए गुप्त हैं। तात्पर्य यह कि परमेश्वर ने उन समस्त पुरस्कारों को गुप्त रूप प्रदान किया जिन की इस लोक में कोई उपमा नहीं। यह तो स्पष्ट है कि संसार के पुरस्कार हम से छिपे हुए और गुप्त नहीं हैं। दूध, अनार, अंगूर आदि को हम भली प्रकार जानते हैं और सदैव यह वस्तुएं खाते हैं। अतः इस से विदित हुआ कि

वे पदार्थ इन से भिन्न हैं और उन पदार्थों की इन वस्तुओं से केवल नाम की दृष्टि से समानता है। अतएव जिस ने स्वर्ग को संसार की वस्तुओं का ढेर समझा, उस ने पवित्र .कुरान का एक अक्षर भी नहीं समझा।

इस पवित्र कथन की व्याख्या में जिस का अभी मैंने उल्लेख किया है हमारे परम प्रिय अवतार पैग़म्बरे इस्लाम हजरत मुहम्मद साहिब का कथन है कि स्वर्ग और उस के पुरस्कार ऐसी वस्तुएं हैं जो न कभी किसी नेत्र ने देखीं हैं और न किसी कान ने सुनी और न ही हृदय उसकी कल्पना कर सकता है। यद्यपि हम संसार के पुरस्कारों को नेत्रों से देखते हैं और कानों से सुनते हैं तथा हृदय-कक्ष में उन की अनुभूति भी होती है। अत: जबकि परमात्मा और उस का अवतार उन पदार्थों को सर्वथा अनोखी वस्तुएं बताता है तो हम उस समय पवित्र .कुरान से दूर चले जाते हैं जब यह विचार करते हैं कि स्वर्ग में भी इस संसार का ही दुग्ध होगा जो गायों और भैंसों से दुहा जाता है। मानो दूध देने वाले पशुओं के वहां रेवड़ के रेवड़ पाले होंगे और वृक्षों पर मधुमक्खियों ने बहुत से छत्ते लगाये हुए होंगे और ईशदूत (फरिश्ते) ढूँढ ढूँढ कर उनसे मधु निकालेंगे और नहरों में डालेंगे। क्या इन विचारों का उस शिक्षा से कोई सम्बन्ध है जो इन आयतों (कथन) में विद्यमान है? संसार ने उन वस्तुओं को कभी नहीं देखा। वे पदार्थ आत्मा को उद्दीप्त करते हैं और परमेश्वरीय ज्ञान में वृद्धि करते हैं जो आध्यात्मिक भोजन है। यद्यपि उन भोजनों का सम्पूर्ण चित्र स्थूल रूप में दर्शाया गया है। किन्तु साथ ही साथ यह भी बताया गया है कि उस का उद्गम स्थान आत्मा और सत्यता है।

कोई यह न समझे कि पवित्र .कुरान के निम्नलिखित कथन में यह पाया जाता है कि जो पुरस्कार स्वर्ग में दिए जायेंगे उन पुरस्कारों

को देख कर स्वर्गिक व्यक्ति उनको पहचान लेंगे कि ये पुरस्कार और आनन्ददायक पदार्थ हमें पहले भी मिले थे। जैसा कि परमेश्वर का कथन है :—

وَبَشِّرِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
اَنَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ مِنْ تَحْتِهَا
الْاَنْهٰرُ كُلَّمَا رُزِقُوْا مِنْهَا مِنْ
ثَمَرَةٍ رِّزْقًا قَالُوْا هٰذَا الَّذِیْ
رُزِقْنَا مِنْ قَبْلُ وَاُتُوْا بِهٖ مُتَشَابِهًا ط

व बश्शेरिल्लज़ीना आमनू व अमिलुस्वालेहाते अन्नालहुम जन्नातिन तजरी मिन तहतेहलअनहारो कुल्लमा रोज़ेक़ू मिनहा मिन समरतिर्रिज़क़ंन क़ालू हाज़-ल्लज़ी रोज़िक़्ना मिन क़ब्लो व ओतूबेही मुतशाबेहा।

अर्थात् जो लोग दृढ़ विश्वासी और ईमान लाने वाले एवं सत्कर्म करने वाले हैं और जिन में लेशमात्र भी कमी नहीं, उन्हें शुभ-सूचना दे दो कि वे उस स्वर्ग के स्वामी हैं जिस के अन्दर नहरें बहती हैं। जब वे परलोक में अलौकिक वृक्षों के उन फलों को जो इस सांसारिक जीवन में ही उन को मिल चुके थे,—पायेंगे तो कहेंगे कि यह तो

वे फल हैं जो हमें पहले ही दिये गये थे क्योंकि वे लोग उन फलों को उन पहले फलों के अनुरूप ही पायेंगे।

अब यह धारणा कि पहले फलों से तात्पर्य संसार के भौतिक पुरस्कार हैं, बड़ी भारी भूल है तथा परमेश्वर के पवित्र कथन के स्पष्ट अर्थ तथा भाव के सर्वथा विपरीत है। परमेश्वर का इस वाक्य में यह कथन है कि जिन्हों ने विश्वास को दृढ़ किया और ईमान लाये तथा सत्कर्म किए उन्होंने अपने हाथों से एक स्वर्ग का निर्माण किया है, जिसके वृक्ष ईमान और विश्वास और जिसकी नहरें सत्कर्म हैं। इसी स्वर्ग का वे परलोक में भी फल भोगेंगे। वे फल अधिक स्पष्ट तथा मधुर होंगे। चूंकि वे आध्यात्मिक क्षेत्र में इन फलों को संसार में खा चुके होंगे इस लिए दूसरे जगत (परलोक) में उन फलों को पहचान लेंगे और कहेंगे कि ये तो वही फल मालूम होते हैं जो पहले हमारे खाने में आ चुके हैं। वे इन फलों को उस पहले भोजन के सदृश पायेंगे। अतः यह आयत (परमेश्वरीय पवित्र कथन) स्पष्ट रूप से बता रही है कि जो लोग संसार में परमेश्वर के प्रेम का भोजन खाते थे, अब स्थूल रूप में वह भोजन उन्हें मिलेगा और चूंकि वे लोग प्रेम का आनन्दानुभव कर चुके थे तथा इस स्थिति से परिचित थे इस लिए उनकी आत्मा को वह युग स्मरण हो आयेगा कि जब वे एकांत में किसी कक्ष में बैठ कर और रात्रि के अन्धकारमय नीरव और शांतमय क्षणों में प्रेम पूर्वक अपने परम प्रिय परमेश्वर का स्मरण करते और उस स्मरण से आनन्द भोग करते थे। कहने का तात्पर्य यह कि इस स्थान पर शारीरिक या भौतिक स्थूल भोजनों की कोई चर्चा नहीं। यदि किसी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हो कि जब कि आत्मिक रूप में ब्रह्म ज्ञानियों को यह भोजन संसार में मिल चुका था तो फिर यह कहना कैसे उचित हो सकता है

कि वे ऐसे पुरस्कार हैं कि जिन्हें न संसार में किसी ने देखा और न किसी ने सुना और न किसी के हृदय में उन का संचार हुआ। इस स्थिति में इन दोनों कथनों में विरोध पाया जाता है तो उस का उत्तर यह है कि विरोध उस दशा में होता है कि जब इस कथन में संसार के पदार्थ भौतिक पुरस्कार अभीष्ट होते। परन्तु इस स्थान पर सांसारिक भौतिक पदार्थ अभीष्ट नहीं हैं, जो कुछ ब्रह्म जिज्ञासुओं और ब्रह्मज्ञानियों में ज्ञान के रूप में मिलता है, वह वास्तव में परलोक का पुरस्कार होता है जिसकी बानगी उन्हें अधिक उत्तेजित और प्रोत्साहित करने के लिए पहले ही दी जाती है।

स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर भक्त संसार के लोगों में से नहीं होता। इसी लिये संसार उस से शत्रुता रखता है, अपितु वह तो पारलौकिक जगत से होता है। इसी लिये पारलौकिक पुरस्कार उसे मिलते हैं। संसार का मनुष्य सांसारिक पुरस्कार पाता है और पारलौकिक व्यक्ति पारलौकिक पुरस्कारों को प्राप्त करता है। अतः यह सर्वथा सत्य है कि वे पदार्थ और पुरस्कार संसार के कानों और संसार के हृदयों तथा सांसारिक नेत्रों से गुप्त रखे गए हैं। किन्तु जिस के सांसारिक जीवन पर मृत्यु आ जाये और वह अमृत प्याला उसे सूक्ष्म रूप (आध्यात्मिक रूप) में पिलाया जाए जो परलोक में स्थूल रूप में उसे पिलाया जायेगा। उस को यह अमृतपान उस समय स्मरण हो आयेगा जब कि वही प्याला स्थूल में उसे दिया जाएगा। किन्तु यह भी सत्य है कि वह व्यक्ति इस पुरस्कार से संसार के नेत्रों और कानों को सर्वथा अनभिज्ञ समझेगा। चूंकि वह संसार में था, यद्यपि संसार से उस का कोई सम्बन्ध नहीं था, तथापि वह भी साक्षी देगा कि संसार के पुरस्कारों में से वह पुरस्कार नहीं। न संसार में उसके नेत्रों ने ऐसा

पुरस्कार देखा, न कानों ने सुना और न ही हृदय में उसका अनुभव हुआ अपितु पारलौकिक जीवन में उसकी बानगी देखी जो संसार में से नहीं थी बल्कि अग्रिम जगत अर्थात् परलोक की एक सूचना थी और उसी से उसका सम्बन्ध था संसार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

परलोक के तीन रहस्य

अब सैद्धान्तिक मानदण्ड के रूप में यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि मृत्योपरांत जिन स्थितियों से सम्बन्ध पड़ता है, पवित्र क़ुरान ने उन्हें तीन भागों में विभक्त किया है। परलोक के विषय में पवित्र क़ुरान ने तीन गूढ़ रहस्य बताए हैं जिन की चर्चा हम पृथक् २ करते हैं :—

ब्रह्मज्ञान का प्रथम रहस्य :—

ज्ञान का प्रथम तत्व यह है कि जिस के विषय में पवित्र क़ुरान बार बार कहता है कि परलोक कोई नवीन वस्तु नहीं है अपितु इस के सभी दृश्य इसी सांसारिक जीवन का प्रतिबिम्ब और प्रतिछाया हैं जैसाकि कहा गया है :—

وَكُلَّ إِنْسَانٍ أَلْزَمْنَاهُ طَائِرَهُ فِي

عُنُقِهِ وَنُخْرِجُ لَهُ يَوْمَ الْقِيَامَةِ كِتَابًا

يَلْقَاهُ مَنْشُورًا ۔

वकुल्ला इन्सानिन अलज़म्नाहो ताएरोहू फ़ी ओनो-क़ेही । व नोख़रेजो लहू यौमल क़ियामते किताबैं यलक़ाहो मनशूरा ।

अर्थात् हमने इसी संसार में प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव उस के कण्ठ से बांध रखा है और इन्हीं गुप्त प्रभावों को हम प्रलय के दिन दर्शायें गे और एक स्पष्ट कर्म सूची के रूप में दिखा देंगे ।

पवित्र क़ुरान के इस कथन में जो 'तायर' का शब्द है उस के विषय में विदित होना चाहिये कि 'तायर' वास्तव में पत्ती को कहते हैं। इस के अतिरिक्त यह रूपक भी है। जिस से कर्म अभीष्ट है! क्योंकि प्रत्येक कर्म चाहे वह सत्कर्म हो अथवा दुष्कर्म वह सम्पन्न होने के पश्चात् पत्ती की न्याईं उड़ जाता है तथा उसका श्रम एवं आनन्द समाप्त हो जाता है और हृदय पर उसकी म्लानता या प्रसन्नता शेष रह जाती है। यह क़ुरान का मत है कि प्रत्येक कर्म गुप्त रूप से अपना चिन्ह जमाता रहता है । मनुष्य का जिस प्रकार का कर्म होता है उस के अनुसार परमेश्वर की ओर से एक प्रतिक्रिया होती है और वह प्रति-क्रिया उस पाप को अथवा उस के पुण्य को नष्ट नहीं होने देती ! अपितु उसके चिन्ह हृदय पर, मुख पर, नेत्रों पर कानों और पैरों पर लिखे जाते हैं। यही गुप्त रूप में कर्मों की एक सूची है जो परलोक में स्पष्ट रूप से व्यक्त हो जाएगी।

इस के अतिरिक्त एक अन्य स्थान पर स्वर्गीय लोगों के विषय में कहा गया है :—

يَوْمَ تَرَى الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنَاتِ

يَسْعٰى نُوْرُهُمْ بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَ

بِاَيْمَانِهِمْ

यौमा तरलमोऽमीना वल मोऽमेनाते यसआ नूरोहुम बैना ऐदीहिम् व बे ऐमानेहिम् ।

अर्थात् उस दिन भी ईमान और विश्वास की ज्योति जो अव्यक्त रूप में धर्म प्रेमियों और ईश्वर भक्तों को मिली है व्यक्त रूप में उनके आगे और उन के दक्षिण हाथ पर दौड़ती दृष्टिगोचर होगी !

पुन: एक स्थान पर पथभ्रष्ट, पतित एवं व्यभिचारियों को संबोधन करके कहा है—

اَلْهٰكُمُ التَّكَاثُرُ حَتّٰى زُرْتُمُ

الْمَقَابِرَ كَلَّا سَوْفَ تَعْلَمُوْنَ

ثُمَّ كَلَّا سَوْفَ تَعْلَمُوْنَ كَلَّا

تَوْ تَعْلَمُوْنَ عِلْمَ الْيَقِيْنِ لَتَرَوُنَّ
الْجَحِيْمَ ثُمَّ لَتَرَوُنَّهَا عَيْنَ
الْيَقِيْنِ ثُمَّ لَتُسْئَلُنَّ يَوْمَئِذٍ
عَنِ النَّعِيْمِ۔

अलहाकोमुत्कासोरो हता ज़ुर्तुमुल् मक़ाबेरा। कल्ला सौफ़ातालमूना सुम्माकल्ला सौफ़ा तालमूना। कल्ला लौतालमूना इल्मुलयक़ीन। लतरवुन्नल् जहीम। सुम्मा ल तरवुन्ना हा ऐनल् यक़ीन। सुम्मा लतुसअलुन्ना यौम-एज़िन अनिन्नईम।

अर्थात् सांसारिक माया मोह की अधिकता ने तुम्हें परलोक की खोज से पथभ्रष्ट कर दिया और उस से रोक दिया। यहां तक कि तुम क़ब्रों में जा पड़े अर्थात् मृत्यु ने आ दबोचा। संसार से इतना गहरा सम्बन्ध न जोड़ो। तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जाएगा कि संसार से मन लगाना अच्छा नहीं। पुनः मैं कहता हूं कि निकट के भविष्य में तुम्हें विदित हो जायेगा कि संसार से मन लगाना अच्छा नहीं। यदि तुम्हारे पास निर्णयात्मक ज्ञान-शक्ति है तो तुम नरक को इसी जीवन में देख लोगे। पुनः यमलोक में जाकर अपनी निश्चयात्मक दृष्टि से देख लोगे। पुनः प्रलय में सूक्ष्म उत्पत्ति होने पर

पूर्ण रूप से पकड़ में आ जाओगे! तत्पश्चात् भयानक प्रकोप और मार तुम पर पड़ेगी। केवल मौखिक नहीं अपितु यथार्थ रूप में और प्रत्यक्ष रूप में तुम्हें नरक का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।

इन आयतों में परमेश्वर ने स्पष्ट रूप से बता दिया है कि दुष्टों के लिये इसी जगत में नारकीय जीवन अव्यक्त रूप में होता है! यदि वे इस पर विचार करें तो अपने नरक को इसी लोक में देख लेंगे।

ज्ञान के तीन प्रकार :—

इस स्थान पर परमेश्वर ने ज्ञान को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया है :—

(१) अनुमान द्वारा निश्चय करना,

(२) आंख से साक्षात् देख कर निश्चय करना तथा

(३) स्वयं स्पर्श कर के निश्चय करना।

जन साधारण के समझाने के लिये इन तीनों प्रकार के ज्ञानों के निम्नलिखित उदाहरण हैं :—

जैसे यदि एक व्यक्ति दूर से किसी स्थान पर एक बहुत बड़ा धूम्र पुञ्ज देखे तथा उस धूम्र पुञ्ज से ध्यान हट कर आग की ओर परिवर्तित हो जाये, और अग्नि का होना निश्चय जाने और इस विचार से, कि धुआं और अग्नि में अटूट सम्बन्ध है और आदि काल से यह सम्बन्ध चला आ रहा है, यह निश्चय करे कि जहां धुआं होगा वहां अग्नि अवश्य होगी। अतः इस ज्ञान का नाम है 'इल्मुलयक़ीन' अर्थात् अनुमान द्वारा निश्चय करना। तत्पश्चात् जब अग्नि के अंगारे और लपटें दिखाई देने लगें तो उस ज्ञान का नाम 'ऐनुलयकीन' अर्थात् नेत्रों से देख कर निर्णय पर पहुंच जाना, और जब उस अग्नि में प्रवेश करके उसकी उष्णता और जलन

अनुभव करें तो उस ज्ञान का नाम 'हक़्क़ुलयक़ीन' अर्थात् स्वयं स्पर्श करके और परीक्षण करके निश्चय प्राप्त करना कहलाता है।

अब परमेश्वर का कथन है कि नरक की सत्ता का अनुमानित ज्ञान तो इसी संसार में हो सकता है। परन्तु यम लोक में नेत्रों से देख कर साक्षात् रूप से भी ज्ञान प्राप्त होगा तथा परलोक में जहां सूक्ष्म शरीर पुण्य अथवा दण्ड भोगने के लिए मिलता है वही ज्ञान पूर्ण ज्ञान के स्तर पर पहुंच जायेगा।

तीन लोक

इस स्थान पर विदित होना चाहिये कि पवित्र क़ुरान की शिक्षा के अनुसार तीन लोक सिद्ध हो सकते हैं।

प्रथम यह संसार जिसका नाम कर्मलोक है और जो सृष्टि का आदि है। इसी लोक में मनुष्य पुण्य अथवा पापार्जन करता है और यद्यपि पारलौकिक जीवन में साधुजनों के लिये उन्नति है किन्तु वह केवल परमेश्वर की कृपा से है। मानव के कर्मों का उस में कोई अधिकार नहीं।

दूसरे लोक का नाम "बर्ज़ख़" है। वास्तव में 'बर्ज़ख़' शब्द अरबी भाषा में उस वस्तु को कहते हैं जो दो वस्तुओं के मध्य में स्थित हो। चूंकि यह पारलौकिक जीवन काल तथा आदि सृष्टि इहलोक के मध्य में स्थित है। इस लिये इस का नाम 'बर्ज़ख़' है। किन्तु यह शब्द प्राचीनकाल से जब से सृष्टि की नींव पड़ी, मध्य लोक के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः यह शब्द मध्यलोक की स्थिति पर स्वयं एक साक्षी है। हम 'मिननुर्रहमान' में सिद्ध कर चुके हैं कि अरबी के शब्द वे शब्द हैं जो परमेश्वर के मुख से निकले हैं और विश्व में यही एकमात्र भाषा है

जो परमेश्वर की भाषा तथा प्राचीन एवं समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत और समस्त भाषाओं की जननी और परमेश्वर की ईशवाणी का प्रथम और अन्तिम सिंहासन है। परमेश्वर की ईशवाणी का प्रथम सिंहासन इस लिये कि समस्त अरबी भाषा परमेश्वर की वाणी थी जो प्राचीन काल से परमेश्वर के साथ थी। पुनः वही पवित्रवाणी संसार में अवतरित हुई और संसार ने उस से अपनी बोलियां और भाषायें बनाईं। अन्तिम सिंहासन परमात्मा का इस लिये अरबी भाषा ठहरा कि परमेश्वर का अन्तिम ग्रन्थ जो पवित्र .कुरान है अरबी भाषा में अवतीर्ण हुआ।

अतः 'बर्ज़ख़' अरबी शब्द है जो "ज़ख़" और "बर" के संयोग से बना है। जिस का अर्थ यह है कि कर्तव्य और कर्ममार्ग समाप्त हो गया और एक गुप्त अवस्था में पड़ गया। 'बर्ज़ख़' की दशा वह दशा है जब कि यह नाशवान मानव पंजर अस्त-व्यस्त हो जाता है। शरीर और आत्मा पथक् २ हो जाते हैं, तथा जैसा कि देखा गया है कि शरीर किसी गढ़े में डाल दिया जाता है और जीवात्मा भी एक प्रकार के गढ़े में पड़ जाती है! जैसा कि 'ज़ख़' शब्द बतलाता है क्योंकि वह जीवात्मा सत्कर्म अथवा दुष्कर्म करने की सामर्थ्य नहीं रखती जिस प्रकार शरीर के सम्पर्क से उस के द्वारा सम्पन्न हो सकते थे। यह तो स्पष्ट है कि हमारी आत्मा का उत्तम स्वास्थ्य शरीर पर निर्भर है। मस्तिष्क के एक विशेष भाग पर चोट लगने से स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है तथा दूसरे भाग पर चोट पड़ने से विचार और चेतना शक्ति का ह्रास होकर समस्त होश-हवास समाप्त हो जाते हैं। यदि मस्तिष्क में किसी प्रकार की खिचावट या तनाव आ जाए अथवा सूजन उत्पन्न हो जाए, रक्त अथवा अन्य पदार्थ रुक जाए और किसी कठोर अथवा नर्म ग्रन्थि को जन्म दे तो

बेहोशी या मिर्गी अथवा मूर्छा आदि का शीघ्र ही आक्रमण हो जाता है अतः हमारा प्राचीन अनुभव हमें निश्चय रूप से सिखलाता है कि हमारी आत्मा बिना शारीरिक बन्धन के सर्वथा निकम्मी है।

अतः हमारी यह सूझ और हमारी यह विचारणा सर्वथा निस्सार और निरर्थक है कि किसी समय हमारी अकेली आत्मा जिस के साथ शरीर नहीं है, कोई आनन्द भोग सकती है। यदि हम उसे कहानी के रूप में स्वीकार करें तो करें किन्तु बुद्धि इस को कभी भी स्वीकार नहीं करेगी क्योंकि इस के साथ कोई बौद्धिक तर्क नहीं। हमारी समझ से यह तर्क सर्वथा बाहर है कि वह हमारी आत्मा जो शरीर के साधारण से साधारण तथा तुच्छातितुच्छ विकारों से निकम्मी हो कर बैठ जाती है। वह उस दिन कैसे अपनी स्वस्थ और पूर्ण अवस्था में रहेगी जबकि शरीर के सम्बन्ध से वंचित कर दी जाए। क्या प्रतिदिन का अनुभव हमें नहीं बताता कि आत्मा के स्वास्थ्य के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। जब हम में से एक व्यक्ति कपिल वृद्ध हो जाता है तो साथ ही उस की आत्मा भी वृद्ध हो जाती है। उस का समस्त ज्ञान बुढ़ापे का चोर चुरा कर ले जाता है। जैसा कि परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

لِكَيْلَا يَعْلَمَ بَعْدَ عِلْمٍ شَيْئًا ۚ

ले कैला यऽलमो बादा इल्मिन शैअन।

अर्थात् मनुष्य वृद्ध हो कर ऐसी अवस्था को पहुंच जाता है जहां पढ़ लिख कर पुनः अज्ञानी बन जाता है। अतः हमारा अनुभव इस बात के लिये एक अकाट्य तर्क है कि आत्मा शरीर के बिना कोई चीज नहीं। यह विचार भी वास्तविक सत्यता की ओर मनुष्य का ध्यान

आकर्षित कराता है कि यदि आत्मा शरीर के बिना कोई सत्ता रखती तो परमेश्वर का यह कार्य व्यर्थ और निस्सार होता कि उसको अकारण ही नश्वर शरीर के साथ जोड़ दिया। यह भी विचारणीय है कि परमेश्वर ने मनुष्य को असीम उन्नति के लिये उत्पन्न किया है। अतः जिस दशा में मनुष्य इस संक्षिप्त जीवन की उन्नति को बिना शारीरिक सम्बन्ध के प्राप्त नहीं कर सका तो किस प्रकार आशा करें कि असीम उन्नति को जो अपरिमित, और अपरम्पार है बिना शारीरिक सम्पर्क के स्वतः ही प्राप्त कर लेगा।

अतएव इन समस्त तर्कों और प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि इस्लामी सिद्धान्तों के अनुसार इस कर्मभूमि (संसार) में कार्य परिणति की पूर्णता के निमित्त आत्मा का शरीर के साथ अनिवार्य और स्थायी सम्बन्ध है। यद्यपि मृत्यु (भौतिक देहावसान) के पश्चात् यह नाशवान् शरीर आत्मा से पृथक् हो जाता है तथापि परलोक में प्रत्येक आत्मा को अपने कर्मों का यथोचित फल भोगने के लिये एक सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है। वह शरीर इस भौतिक शरीर की तरह न होकर एक अलौकिक प्रकाशमय अथवा काला धूम्रमय होता है अर्थात् कर्मगति के अनुसार ही शरीर का निर्माण होता है। मानों उस संसार में पहुँच कर मनुष्य के कर्म ही शरीर का रूप धारण कर लेते हैं। परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरान में इसका अनेकों बार उल्लेख हुआ है। वहाँ कुछ शरीर प्रभायुक्त प्रकाशमय और कुछ शरीर कान्तिहीन तमोमय बताये गये हैं, जिनकी सृष्टि क्रमानुसार सत्-कर्मों की ज्योति अथवा दुष्कर्मों की कालिमा से की गई है। यद्यपि यह एक अत्यन्त गूढ़ रहस्य है परन्तु अयुक्ति अथवा अनुचित नहीं। पूर्णमानव इसी जगत में अपने भौतिक चोले में रहते हुए एक अलौकिक ज्योतिर्मय

व्यक्तित्व प्राप्त कर सकता है। भक्त और भगवान के एकान्त मिलन के क्षेत्रों में इसके अगणित प्रमाण मिल जायेंगे। यह गूढ़ रहस्य ऐसे व्यक्ति को समझाना कठिन है जिस की बुद्धि अन्तःदर्शी और सूक्ष्मदर्शी न होकर मोटे और स्थूल पदार्थों के ज्ञान तक ही सीमित रह गई हो। परन्तु जिन भक्त-जनों ने उस अलौकिक सत्ता पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, वे इस प्रकार के शरीर को जो कर्मों द्वारा निर्मित्त होता है—आश्चर्य की दृष्टि से नहीं देखेंगे, अपितु इस विषय से उन्हें एक अलौकिक स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति होगी।

अस्तु, वह शरीर जो कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है वही परलोक में पुरस्कार अथवा दण्ड का कारण बन जाता है। मैं इस क्षेत्र में परीक्षण करके कतिपय अनुभव प्राप्त कर चुका हूं। मुझे जाग्रता-वस्था में समाधि के रूप में कई बार कुछ मृतकों से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय मैंने कुछ कुकर्मियों और पथभ्रष्टों का शरीर ऐसा गूढ़ तमोमय देखा है मानों उसका निर्माण धूम्र से हुआ है।

कहने का तात्पर्य यह कि मुझे स्वयं इस मार्ग की पूरी जानकारी है और स्पष्ट शब्दों में कहता हूं कि जैसा कि परमेश्वर ने कहा है, वैसे ही मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक को एक शरीर मिलेगा। चाहे वह ज्योतिर्मय हो अथवा तमोमय। मनुष्य यदि इन गूढ़ रहस्यों को केवल अपनी इस स्थूल बुद्धि से ही जानना चाहे तो यह उसकी भारी भूल होगी। उसे यह ज्ञान होना चाहिये कि जिस प्रकार नेत्र किसी मिष्ठान का स्वाद नहीं बता सकते और न ही जिह्वा किसी वस्तु को देख सकती है। ठीक इसी प्रकार वह अलौकिक ज्ञान जो भक्त और भगवान के पावन मिलन से प्राप्त हो सकता है, वह केवल शुष्क बुद्धि से उपलब्ध नहीं हो सकता। परमेश्वर ने इस जगत के ऐसे ही अनेकों रहस्यों को

समझने के लिये नाना प्रकार के साधनों का निर्माण किया है। अतः प्रत्येक वस्तु को उसके उचित मार्ग और उसके उचित साधन से खोजो, वह तुम्हें सुलभ हो जायेगी।

एक और बात स्मरण रखने के योग्य है कि परमेश्वर ने उन लोगों को जो दुष्ट और पथभ्रष्ट हो गये, अपनी पवित्र वाणी में उन्हें मृतक की संज्ञा दी है और साधु-पुरुषों तथा भक्तजनों को जीवित बताया है। इस में रहस्य यह है कि जो लोग परमेश्वर से विमुख हैं उनके जीवन के साधन जो खाना-पीना और वासना की तृप्ति आदि थे, समाप्त हो गये। चूंकि आध्यात्मिक भोजन का कोई भी अंश उन्होंने प्राप्त नहीं किया था इस लिए उन पर आध्यात्मिक मौत आ गई। वे केवल दण्ड भोगने के लिये पुनः जीवित किए जाएंगे। इसी रहस्य की ओर परमेश्वर ने संकेत किया है। जैसा कि उस का कथन है :—

وَمَنْ يَأْتِ رَبَّهُ مُجْرِمًا فَإِنَّ لَهُ جَهَنَّمَ ط

لَا يَمُوتُ فِيهَا وَلَا يَحْيَىٰ ۝

व मंय्याते रब्बहू मुज्रमन फ़ इन्ना लहू जहन्नमा ला यमूता फ़ीहा व ला यहूया।

अर्थात् जो व्यक्ति अपराधी बन कर परमेश्वर के पास आयेगा तो उस का निवास नरक में होगा। वह उस में न मरेगा और न जीवित रहेगा। परन्तु जो लोग परमेश्वर के प्रिय हैं वे मृत्यु से नहीं मरते क्योंकि उनका दाना पानी अर्थात् पथ का पाथेय उन के साथ होता है।

तीसरा लोक 'वर्ज़ख़' अर्थात् यमलोक के पश्चात् वह स्थान है जिस का नाम परलोक हैं जहाँ उसकी सूक्ष्म उत्पत्ति होती है। उस समय प्रत्येक जीवात्मा को चाहे वह पापी हो अथवा पुण्यात्मी सत्कर्मी हो अथवा दुष्कर्मी एक सुस्पष्ट शरीर मिलेगा। यह दिन परमात्मा के पूर्ण चमत्कार के लिये निश्चित किया गया है। जिस में प्रत्येक व्यक्ति अपने पालन कर्ता परमेश्वर की सत्ता से पूर्ण रूप से परिचित हो जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को उस के कर्मों के अनुसार पूरा पूरा बदला दिया जायेगा। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि परमेश्वर से यह कैसे हो सकेगा? स्मरण रहे कि वह प्रत्येक शक्ति का स्वामी है जो चाहता है करता है। जैसा कि उसका कथन है:—

أَوَلَمْ يَرَ الْإِنْسَانُ أَنَّا خَلَقْنَاهُ مِنْ
نُطْفَةٍ فَإِذَا هُوَ خَصِيمٌ مُّبِينٌ وَضَرَبَ
لَنَا مَثَلًا وَّنَسِيَ خَلْقَهُ قَالَ مَنْ يُّحْيِ
الْعِظَامَ وَهِيَ رَمِيمٌ قُلْ يُحْيِيهَا الَّذِي
أَنْشَأَهَا أَوَّلَ مَرَّةٍ وَهُوَ بِكُلِّ خَلْقٍ

عَلِيْمٌ ۝ اَوَلَيْسَ الَّذِىْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضَ بِقٰدِرٍ عَلٰٓى اَنْ يَّخْلُقَ مِثْلَهُمْ ۚ
بَلٰى وَهُوَ الْخَلّٰقُ الْعَلِيْمُ ۝ اِنَّمَآ اَمْرُهٗٓ
اِذَآ اَرَادَ شَيْـًٔا اَنْ يَّقُوْلَ لَهٗ كُنْ
فَيَكُوْنُ ۝ فَسُبْحٰنَ الَّذِىْ بِيَدِهٖ مَلَكُوْتُ
كُلِّ شَيْءٍ وَّاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ۝

अवलम यरल् इन्सानो अन्ना खलक़नाहो मिन् नुत्फ़तिन फ़ इज़ा होवा ख़सीमुम्मुबीन । व ज़रबलना मसलों व नसेया ख़ल्क़हू । क़ाला मंय्योहयिल्एज़ामा व हेया रमीम । क़ुल योहयीहल्लज़ी अनशाहा अव्वला मर्रतिन । वहोवा बेकुल्ले ख़ल्क़िन अलीम । अवलैसल्लज़ी ख़लक़स्मावाते वल् अर्ज़ा बेक़ादिरिन अला अंयख़लोक़ा मिस्लहुम, बला, वहोवल् ख़ल्लाक़ुल् अलीम । इन्नमा अमरोहू इज़ा अरादा शैयन अंयक़ूला लहू कुन फ़यकून । फ़ सुब्हानल्लज़ी बे यदेही मलकूतो कुल्ले शैयिन, व इलैहै तुर्जऊन ।

अर्थात् क्या मनुष्य ने नहीं देखा कि हमने उसको पानी की एक बूंद से उत्पन्न किया जो गर्भ में डाली गयी थी । पुनः वह एक कलह-

प्रिय मनुष्य बन गया। हमारे लिये बातें बनाने लगा और अपना जन्म विस्मरण कर दिया और कहने लगा कि यह कैसे सम्भव है कि जबकि अस्थियों का कण २ बिखर कर उनका कुछ भी शेष नही रहेगा तो फिर भी मनुष्य पुनः जीवित हो जाएगा ? ऐसी शक्ति किस में है जो इस को पुनः जीवित करे ? इन लोगों को कह दो कि वही जीवित करेगा जिसने पहले उसको उत्पन्न किया था तथा वह हर प्रकार से और नाना विधियों से जीवित करना जानता है । उस की आज्ञा इतनी प्रबल है कि जब किसी वस्तु के होने का विचार करता है तो केवल यही कहता है कि "होजा" अतः वह वस्तु उत्पन्न हो जाती है। वह सत्ता महान और पवित्र है। जिसका प्रत्येक वस्तु पर स्वामित्व और अधिकार है और तुम सब भी उसी की ओर जाओगे।

इन पवित्र कथनों में परमात्मा ने कहा है कि परमेश्वर के सामने कोई वस्तु असम्भव नहीं। जिसने मनुष्य को पानी के एक तुच्छ क़तरे से उत्पन्न किया। क्या वह दूसरी बार उत्पन्न करने में असमर्थ है ?

इस स्थान पर एक और प्रश्न अज्ञानियों की ओर से हो सकता है और वह यह है कि जिस दशा में तीसरा लोक जो परलोक है दीर्घ काल के पश्चात् आयेगा तो उस स्थिति में प्रत्येक साधु पुरुष के लिये यमलोक केवल बन्दीग्रह के रूप में हुआ जो एक व्यर्थ सी कल्पना मालूम होती है। इसका उत्तर यह है कि ऐसा समझना भारी भूल है जो अज्ञानतावश उत्पन्न होती है। अपितु परमेश्वर की पवित्र वाणी क़ुरान में पापियों और साधु-पुरुषों के बदले के लिये दो स्थान पाये जाते हैं। एक 'बर्ज़ख़' अर्थात् यमलोक जिसमें अव्यक्त रूप में प्रत्येक व्यक्ति अपना बदला पायेगा। बुरे लोग मृत्यु के तुरन्त उपरान्त नरक

में प्रवेश करेंगे तथा सज्जन और साधु पुरुष मृत्यु के तुरन्त पश्चात् स्वर्ग में विश्राम करेंगे। अतः इस विषय से सम्बन्धित आयतें पवित्र क़ुरान में पर्याप्त मात्रा में मिलेंगी कि मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल देख लेता है। जैसा कि परमेश्वर एक स्वर्गीय के विषय में सूचना देता हुआ कहता है—

قِيلَ ادْخُلِ الْجَنَّةَ ط

क़ीलद्ख़ोलिल् जन्नतः।

अर्थात् उसको कहा गया कि तू स्वर्ग में प्रविष्ट हो जा। इसी प्रकार प्रत्येक नारकीय को सूचना देता हुआ कहता है—

فَرَآهُ فِي سَوَاءِ الْجَحِيمِ ۝

फ़ राहो फ़ी सवाइल् जहीम।

अर्थात् एक स्वर्गीय का एक मित्र नारकीय था। जब वे दोनों मृत्यु को प्राप्त हुये तो स्वर्गीय आश्चर्य में था कि मेरा मित्र कहां है! अतः उसको दिखलाया गया कि वह नरक में है।

अतएव पुरस्कार अथवा दण्ड देने की क्रिया तो तत्क्षण प्रारम्भ हो जाती है और नारकीय नरक में और स्वर्गीय स्वर्ग में जाते हैं। किन्तु इसके पश्चात् परमात्मा के चमाकार दिखाने का एक और दिन है। उस दिन के पीछे परमात्मा की विशेष इच्छा की प्रेरणा अपना कार्य कर रही है, क्योंकि उसने मनुष्य को इस लिये उत्पन्न किया ताकि वह (परमेश्वर) सृष्टि कर्त्ता के स्वरूप में पहचाना जाये। तदुपरान्त वह सब का नाश करेगा ताकि वह अपनी विनाशक शक्ति के साथ पहचाना जाये तथा पुनः एक दिन सबको पूर्ण जीवन प्रदान

करके एक क्षेत्र में एकत्र करेगा ताकि वह अपनी सर्व शक्तिमान् की सत्ता के साथ पहचाना जाये। इस प्रकार प्रथम रहस्य की व्याख्या समाप्त होती है।

ब्रह्मज्ञान का दूसरा रहस्य :—

ब्रह्म ज्ञान का दूसरा सूक्ष्म तत्व जिसका परलोक के विषय में पवित्र क़ुरान ने उल्लेख किया है वह यह है कि परलोक में वे सभी पदार्थ जो संसार में सूक्ष्म थे स्थूल रूप में रूपान्तरित होंगे। चाहे परलोक में 'वर्ज़ख़' (यमलोक) की श्रेणी हो अथवा परलोक की वह श्रेणी जहां जीवात्मा का सूक्ष्म पुनर्जजन्म होगा। इस श्रेणी में जो कुछ परमेश्वर ने कहा है उस में से एक कथन यह है—

مَنْ كَانَ فِيْ هٰذِهٖٓ اَعْمٰى فَهُوَ فِى
الْاٰخِرَةِ اَعْمٰى وَاَضَلُّ سَبِيْلًا

मन काना फ़ी हाज़ेही आऽमा फ़ होवा फ़िल आखेरते व अज़ल्ला सबीला।

अर्थात् जो व्यक्ति इस संसार में अन्धा होगा (आध्यात्मिक अन्धा) वह परलोक में भी अन्धा होगा। इस आयत का उद्देश्य यह है कि इस संसर की आध्यात्मिक दृष्टि उस परलोक में स्थूल रूप में दिखाई देगी तथा उस को महसूस भी किया जाएगा। ऐसा ही दूसरे कथन में आया है :—

خُذُوْهُ فَغُلُّوْهُ ثُمَّ الْجَحِيْمَ صَلُّوْهُ

ثُمَّ فِيْ سِلْسِلَةٍ ذَرْعُهَا سَبْعُوْنَ

ذِرَاعًا فَاسْلُكُوْهُ ۔

ख़ोज़ूहो फ़ग़ुल्लूहो सुम्मलजहीमा सल्लूहो सुम्मा फ़ी
सिलसिलते ज़रूओहा सबऊना ज़िराअन फ़स्लोकूहा।

अर्थात् इस नारकीय व्यक्ति को पकड़ो। इस की गर्दन में तौक डालो। पुनः नरकाग्नि में इसको जलाओ। पुनः ऐसी शृंखला में जो सत्तर गज़ लम्बी है उसे जकड़ो!

ज्ञात होना चाहिये कि इस कथन में यह स्पष्ट कर दिया है कि संसार का सूक्ष्म और अज्ञात दैवी प्रकोप वापसी के संसार अर्थात् परलोक में स्थूल रूप में प्रकट होगा। अस्तु, सांसारिक आशाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं का गर्दन का तौक जिस ने मनुष्य के मस्तक को पृथ्वी की ओर अर्थात् भौतिक जगत की ओर झुका रखा था वह दूसरे जगत (परलोक) में व्यक्त रूप में दृष्टिगोचर होगा। इसी प्रकार सांसारिक बन्धनों की शृंखला पैरों में पड़ी हुई दिखाई देगी और सांसारिक इच्छा और आकांक्षाओं की ज्वाला प्रकट रूप में धधकती हुई दिखाई देगी। दुष्ट और वक्र प्रकृति का मनुष्य संसार के जीवन में मायामोह का एक नरक अपने भीतर रखता है और असफलताओं में इस नरक की यातनाओं का अनुभव करता है। इस लिये जब कि अपनी नश्वर वासनाओं से दूर फैंका जाएगा और सदैव की असफलतायें डेरा

लगायेंगी तो परमेश्वर इन अकांक्षाओं को स्थूल अग्नि के रूप में उसपर प्रकट करेगा ; जैसा कि उसका कथन है :—

وَحِيلَ بَيْنَهُمْ وَبَيْنَ مَا يَشْتَهُونَ

व हीला बैनाहुम व बैना मा यश्ताहून ।

अर्थात् उन में और उनकी इच्छित वस्तुओं में अन्तर डाल दिया जाएगा । यही दारुण दुःख और भीषण प्रकोप का मूल होगा । तदुपरांत यह जो कहा है कि सत्तर गज़की शृंखला में उसे जकड़ो । यह इस बात की ओर संकेत है कि एक पापी बहुधा ७० वर्ष की आयु पा लेता है । अर्थात् उसे काम के ७० वर्ष मिलते हैं । इस का तात्पर्य यह है कि उस की आयु में से उस के बाल्यकाल और वृद्धावस्था वाले भाग को यदि निकाल भी दिया जाए तब भी उसे काम के ७० वर्ष ऐसे शुद्ध, स्वस्थ और सुस्पष्ट मिलते हैं जो बुद्धिमत्ता, परिश्रम तथा काम के योग्य होते हैं । किन्तु वह अभागा अपनी उत्तम आयु के सत्तर वर्ष संसार के बन्धनों में व्यतीत कर देता है और उस शृंखला से स्वतन्त्र होना नहीं चाहता । अतः परमेश्वर का इस आयत में कहना है कि वही सत्तर वर्ष जो उसने संसार के बन्धन में व्यतीत किए थे परलोक में एक २ शृंखला के रूप में सामने आयेंगे जो सत्तर गज़ की होगी । प्रत्येक गज़ एक वर्ष के स्थान पर बोला गया है ।

इस स्थान पर स्मरण रखने योग्य बात यह है कि परमेश्वर अपनी ओर से मनुष्य पर कोई कष्ट नहीं डालता । अपितु मनुष्य के दुष्कर्म ही उस के सम्मुख रख देता है । पुनः अपने इसी विधान के सम्बन्ध में एक स्थान पर परमेश्वर का कथन है :—

اِنْطَلِقُوْٓا اِلٰى ظِلٍّ ذِىْ ثَلٰثِ شُعَبٍ

لَّا ظَلِيْلٍ وَّلَا يُغْنِىْ مِنَ اللَّهَبِ ۝

इन्तलेक़ू इला ज़िल्लिनज़ी सलासा शोअबिल्ला ज़ली-लियू ँ व ला युग़नी मिनल्लहब ।

अर्थात् हे दुष्टो और पथभ्रष्टो ! त्रिकोणी छाया की ओर चलो जिसकी तीन शाखायें हैं। जिस में छाया का कोई तत्व नहीं तथा न ही वह गर्मी से बचा सकती हैं । इस कथन में तीन शाखाओं से अभिप्राय हिंस्र-बल, पशु-बल तथा भ्रम-जाल है। जो लोग इन तीनों शक्तियों को चरित्र के रंग में रंगीन नहीं करते तथा उन्हें चरित्र का रूप नहीं देते, उन की ये शक्तियां प्रलय के दिन इस प्रकार प्रदर्शित होंगी मानों तीन शाखायें बिना पत्तों के खड़ी हैं जो गर्मी से नहीं बचा सकती तथा वे ऊष्णता से जलेंगे।

पुनः इसी प्रकार परमात्मा अपने इसी विधान के लिये स्वर्गीय लोगों के प्रति कहता है :—

يَوْمَ تَرَى الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ

يَسْعٰى نُوْرُهُمْ بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَبِاَيْمَانِهِمْ

यौमा तरलमोऽमेनीना वलमोऽमेनाते यसआ नूरोहुम बैना ऐदीहिम व बे ऐमानेहिम् ।

अर्थात् उस दिन तू देखेगा कि ईश्वर भक्तों की यह दीप्ति जो

संसार में अव्यक्त रूप में है, परलोक में व्यक्त रूप में उन के आगे २ तथा दायीं ओर घूमती फिरेगी। एक और कथन में कहता है :—

يَوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوهٌ وَتَسْوَدُّ وُجُوهٌ ط

यौमा तबयज़्ज़ो वुजूहुई व तसवद्दो वुजहुन।

अर्थात् उस दिन कुछ चेहरे काले होंगे तथा कुछ चेहरे दीप्तिमान श्वेत होंगे। इसी प्रकार एक और कथन है :—

مَثَلُ الْجَنَّةِ الَّتِي وُعِدَ الْمُتَّقُونَ فِيهَا

أَنْهَارٌ مِنْ مَاءٍ غَيْرِ آسِنٍ وَأَنْهَارٌ

مِنْ لَبَنٍ لَمْ يَتَغَيَّرْ طَعْمُهُ وَأَنْهَارٌ

مِنْ خَمْرٍ لَذَّةٍ لِلشَّارِبِينَ وَأَنْهَارٌ

مِنْ عَسَلٍ مُصَفًّى ه

मसलुल् जन्नतिल्लती वोएदल् मुत्तक़ून। फ़ीहा अनहारुम्मिम्माइन ग़ैरे आसेनिन व अनहारुम्मिल्लबनिन् लम् यतग़ैय्यरो तअमोहू व अनहारुम्मिन ख़मरिल्लज़्ज़तिल्लिश्शारेबीन व अनहारुम्मिन असलिम्मुसफ़्फ़ा।

अर्थात् वह स्वर्ग जो सत्य-प्रिय लोगों को दिया जाएगा उसकी उपमा एक वाटिका से दी जा सकती है। जिस में

शुद्ध निर्मल और दुर्गंधहीन जल वाली नहरें बहती है तथा उसमें ऐसे दुग्ध की नहरें हैं जिस का स्वाद कभी नहीं बदलता तथा उसमें उस मदिरा की नहरें भी हैं जो अतीव आनन्ददायक हैं, जिस में मादकता नहीं होती। उस में ऐसे मधु की नहरें हैं जो अति स्वच्छ और निर्मल हैं और जिस में कोई विकार नहीं।

इस स्थान पर स्पष्टतया बताया गया है कि उस स्वर्ग को उदाहरण के रूप में ऐसे समझ लो कि उन सम्पूर्ण वस्तुओं की अपरिमित और अगणित नहरें हैं। वह जीवन का पानी जो एक ज्ञानी इस संसार में आध्यात्मिक रूप में पीता है उस में प्रकट रूप में विद्यमान है और वह सूक्ष्म दूध जिस में दुधमुंहाँ शिशु की न्याई सूक्ष्म रूप में संसार में उसका पालन पोषण होता रहा, प्रकट रूप में दिखाई देगा और वह परमेश्वर के प्रेम की मदिरा जिस से वह संसार में (आध्यात्मिकता के) सूक्ष्म रूप में सदैव मस्त रहता था, अब स्वर्ग में प्रकट रूप में उसकी नहरें दिखई देंगी और वह ईमान तथा विश्वास की मधुरता का मधु जो संसार में सूक्ष्म रूप में ब्रह्मज्ञानी के मुख में जाता था, वह स्वर्ग में व्यक्त रूप में स्पष्टतया नहरों की आकृति में दिखाई देगा। प्रत्येक स्वर्गीय अपनी नहरों और वाटिकाओं के साथ अपनी आध्यात्मिक अवस्था का निखरा हुआ स्पष्ट रूप दिखला देगा तथा परमेश्वर भी उस दिन स्वर्गीय लोगों के लिए पर्दे के बाहर आ जायेगा। सारांश यह है कि आध्यात्मिक अवस्थायें गुप्त रूप में प्रच्छन्न नहीं रहेंगी। अपितु स्थूल रूप में दृष्टिगोचर होंगी।

ब्रह्मज्ञान का तीसरा रहस्य :—ब्रह्मज्ञान का तीसरा रहस्यात्मक तत्व यह है कि परलोक में उन्नति सीमित न हो कर अपरिसीम होगी। इस सम्बन्ध में परमेश्वर का कथन है :—

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ نُوْرُهُمْ يَسْعٰى

بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَبِاَيْمَانِهِمْ يَقُوْلُوْنَ

رَبَّنَا اَتْمِمْ لَنَا نُوْرَنَا وَاغْفِرْ لَنَا

اِنَّكَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ۔

वल्लज़ीना आमनू मअहू नूरोहुम यसआ बैना ऐदीहिम् व बे ऐमानेहिम् यक़ूलूना रब्बना अतिमम लना नूरना वग़्फ़िर लना । इन्नका अला कुल्ले शैयिन क़दीर ।

अर्थात् जो व्यक्ति संसार में विश्वास और ईमान की ज्योति को प्रज्वलित रखते हैं उनकी दीप्ति प्रलय के दिन उनके आगे और उन की दायीं ओर दौड़ती फिरेगी । वे लोग सदैव यह कहते रहेंगे कि हे परमेश्वर ! हमारी ज्योत्सना को पूर्णत्व प्रदान कर तथा अपनी क्षमा की छाया के नीचे हमें ले ले । तू सर्वशक्तिमान है । प्रत्येक पर तेरा अधिकार है । इस कथन में यह जो कहा गया है कि उन का सदैव यही कहना होगा कि हमारी ज्योति को पूर्णता प्रदान कर, यह अपरिसीम उन्नति की ओर संकेत है । अर्थात उन्हें आत्मिक ज्योति का एक पूर्ण तत्व प्राप्त होगा । पुनः दूसरा पूर्ण तत्व उन्हें दिखाई देगा । उस को देख कर पहले पूर्णतत्व को निकृष्ट समझेंगे । अतः द्वितीय पूर्ण दक्षता की उपलब्धि की प्रार्थना करेंगे और जब वह प्राप्त होगा तो कला की पूर्णता की एक और श्रेणी उन पर प्रकट होगी पुनः उसे देखकर पहली दक्षता और पूर्णत्वको निकृष्ट समझेंगे और उस द्वितीय दक्षता की इच्छा करेंगे । यही उन्नति की चरमसीमा

की परम इच्छा है जो "अत्मिम् " शब्द से समझी जाती है।

अस्तु, इसी प्रकार उन्नति का क्रम चलता जायेगा । अवनति कभी नहीं होगी और न कभी स्वर्ग से निकाले जायेंगे। अपितु प्रतिदिन आगे बढ़ेंगे और पीछे न रहेंगे। इस स्थान पर प्रश्न यह उठता है कि जब स्वर्ग में प्रविष्ट हो गये तो फिर मुक्ति और क्षमा में कौन सी न्यूनता शेष रह गई जब पाप और अपराध सब के सब क्षमा कर दिए गए तो फ़िर क्षमायाचना की क्या आवश्यकता ? इस का उत्तर यह है कि "मग़फिरत" (क्षमा) का वास्तविक अर्थ कठोर और त्रुटिपूर्ण स्थिति को नीचे दबाना और ढांकना है। अतः स्वर्गीय इस बात की इच्छा करेंगे कि उन्हें हर प्रकार की उन्नति और बहुमुखी दक्षता प्राप्त हो। वे ज्योति के स्रोत में प्रवेश कर के स्वयं भी दीप्तिमान हो जायेंगे। दूसरी अवस्था को देख कर उन्हें पहली अवस्था तुच्छ दिखाई देगी और वे इस बात की इच्छा करेंगे कि पहली अवस्था दबाई जाए ! पुनः तृतीय श्रेणी को देख कर उन्हें इस बात की अभिलाषा होगी कि दूसरी श्रेणी की अपेक्षा मुक्तिदान तथा क्षमादान अधिक हो अर्थात् पहली तुच्छ अवस्था नीचे दबाई जाये और उसको छिपा दिया जाये। इस प्रकार अपरिसीम क्षमा के इच्छुक रहेंगे। यह क्षमायाचना का तथा मोक्षयाचना का वही शब्द है जो कुछेक अज्ञानी लोग आक्षेप के रूप में हमारे परम प्रिय पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहिब के विषय में उपस्थित करते हैं ।

पाठक गणों ने इस विवरण से भली प्रकार समझ लिया होगा कि यही क्षमा याचना की इच्छा मानव का गर्व है। जो व्यक्ति स्त्री के गर्भ से जन्मा और फिर क्षमायाचना में यावज्जीवन नहीं लगा रहा वह मनुष्य न होकर एक कीड़ा है, तथा नेत्रों वाला न होकर अन्धा है, एवं पवित्र न होकर अपवित्र और भ्रष्ट है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि पवित्र क़ुरान के अनुसार स्वर्ग और नरक दोनों वास्तव में मानव के जीवन का प्रतिबिम्ब और उस की प्रतिछाया है। कोई ऐसी नवीन भौतिक वस्तु नहीं हैं कि वे दोनों स्थूल रूप में व्यक्त होंगे । वास्तव में वे आत्मिक सूक्ष्म दशाओं की प्रति-छायाएं होंगी। हम लोग ऐसे स्वर्ग पर आस्था नहीं रखते जिस में केवल स्थूल रूप में पार्थिव भौतकीय वृक्ष लगाये गए हों तथा न ही ऐसे नरक पर विश्वास रखते हैं जिस में सचमुच गन्धक के पत्थर हैं अपितु इस्लामी विश्वास और आस्था के अनुसार स्वर्ग और नरक उन्हीं कर्मों का प्रतिबिम्ब और प्रतिछाया हैं जो इस लोक में मनुष्य करता है ।
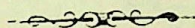
प्रश्न नं० ३

इस मर्त्यलोक में मानव जीवन का लक्ष्य क्या है और वह लक्ष्य किस प्रकार प्राप्त होगा ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि भिन्न भिन्न स्वभाव के मनुष्य अपनी अल्पज्ञता या भीरुता से अपनी जीवन के नाना प्रकार के उद्देश्य बताते हैं। वे केवल सांसारिक उद्देश्यों और इच्छाओं और आकांक्षाओं तक चल कर ठहर जाते हैं किन्तु मानव का वह परम लक्ष्य जो परमेश्वर अपने पवित्र ग्रन्थ क़ुरान मजीद में बताता है वह यह है। परमात्मा का कथन है :—

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْاِنْسَ اِلَّا

لِيَعْبُدُوْنِ ٥

"व मा ख़लक़्तुल जिन्ना वल् इन्सा इल्ला लेयअबोदून।"

अर्थात् हमने छोटे बड़े प्रत्येक मनुष्य को इस लिए पैदा किया है कि वह मुझे पहचाने और मेरी उपासना करे। अतः परमेश्वर के इस कथन के अनुसार मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य परमेश्वर की उपासना करना तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति एवं उसी के लिए

हो जाना है। यह तो स्पष्ट है कि मनुष्य को यह सामर्थ्य कदापि नहीं मिल सकती कि अपने जीवन का लक्ष्य अपने अधिकार से स्वयं ही निश्चित करे क्योंकि मनुष्य न अपनी इच्छा से आता है और न अपनी इच्छा से वापस जाएगा अपितु वह उस परम स्रष्टा की एक सृष्टि मात्र है जिसको विश्वकर्मा ने सृष्टि के शेष समस्त जीव-धारियों की अपेक्षा अत्युत्तम और श्रेष्ठ शक्तियाँ प्रदान कीं, उसी ने उसके जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य भी निश्चित कर रखा है। चाहे कोई इस प्रयोजन को समझे या न समझे, किन्तु मनुष्य जीवन का लक्ष्य निस्सन्देह परमेश्वर की उपासना और उस का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना एवं उसी में अपने को विलीन कर देना है। जैसा कि परमेश्वर पवित्र क़ुरान में एक और स्थान पर कहता है :—

إِنَّ الدِّينَ عِندَ اللَّهِ الْإِسْلَامُ

ذَٰلِكَ الدِّينُ الْقَيِّمُ فِطْرَتَ اللَّهِ

الَّتِي فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا.

इन्नद्दीना इन्दल्लाहिल् इस्लाम। ज़ालिकद्दीनुलक़य्यमो।
फ़ितरतल्लाहिल्लती फ़तिरन्नास अलैहा।

अर्थात् वह धर्म जिसमें परमेश्वरीय ज्ञान का शुद्ध रूप एवं उसकी उपासना यथोचित ढंग से की जाती है वह इस्लाम है। इस्लाम धर्म मानव प्रकृति में रमा हुआ है। परमेश्वर ने मनुष्य को इस्लाम के अनुरूप उत्पन्न किया है और इस्लाम के लिए पैदा किया अर्थात् यह चाहा कि मनुष्य अपनी समस्त इन्द्रियों और

सम्पूर्ण शक्तियों के साथ उस परम सत्ता की उपासना, उसकी आज्ञा का पालन तथा उससे प्रेम करने में संलग्न हो जाए। इसी लिए उस सर्वशक्तिमान पारब्रह्म ने मनुष्य को समस्त शक्तियाँ इस्लाम धर्म की याचनानुसार प्रदान की हैं। इन पवित्र कथनों की व्याख्या अति विस्तृत है। हम इस विषय में किसी सीमा तक द्वितीय प्रश्न के तीसरे भाग में लिख भी चुके हैं किन्तु अब हम संक्षेप में यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य को जो कुछ अन्तः और बाह्य इन्द्रियाँ और मानवीय अवयन दिये गए हैं अथवा जो कुछ शक्तियाँ प्रदान हुई हैं उनका वास्तविक प्रयोजत परमेश्वर का सूक्ष्म ज्ञान, उसकी उपासना और उसी से प्रेम करना है। इसी कारण मनुष्य संसार में सहस्रों ढंग अपना करके भी परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी सच्ची समृद्धि, ख़ुशहाली और मनःतृप्ति नहीं पाता। बड़ा धनवान होकर, बड़ी पदवी पाकर, महान् व्यापारी बन कर, महान् साम्राज्य प्राप्त करके महान् दार्शनिक कहला कर भी सांसारिक इच्छाओं और आकांक्षाओं की टीसों के साथ जाता है और सदैव उस का हृदय संसार में डूबे रहने से उसको अपराधी ठहराता रहता है और उसके छलों, प्रपञ्चों एवं अनुचित कर्मों में कभी भी उसकी आत्मा उस से सहमत नहीं होती।

एक मेधावी व्यक्ति इस समस्या को इस प्रकार भी समझ सकता है कि जिस वस्तु की शक्तियाँ अच्छे से अच्छे कर्म कर सकती हैं पुनः आगे जा कर ठहर जाती हैं, वही सर्वोत्तम कर्म उसकी उत्पत्ति का चरम लक्ष्य समझा जाता है। उदाहरणतया बैल का काम उत्तम विधि से हल चलाना अथवा सिंचाई करना या बोझ ढोना है। इस से अधिक उसकी शक्तियों में कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ। अतः बैल के

जीवन का उद्देश्य यही तीन बातें हैं। इस से अधिक कोई शक्ति उसमें नहीं पाई जाती। किन्तु जब हम मनुष्य की शक्तियों का पर्यवेक्षण करते हैं कि इस में सर्वोत्तम कौन सी शक्ति है तो यही सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परमेश्वर की उसमें खोज की जिज्ञासा विद्यमान है। यहाँ तक कि वह चाहता है कि परमेश्वर के प्रेम में विनम्र भाव से ऐसा लवलीन हो जाए कि उसका अपना कुछ भी शेष न रहे, सर्वस्व परमेश्वर का हो जाए। खाने पीने, शयन करने इत्यादि स्वाभाविक क्रियाओं में अन्य जीव इसकी बराबरी करते हैं। कला कौशल और दस्तकारी में कुछ पशु मनुष्यों से भी अधिक चतुर और दक्ष हैं। उदाहरणतया मधुमक्खियों को ही ले लीजिए। मधुमक्षिकाएं पुष्पों का रस निकाल कर उससे इतना उत्तम मधु तैयार करती हैं कि अब तक उस दस्तकारी में मनुष्य को सफलता नहीं मिली। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की वास्तविक सफलता ईश्वर प्राप्ति एवं ईश्वर मिलन में हैं अतः उसके जीवन का परम लक्ष्य यही है कि परमेश्वर की ओर उसके हृदय के कपाट खुलें। हाँ यदि यह प्रश्न हो कि यह प्रयोजन किस प्रकार प्राप्त हो सकता है और किन साधनों से मानव उसको पा सकता है?

प्रथम साधन इसके लिए स्मरण रखना चाहिए कि सर्वोत्तम साधन जो इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शर्त है वह यह है कि परमेश्वर को यथोचित विधि से पहचाना जाए तथा उस पर विश्वास उत्पन्न किया जाए क्योंकि यदि प्रथम पग ही अनुचित और अशुद्ध है—उदाहरण के रूप में यदि कोई व्यक्ति किसी पक्षी या पशु अथवा जल, वायु, अग्नि आदि भूततत्वों को अथवा मानव के बच्चे को ही परमात्मा समझ बैठा है—तो फिर उसके दूसरे पग में सीधे और सरल मार्ग पर चलने की आशा नहीं की जा सकती। सच्चा परमेश्वर उसके

खोजने वाले ब्रह्मजिज्ञासुओं को खोजने में सहायता देता है किन्तु एक मृतक दूसरे मृतक की क्या सहायता कर सकता है ? कुछ भी नहीं । इस विषय में परमेश्वर ने जो रूपक बान्धा है वह यह है :—

لَهُ دَعْوَةُ الْحَقِّ وَالَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ

مِنْ دُوْنِهٖ لَا يَسْتَجِيْبُوْنَ لَهُمْ

بِشَيْءٍ اِلَّا كَبَاسِطِ كَفَّيْهِ اِلَى الْمَآءِ

لِيَبْلُغَ فَاهُ وَمَا هُوَ بِبَالِغِهٖ ؕ وَمَا

دُعَآءُ الْكٰفِرِيْنَ اِلَّا فِيْ ضَلٰلٍ ۝

लहू दावतुल हक़्क़े वल्लज़ीना यद्ऊना मिन् दूनेही ला यस्तजीबूना लहुम बेशैयिन इल्ला कबासेते कफ़्फ़ैहे इलल्माये लेयब्लोग़ा फ़ाहो वमा होवा बेबालेग़ेही । वमा दुआउल् काफ़िरीन इल्ला फ़ी ज़लालिन ।

अर्थात् प्रार्थना करने के योग्य वही सच्चा परमेश्वर है जिस का अधिकार समस्त ब्रह्माण्ड पर है जो सर्व-शक्तिमान है । जो व्यक्ति ईश्वरेतर अन्य देवी देवता इत्यादि को उपास्य बना लेते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं तो वे उनकी कोई प्रार्थना नहीं सुन सकते । उनकी अवस्था ऐसी ही है जैसे कोई जल की ओर हाथ फैलाए और कहे कि हे जल ! तू मेरे मुख में आ जा ! तो क्या वह जल उसके मुख में

आ सकता है ? कदापि नहीं। अतः जो व्यक्ति सच्चे परमेश्वर से अपरिचित और अनभिज्ञ है उसकी समस्त प्रार्थनाएं व्यर्थ और सारहीन हैं।

दूसरा साधन—दूसरा साधन परमेश्वर के उस अलौकिक सौन्दर्य और उसके परम तत्व की जानकारी प्राप्त करना है जो सर्वांशतः उसमें विद्यमान है क्योंकि सौन्दर्य एक ऐसी वस्तु है जो स्वाभाविक रूप से हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और उसके देखने से स्वतः ही उससे प्रेम हो जाता है। अतः परमेश्वर का सौन्दर्य उसकी परम एकता, उसकी परम महानता, विराटता तथा अन्य अगणित विशेषताएं हैं जैसा कि परमेश्वर की पवित्र वाणी. क़ुरान में उसका कथन है :—

قُلْ هُوَ اللّٰهُ اَحَدٌ اَللّٰهُ الصَّمَدُ
لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُوْلَدْ وَلَمْ يَكُنْ لَّهٗ كُفُوًا
اَحَدٌ

क़ुल हो वल्लाहो अहद् । अल्लाहुस्समद् । लम् यलिद् वलम यूलद् । वलम् यकुल्लहू कोफ़ोवन् अहद् ।

अर्थात् परमेश्वर अपनी सत्ता और अपनी विशेषता तथा अपनी चमत्कारिता में अद्भुत, अनुपमेय और निराला तथा एक है। उसके समान अन्य कोई नहीं। सब उसके अधीन हैं। कण कण उसी से जीवन प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्रोत और उद्गम स्थान है किन्तु स्वयं किसी स्रोत

से नहीं निकला, न वह कहीं से सहायता चाहता है। वह न किसी का पुत्र है न किसी का पिता है। उस का सजातीय अन्य कोई नहीं, अतः उसकी समानता करने वाला कोई नहीं। पवित्र .क़ुरान ने परमेश्वर की चमत्कारिता और उसकी अनुपमता वारम्वार नाना प्रकार से उपस्थित करके मानव का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि देखो ऐसा परमेश्वर हृदयों को अभीष्ट है; कोई मृतक या दुर्बल या दया में कमी करने वाला अथवा अल्पशक्तिमान परमेश्वर अर्थात् ऐसा परमेश्वर जो सर्वशक्तिमान न हो अभीष्ट नहीं।

तीसरा साधन—तीसरा साधन, जो परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दूसरा सोपान है परमेश्वर के उपकारों की जानकारी और उन से अवगत होना है क्योंकि प्रेम की प्रेरक दो ही वस्तुएं हैं, सौंदर्य अथवा उपकार। परमेश्वर की उपकार-जन्य विशेषतः का सारांश सूराः फातेहा के अन्तर्गत पाया जाता है। जैसा कि पवित्र क़ुरान में परमेश्वर का कथन है—

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ط

اَلرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ   مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ

अल्हम्दो लिल्लाहे रब्बिल् आलमीन। अर्रहमानि-र्रहीम मालेके योमिद्दीन।

अर्थात् समस्त पवित्र प्रशंसाएं जो हो सकती हैं उस परमेश्वर के लिए हैं जो समस्त ब्रह्मांडों का स्रष्टा और पालनहार है। वही परमेश्वर जो हमारे कर्मों से पूर्व हमारे लिए कृपा और दया की सामग्री जुटाने वाला है और हमारे कर्मोंके पश्चात् कृपा और दयाके साथ बदला

देने वाला है। वह परमेश्वर जो निर्णय के दिन का अर्थात् प्रलय के दिन का एक मात्र स्वामी है किसी अन्य को वह दिन नहीं सौंपा गया क्योंकि यह बात निर्णीत है कि सर्वरूप से सम्पूर्ण उपकार अनुग्रह और शक्तियां उस परमेश्वर में ऐसी हैं कि वह अपने भक्तों को शून्य से उत्पन्न करे, पुनः उनका सदा ही पालन पोषण करे और वही प्रत्येक वस्तु का आधार और सहारा हो और फिर उसकी सर्वप्रकार की कृपाएं और दयाएं उसके जीवों के लिये प्रकट होती हों। उस के उपकार अपरिमित हों। इतने अधिक कि जिन की कोई गणना न कर सके । अतः ऐसे उपकारों को परमेश्वर ने वार वार स्मरण कराया है । जैसा कि एक स्थान पर परमेश्वर का कथन है :—

وَإِنْ تَعُدُّوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ لَا
تُحْصُوْهَا

व इन तउद्दू नेअमतल्लाहे लातोहसूहा।

अर्थात् यदि परमेश्वर के पुरस्कारों की गणना करना चाहो तो कदापि उन्हें गिन नहीं सकोगे ।

चौथा साधन—चौथा साधन परमेश्वर ने मानव को उस को अपने परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए 'प्रार्थना' बताया है। जैसा कि उस का पवित्र कथन है—

اُدْعُوْنِیْ اَسْتَجِبْ لَكُمْ

ओदऊनी अस्तजिब लकुम।

अर्थात् तुम प्रार्थना करो, मैं स्वीकार करूंगा। परमात्मा ने अपने भक्तों को बार बार प्रार्थना करने केलिए इस ओर प्रेरित किया है ताकि मनुष्य अपनी शक्ति से नहीं अपितु परमेश्वर को परमेश्वर की ही शक्ति से प्राप्त करे।

पांचवा साधन—मानव को अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति का पांचवां साधन परमेश्वर ने तपस्या बताया है अर्थात् अपना धन परमेश्वर की राह में व्यय करने से तथा अपनी शक्तियों को परमेश्वर की राह में खर्च करने से और अपने प्राणों को परमेश्वर के मार्ग में न्यौछावर कर देने से तथा अपनी बुद्धि को परमेश्वर के मार्ग में खर्च करने आदि साधनों से उस की खोज की जाए जैसा कि उस का पवित्र कथन है—

جَاهِدُوْا بِاَمْوَالِكُمْ وَ

اَنْفُسِكُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ -

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ -

وَالَّذِيْنَ جَاهَدُوْا فِيْنَا

لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا -

जाहेदू बे अम्वाले कुम व अनफ़ोसेकुम व मिम्मा

रज़क़्ना हुम युनफ़ेक़ून । वल्लज़ीना जाहदू फीना लनहदि-यन्नाहुम सोबोलना ।

अर्थात् अपने धन वैभव, अपने प्राणों, अपनी सन्तानों और इच्छाओं तथा उनकी शक्तियों को परमात्मा की राह में व्यय करो और जो कुछ हमने बुद्धि विद्या तथा विचारशक्ति तथा कलाकौशल आदि में से तुम को दिया है वह सब परमेश्वर के मार्ग में लगाओ । जो लोग मेरे लिए मेरी राह में उपलब्ध साधनों द्वारा भरपूर प्रयत्न करते हैं, हम उन्हें अपना मार्ग (अर्थात् मानव का चरम लक्ष्य) दिखला दिया करते हैं ।

छटा साधन—वास्तविक उद्देश्य और चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परमेश्वर ने छठा साधन दृढ़ता बताया है । अर्थात् इस मार्ग में निरुत्साहित न होना और सदैव नम्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करना । अपने को श्लथ और थका हुआ अनुभव न करना तथा परीक्षाओं से न डरना । जैसा कि परमेश्वर का कथन है :—

إِنَّ الَّذِينَ قَالُوا رَبُّنَا اللَّهُ ثُمَّ
اسْتَقَامُوا تَتَنَزَّلُ عَلَيْهِمُ
الْمَلَائِكَةُ أَلَّا تَخَافُوا وَلَا تَحْزَنُوا
وَأَبْشِرُوا بِالْجَنَّةِ الَّتِي كُنتُمْ تُوعَدُونَ

نَحْنُ اَوْلِيَاؤُكُمْ فِى الْحَيٰوةِ
الدُّنْيَا وَفِى الْاٰخِرَةِ۔

इन्नल्लज़ीना क़ालू रब्बोनल्लाहो सुम्मस्तक़ामू ततन-ज़्ज़लो अलैहिमुल मलाएकतो अल्ला तख़ाफ़ू वला तहज़नू व अवशेरू बिल्जन्नतिल्लती कुन्तुम तूअदूना। नहनो औले-याओकुम फ़िल् हयातिद्दुनिया व फ़िल् आख़ेरते।

अर्थात् वे लोग जिन्होंने कहा कि हमारा रब अर्थात् पालनहार स्वामी परमेश्वर है तथा झूठे परमेश्वर देवी देवताओं और मूर्तियों को त्याग दिय, तदुपरांत अपने इस व्रत पर कठोरता से दृढ़ रहे तथा नाना प्रकार की परीक्षाओं विपत्तियों और बाधाओं के समय दृढ़निश्चय रहे, उन पर परमेश्वर के फ़रिश्ते (ईश दूत) उतरते हैं और उन्हें धैर्य दिलाते हैं कि तुम भय मत करो, न ही शोक करो, न ही मन में खेद लाओ अपितु प्रसन्न मन रहो और प्रसन्नता से भरपूर रहो क्योंकि तुम उस सुखैश्वर्य के स्वामी बनाए गए जिसकी तुम से पहले प्रतिज्ञा की जा चुकी है। हम इस सांसारिक जीवन में तथा परलोक के जीवन में दोनों स्थानों पर तुम्हारे मित्र हैं।

इस स्थान पर इन वाक्यों में यह संकेत है कि दृढ़ता और धैर्य से परमेश्वर प्रसन्न होता है। यह एक तथ्य है कि दृढ़ता और धैर्य नाना चमत्कारों में से एक श्रेष्ठ चमत्कार है। दृढ़ता का सम्पूर्ण रूप यह है कि अपने चारों ओर विपत्तियों के बादल देखे और परमेश्वर के लिए अपने प्राणों तथा मान मर्यादा को घोर संकट में ग्रसित देखे तथा कहीं

से धैर्य देने वाली कोई बात न दिखाई देती हो, यहां तक कि परमेश्वर परीक्षा के रूप में धैर्य और आश्वासन देने वाले स्वप्न, गुप्त रूप में सूक्ष्म दर्शन अथवा ईशवाणी आदि को बन्द कर दे तथा भयानक स्थिति में छोड़ दे। उस समय नपुंसकता न दिखावे तथा कायरों के समान पग पीछे न हटावे एवं आज्ञापालन में कोई अन्तर न आवे, और सत्यता और शुद्ध हृदयता में किसी प्रकार की न्यूनता न आने पावे। अपमान को सप्रसन्न स्वीकार करे। मृत्यु को सहर्ष गले से लगा ले। ऐसी विकट परिस्थितियों में दृढ़संकल्प रहने के लिये किसी मित्र की प्रतीक्षा न करे कि वह मेरी कुछ सहायता करे और नही उस समय परमेश्वर की ओर से शुभसूचना का अभिलाषी हो कि समय और स्थिति विकट है वह कुछ धैर्य दिलावे। सर्वथा असहाय बेबस और दुर्बल होने पर भी तथा किसी के द्वारा धैर्य न मिलने पर भी प्रसन्न मन सीधा खड़ा हो जाए और "जो कुछ भी हो" कह कर मस्तक को बलिवेदी पर रख दे तथा ईश्वरेच्छा के सामने ननु नच न करे एवं चित्त में उद्विग्नता, घबराहट न आने दे, न ही चीत्कार और क्रन्दन करे और न ही किसी प्रकार का उपालम्भ वाणी पर लाए, जब तक परीक्षा पूरी न हो जाए। यही दृढ़ संकल्प है जिस से परमेश्वर मिलता है, यही वह वस्तु है जिस की अवतारों, पैग़म्बरों, ऋषियों मुनियों, सत्य के प्रेमियों और शहीदों की धूलि से अब तक सुगन्धि आ रही है। इसी की ओर परमेश्वर इस प्रार्थना में संकेत करता है :—

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ صِرَاطَ

الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

एहदेनस्सिरातल् मुस्तकीमा सिरातल् लज़ीना अन्-अम्ता अलैहिम ।

अर्थात् हे भगवन् ! हमें दृढ़ता का मार्ग दिखा कि हम सत्यता पर अटल रहें, डिगें नहीं । वही मार्ग जिस पर तेरा पुरस्कार होता है और जिस पर तू प्रसन्न होता है । एक और पवित्र कथन में इसी तथ्य की ओर संकेत है :—

رَبَّنَا أَفْرِغْ عَلَيْنَا صَبْرًا وَّ
تَوَفَّنَا مُسْلِمِيْنَ۔

रब्बना अफ़रिग़ अलैना सबरों व तवफ़्फ़ना मुस्लेमीन ।

अर्थात् हे हमारे पालनहार परमेश्वर ! इस विपत्ति में हमारे हृदय में सन्तोष और शांति की वर्षा कर दे जिस से धैर्य आ जाए और ऐसा कर कि हमारी मृत्यु इस्लाम पर हो ।

ज्ञात होना चाहिये कि दुःखों और कष्टों के समय परमेश्वर अपने प्रिय भक्तों के हृदय पटल पर एक मधुर स्निग्ध ज्योति बिखेरता है जिस से शक्ति पाकर कष्टों के साथ संघर्ष करने में उन्हें सन्तोष मिलता है तथा वे विश्वास की मस्ती में उन बेड़ियों को चूमते हैं जो परमेश्वर के मार्ग में उन के पैरों में डाली जाती हैं ।

जब भगवद्भक्त पर विपत्तियों का आक्रमण होता है और मृत्यु अपना विकराल मुख खोल लेती है तो वे अपने कृपालू और दयालू परमेश्वर से व्यर्थ की कलह प्रारम्भ नहीं करते कि हमें इन विपत्तियों से सुरक्षित रख । निश्चय ही उस समय कुशलता की प्रार्थना में आग्रह

करना परमेश्वर से युद्ध करने के समान है तथा उस की आज्ञाकारिता के विरुद्ध है प्रत्युत सच्चा प्रेमी कष्टों और आपत्तियों के आने पर पग और भी आगे बढ़ाता है और उस समय प्राणों को तुच्छ समझ कर तथा सांसारिक माया मोह का अन्तिम नमस्कार कह कर अपने परम प्रिय परमेश्वर की इच्छा के अधीन हो जाता है और उसी की प्रसन्नता का आकांक्षी रहता है। इस सम्बन्ध में परमेश्वर का कथन है:—

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْرِىْ نَفْسَهُ ابْتِغَاءَ

مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌ بِالْعِبَادِ ۔

व मिनन्नासे मंय्यश्री नफ़सहुब्तेग़ाअ मरज़ातिल्लाहे वल्लाहो रऊफ़ुम् बिल् इबाद।

अर्थात् परमेश्वर का प्रिय भक्त अपने प्राणों की बलि परमेश्वर की बलिवेदी पर देता है और उस के बदले में परमेश्वर की इच्छा और उस की प्रसन्नता ख़रीद लेता है। यही वे लोग हैं जिन पर परमेश्वर की विशेष दया और अनुग्रह है।

अस्तु वह दृढ़ता जिस से परमेश्वर मिलता है उस का भाव यही है जिस का उल्लेख अभी कर चुके हैं। जिस को समझना हो समझ ले।

सातवां साधन—परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सातवां साधन साधु पुरुषों की संगति करना तथा उन के आदर्शों को देखना और उन पर चलना है। अतः ज्ञात होना चाहिए कि पैग़म्बरों और अवतारों की आवश्यकताओं में से एक यह भी आवश्यकता है कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से सर्वरूप सम्पूर्ण आदर्श चाहता है।

सर्वरूप सम्पूर्ण आदर्श मानव की रुचि को बढ़ाता है और उस की उत्सुकता में वृद्धि करता है और उत्साह को उन्नति देता है। जो आदर्श पर नहीं चलता वह मन्दगामी होकर पथभ्रष्ट हो जाता है। इसी की ओर परमेश्वर इस पवित्र कथन में संकेत करता है :—

كُوْنُوْا مَعَ الصّٰدِقِيْنَ ـ صِرَاطَ

الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ـ

कूनू मअस्सादेक़ीन। सिरातल् लज़ीमा अन्अमता अलैहिम।

अर्थात् तुम उन व्यक्तियों की संगति में रहो जो साधु-पुरुष और सत्यव्रती हैं और उन लोगों के पथ के पथिक बनो जिन पर तुम से पहले कृपावृष्टि और अनुग्रह की वर्षा हो चुकी है।

आठवां साधन—आठवां उपाय चरम लक्ष्य को पाने के लिए परमेश्वर की ओर से उस से तादात्मय सम्बन्ध तथा पवित्र ईशवाणी और पवित्र स्वप्न प्राप्त करना है। चूंकि परमेश्वर की ओर यात्रा करना एक अति गूढ़ रहस्य और कठिन मार्ग है। उसके साथ नाना प्रकार की विपत्तियाँ, दुःख और कष्ट लगे हुए हैं। सम्भव है कि मनुष्य इस अज्ञात मार्ग में पथ भ्रष्ट हो जाए अथवा निराश हो जाए तथा आगे क़दम बढ़ाना छोड़ दे। इस लिए परमेश्वर की कृपा और उसकी अनुग्रह ने यही चाहा कि अपनी ओर से उस यात्रा में साथ साथ उसे धैर्य देती रहे और उसके हृदय को ढारस बन्धाती रहे, उसके उत्साह में वृद्धि और उसकी रुचि में तीव्रता उत्पन्न करती रहे। अतएव

उसका नित्य प्रति का विधान उस पथ के पथिकों के साथ इस प्रकार है कि समय समय पर अपनी पवित्र वाणी और अपनी पवित्र ईश वाणी तथा भक्त से एकान्त वार्तालाप से उसको धैर्य देता है तथा यह उन पर प्रकट करता है कि मैं तुम्हारे साथ हूँ। तब वे लोग शक्तिवान होकर पूर्ण उत्साह के साथ और पूर्ण शक्ति लगा कर इस यात्रा को पूर्ण करते हैं। अतः इस सम्बन्ध में परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

لَهُمُ الْبُشْرٰى فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَ

فِى الْاٰخِرَةِ

लहोमोल् बुशूरा फ़िल् हयातिद्दुनिया व फ़िल् आख़िरते।

अर्थात् उनके लिए इस संसार तथा मृत्योपरान्त परलोक दोनों स्थानों में शुभ-सूचना है।

इसी प्रकार और भी कतिपय उपाय हैं जो पवित्र क़ुरान ने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बताए हैं किन्तु खेद है कि निबन्ध के अधिक विस्तृत हो जाने की आशंका से हम उन का वर्णन नहीं कर सकते।

प्रश्न नं० ४

इस जीवन में तथा जीवन की समाप्ति के पश्चात् क्रियात्मक धार्मिक विधान की प्रतिक्रिया क्या है ? अथवा यह कि इस लोक और परलोक में हमारे कर्मों का क्या प्रभाव है ?

इस प्रश्न का उत्तर वही है जिस का वर्णन हम पहले कर चुके हैं कि परमेश्वर के सच्चे और सर्वरूप सम्पूर्ण धार्मिक विधान की प्रतिक्रिया जो इस जीवन में मनुष्य के हृदय पर होती है वह यह है कि इसको अमानुषिक स्थिति से मनुष्य बनावे और मनुष्य से सच्चरित्र मनुष्य बनावे, फिर चरित्रवान मनुष्य को ईश्वर-भक्त मनुष्य बनावे। इसके अतिरिक्त इस जीवन में शक्य धर्म की एक प्रतिक्रिया यह भी है कि सत्य धर्म के सन्मार्ग पर स्थित हो जाने से ऐसे व्यक्ति का मानव समाज पर यह प्रभाव पड़ता है कि वह क्रमानुगत उनके अधिकारों और अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहता है और न्याय उपकार तथा सहानुभूति की शक्तियों को अपने अपने अवसरों पर प्रयोग में लाता है तथा जो परमेश्वर ने उसको विद्या, ज्ञान, धन सुखैश्वर्य आदि में से अंश दिया है, सभी को यथोचित इस विभव में सांझीदार बनाता है। वह समस्त मानव समाज पर सूर्य के समान प्रकाश बरसाता है

और चन्द्रमा की भांति परम ज्योतिस्स्रोत से प्रकाश लेकर वह प्रकाश दूसरों तक पहुंचाता है। वह दिन की भांति प्रकाशित होकर पुण्य और कल्याण के मार्ग लोगों को दिखाता है। वह रात्रि की न्याईं प्रत्येक दुर्बल की दुर्बलताओं को छिपाता है तथा थके मान्दों को विश्राम देता है। वह आकाश की भांति प्रत्येक दीन दुखी को अपनी छत्र छाया में लेकर शरण देता है तथा समय पर अपनी वृष्टि करता है। वह पृथ्वी की भांति नम्रता पूर्वक प्रत्येक को सुख देने के लिए एक सुख शैय्या का रूप बन जाता है तथा सब को अपने वात्सल्य में ले कर तथा भांति २ के आध्यात्मिक मेवे और फल उन्हें खिलाता है। अत: यही सच्चे धर्म के सर्वरूप सम्पूर्ण सक्रिय विधान का प्रभाव है कि ऐसे सत्य धर्म पर चलने और उस पर आचरण करने वाला परमात्मा के प्रति, अपने कर्त्तव्यों के प्रति तथा जन समाज और अन्य सभी जीव जन्तुओं के प्रति अपने कर्त्तव्यों की पालना में चरम सीमा को पहुंच जाता है और परमेश्वर में विलीन होकर सृष्टि का सच्चा सेवक बन जाता है।

यह तो शक्य धर्म का इस जीवन में उस पर प्रभाव है परन्तु मृत्यु के पश्चात् इस जीवन की समाप्ति पर जो प्रभाव है वह यह है कि परमेश्वर का मिलन उस दिन से स्पष्टतया दर्शन के रूप में उसे होगा तथा परमात्मा की सृष्टि की सेवा जो उसने ईश्वर-प्रेम में डूब कर की, जिसकी प्रेरक विश्वास तथा सत्कर्मों की इच्छायें थीं, वे स्वर्ग के वृक्ष और नहरों के रूप में दिखाई जायेंगी। इस विषय में परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

وَالشَّمْسِ وَضُحٰهَا ۝ وَالْقَمَرِ

اِذَا تَلٰهَا ۝ وَالنَّهَارِ اِذَا جَلّٰهَا ۝

وَاللَّيْلِ اِذَا يَغْشٰهَا ۝ وَالسَّمَآءِ

وَمَا بَنٰهَا ۝ وَالْاَرْضِ وَمَا طَحٰهَا ۝

وَنَفْسٍ وَّمَا سَوّٰهَا ۝ فَاَلْهَمَهَا

فُجُوْرَهَا وَتَقْوٰهَا ۝ قَدْ اَفْلَحَ

مَنْ زَكّٰهَا ۝ وَقَدْ خَابَ مَنْ

دَسّٰهَا ۝ كَذَّبَتْ ثَمُوْدُ بِطَغْوٰهَا ۝

اِذِ انْبَعَثَ اَشْقٰهَا ۝ فَقَالَ لَهُمْ

رَسُوْلُ اللّٰهِ نَاقَةَ اللّٰهِ وَسُقْيٰهَا ۝

فَكَذَّبُوهُ فَعَقَرُوهَا فَدَمْدَمَ
عَلَيْهِمْ رَبُّهُمْ بِذَنْبِهِمْ فَسَوَّاهَا
وَلَا يَخَافُ عُقْبَاهَا

वश्शमसे व ज़ोहाहा । वलक़मरे इज़ा तलाहा, वन्नहारे इज़ा जल्लाहा । वल्लैले इज़ा यग़शाहा । वस्माए व मा बनाहा । वल् अर्ज़े व मा तलाहाहा । वन्नफ़्से व मा सव्वाहा फ़ अलहमहा फ़ोजूरहा व तक़वाहा । क़द अफ़लहा मन ज़क्काहा । व क़द ख़ाबा मन दस्साहा । कज़्ज़बत समूदो बे तग़वाहा । इज़िम्बअसा अश्क़ाहा । फ़ क़ाला लहुम रसूलुल्लाहे नाक़तल्लाहे व सुक़्याहा । फ़कज़्ज़बूहो फ़ अक़रूहा । फ़ दमदमा अलैहिम रब्बोहम बे ज़म्बेहिम फ़ सव्वाहा । वला युख़ाफ़ो उक़्बाहा ।

अर्थात् शपथ है सूर्य तथा उस के प्रकाश की, और शपथ है चन्द्रमा की जो सूर्य का अनुसरण करता है अर्थात् सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है तथा सूर्य के समान ही समस्त संसार को प्रकाश देता है । शपथ है दिन की जिस में सूर्य पूर्णरूप से स्पष्ट दिखाई देता है तथा मार्गों का निर्देशन करता है । शपथ है रात्रि की जो अन्धकार फैलाकर अपने तम-पट में सब को ले लेती है। शपथ है आकाश की तथा उसके उद्देश्य की जो आकाश की इस बनावट का कारण हुआ । शपथ है पृथ्वी की और उस उद्देश्य की जो पृथ्वी के इस प्रकार बिछौने का

कारण हुआ। शपथ है प्राणी की और उसके विकास की जिस ने इन सब पदार्थों के साथ उसको समान कर दिया। अर्थात् वे विशेषतायें जो नाना रूप में इन पदार्थों में पाई जाती हैं। सिद्ध और पूर्ण मानव की आत्मा इन सब को अपने भीतर एकत्र रखती है और जैसे ये समस्त वस्तुएं पृथक् २ मानव समाज की सेवा कर रही हैं, पूर्ण मानव समस्त सेवायें स्वयं अकेला करता है। जैसा कि मैं अभी लिख चुका हूँ। परमेश्वर का कथन है कि उस व्यक्ति को मोक्ष मिल गया और मृत्यु से सुरक्षित हो गया, जिस ने इस प्रकार अपनी चित्तवृत्तियों और मन को शुद्ध किया अर्थात् सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी आदि के समान परमेश्वर में लीन होकर सृष्टि का सेवक बना।

स्मरण रहे कि जीवन से तात्पर्य अनन्त जीवन है जो कभी समाप्त न हो, जो आगे चल कर पूर्ण मानव को प्राप्त होगा। यह इस बात की ओर संकेत है कि धर्म के क्रियात्मक विधान का फल परलोक के जीवन में अमर जीवन है जो परमेश्वर दर्शन रूपी भोजन से सदैव जीवित रहेगा।

पुनः कहा है कि वह व्यक्ति मिट गया और जीवन से निराश हो गया जिस ने अपनी आत्मा को विनष्ट कर दिया और जिन विशेषताओं की इस को सामर्थ्य दी गई थी उन विशेषताओं को प्राप्त न किया तथा अशुद्ध और अपवित्र जीवन व्यतीत कर के चला गया। पुनः उदाहरण के रूप में कहा कि "समूद" की घटना इसी के समान है। उन्होंने उस ऊंटनी को घायल किया जो परमेश्वर की ऊंटनी कहलाती थी और उसे अपने जलाशय से पानी पीने से रोका। अतः उस व्यक्ति ने निश्चय ही परमेश्वर की ऊंटनी को घायल किया और उस को उस स्रोत से वंचित रखा। यह इस बात की ओर संकेत है कि

मनुष्य की आत्मा परमात्मा की ऊंटनी है जिस पर वह सवार होता है अर्थात् मनुष्य का हृदय परमेश्वर के चमत्कारों का स्थान है तथा इस ऊंटनी का पानी परमेश्वर का प्रेम और उस का ज्ञान है जिस से वह जीवित है। पुनः कहा है कि "समूद" ने जब ऊंटनी को घायल किया और उसको उस के पानी से रोका तो उस पर प्रकोप भड़का और परमेश्वर ने इस बात की तनिक भी परवाह न की इन की मृत्यु के पश्चात् इन के बच्चों और इन की विधवाओं की क्या दशा होगी। अतः इसी प्रकार जो व्यक्ति इस ऊंटनी अर्थात् आत्मा को घायल करता है और उसे पूर्ण विकसित नहीं होने देता तथा पानी पीने से रोकता है, वह भी विनाश का मुख देखेगा।

पवित्र .कुरान में आई हुई विभिन्न वस्तुओं की शपथों की तात्विकता

इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि परमेश्वर का सूर्य, चन्द्र आदि की शपथ खाना एक अति गूढ़ रहस्यात्मक तत्त्व पर आधारित है जिस पर हमारे अधिकांश विरोधी अनभिज्ञ होने के कारण आक्षेप लगा बैठते हैं कि परमेश्वर को शपथ खाने की क्या आवश्यकता पड़ी और उसने अपनी स्वनिर्मित वस्तुओं की शपथें क्यों खाईं? किन्तु चूँकि उनकी सूझ-बूझ पार्थिव और भौतिक है, अपार्थिक एवं आध्यात्मिक नहीं, अतः वे ब्रह्मज्ञान के इन गूढ़ रहस्यों को समझ नहीं सके।

ज्ञात होना चाहिये कि शपथ खाने से वास्तविक उद्देश्य यह होता है कि शपथ खाने वाला अपने निश्चय और निर्णय के प्रति एक साक्षी उपस्थित करना चाहता है क्योंकि जिसके निर्णय और निश्चय

पर कोई दूसरा साक्षी नहीं देता तो वह साक्षी के स्थान पर परमेश्वर की शपथ खाता है। इस लिए कि परमेश्वर गुप्त रहस्यों को भी जानने वाला है और प्रत्येक उद्देश्य में वह प्रथम साक्षी है। मानों परमेश्वर की साक्षी इस प्रकार उपस्थित करता है कि यदि साक्षी के पश्चात् परमेश्वर मौन रहा और उस पर परमेश्वर का प्रकोप न भड़का तो मानों उस व्यक्ति के वर्णन पर साक्षियों की नाईं मोहर लगा दी अर्थात् उसे सत्य प्रमाणित कर दिया। अतः संसार के किसी व्यक्ति को यह कदापि उचित नहीं कि सृष्टि में से किसी अन्य की शपथ खाए क्योंकि मनुष्य गुप्त ज्ञान नहीं रखता और न ही उसमें झूठी शपथ पर दण्ड देने की सामर्थ्य है। (मनुष्य तो उसे ही सत्य मानेगा जो उस के सम्मुख वर्णन होगा। बिना बताए वास्तविक रहस्य कदापि नहीं जान सकता) किन्तु परमेश्वर की शपथ इन पवित्र कथनों में इन अर्थों में नहीं जैसा कि ईश्वर की अन्य सृष्टि की शपथ में समझा जाता है अपितु इस सम्बन्ध में उसका विधान दो प्रकार की क्रियाओं में विभक्त है। एक वे क्रियाएं जो पूर्ण स्पष्ट हैं जो सब की समझ में आ सकती हैं और उनमें किसी को सन्देह नहीं और दूसरे वे काम जो आनुमानित हैं जिनमें सांसारिक लोग धोखा खा जाते हैं और परस्पर लड़ते झगड़ते हैं। अतः परमेश्वर ने चाहा कि स्पष्ट कार्यों की साक्षी से आनुमानित कार्यों को लोगों की दृष्टि में सिद्ध करे।

अस्तु, यह तो स्पष्ट है कि सूर्य और चन्द्र, दिन और रात्रि, आकाश एवं पृथ्वी में वे विशेषताएं वस्तुतः पाई जाती हैं जिनका हम उल्लेख कर चुके हैं। किन्तु इस प्रकार की जो विशेषताएं और गुण मानव जीवन में विद्यमान हैं, उनसे प्रत्येक व्यक्ति अवगत नहीं। अतः परमेश्वर ने अपने स्पष्ट कार्यों को आनुमानित कार्यों के अभिव्यक्त

करने के लिए साक्षी रूप में उपस्थित किया है। मानो उसका कहना है कि यदि तुम इन विशेषताओं के प्रति सन्देह में हो जो मानव स्वभाव में पाई जाती हैं तो चन्द्र, सूर्य आदि पर विचार करो कि उनमें स्पष्टतया यह गुण विद्यमान हैं। तुम जानते हो कि मनुष्य एक लघु संसार है जिसके मानस-पटल पर समस्त ब्रह्माण्ड का मानचित्र सूक्ष्म रूप में अंकित है फिर जब यह सिद्ध है कि विराट् विश्व के बड़े २ नक्षत्र ये गुण अपने भीतर रखते हैं और इसी प्रकार सृष्टि को लाभान्वित कर रहे हैं तो मनुष्य जो इन सब से महान् कहलाता है सर्वश्रेष्ठ सृष्टि के रूप में इसका जन्म हुआ है वह किस प्रकार इन गुणों से वञ्चित होगा ? नहीं, अपितु इसमें भी सूर्य की न्याईं एक ज्ञान और बुद्धि का प्रकाश है जिसके द्वारा वह सभी को प्रकाशित कर सकता है तथा चन्द्रमा के समान वह अपने परम ज्योतिस्स्रोत से ईश्वर-दर्शन, ईशवाणी तथा उससे प्रेमवार्ता की अद्भुत ज्योत्स्ना प्राप्त करता है और दूसरों तक जिन्होंने मानवीय कौशल अभी तक प्राप्त नहीं किया उस ज्योति को पहुंचाता है। फिर किस प्रकार कह सकते हैं कि "नबुव्वत" (अवतारवाद) निरर्थक है और समस्त, धर्म-ग्रन्थ, धर्म-विधान और धर्म-शास्त्र मानव की मक्कारी तथा उसका प्रपञ्च और उसकी स्वार्थपरता का फल हैं ? यह भी देखते हो कि किस प्रकार दिन के उदय होने से समस्त मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं और समस्त ऊबड़ खाबड़ भूमि दृष्टिगोचर होने लगती है। अतः पूर्ण मानव आध्यात्मिक प्रकाश का दिन है। उसके उदय होने से प्रत्येक मार्ग स्पष्ट हो जाता है। वह सत्य मार्ग का पथ प्रदर्शन करता है कि कहाँ और किधर है क्योंकि सत्य, तथा सच्चाई का वही निखरा हुआ दिवस है। इसी प्रकार यह भी देखने में आया है कि रात्रि किस प्रकार थके मान्दों को विश्राम देती है। दिन भर के हैरान-परेशान

और थके मान्दे श्रमिक रात्रि की सुख शय्या पर प्रसन्न मन सोते और विश्राम करते हैं। रात्रि प्रत्येक के लिए एक पर्दे का भी काम देती है। इसी प्रकार परमेश्वर के पूर्ण भक्त और सिद्ध पुरुष संसार को सुख तथा आराम पहुंचाने के लिए आते हैं। परमेश्वर से ईशवाणी पाने वाले समस्त बुद्धिमानों को जीवन की कटुताओं और कष्टों से विश्राम देते हैं। उनके द्वारा बड़ी बड़ी ज्ञान गुलझटे बड़ी सरलता से सुलझ जाती हैं। इसी प्रकार परमेश्वर की ईशवाणी मानवीय बुद्धि की त्रुटियों को छिपाती है। उसके घृणित और वीभत्स अपराधों को संसार के सामने प्रगट नहीं होने देती क्योंकि बुद्धिमान ईशवाणी की अलौकिक ज्योति को पाकर भीतर ही भतीर अपनी दुर्वलताओं का सुधार कर लेते हैं और परमेश्वर की पवित्र ईशवाणी के प्रताप से अपने आपको अपयश से बचा लेता है। यही कारण है कि प्लेटो की भांति इस्लाम के किसी दार्शनिक ने किसी मूर्ति पर मुर्ग़ की वलि नहीं चढ़ाई। चूँकि प्लेटो इस्लाम के अलौकिक प्रकाश और उसके पुण्य प्रताप से वञ्चित रहा इस लिए धोखा खा गया और इतना बड़ा दार्शनिक कहला कर इस प्रकार की घृणित एवं अज्ञानता की क्रिया उससे होगई। किन्तु इस्लाम के तत्ववेत्ताओं और दार्शनिकों को ऐसे अपवित्र और अज्ञानता के दोषपूर्ण कर्मों से हमारे परम प्रिय अवतार पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब की पावन शिक्षा और उनके पवित्र आदर्श के अनुसरण ने बचा लिया। अब देखो किस प्रकार सिद्ध हुआ कि ईशवाणी बुद्धिमानों के लिए रात्रि के समान पर्दे का काम करती है।

यह भी आप लोग जानते हैं कि परमेश्वर के भक्त आकाश की तरह प्रत्येक थके मांदे को अपनी छत्रछाया के नीचे ले लेते हैं, विशेष कर उस पावन सत्ता परमेश्वर के अवतार और ईशवाणी पाने वाले

साधारणतया आकाश की भांति कृपावृष्टि करते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी के गुण भी अपने भीतर रखते हैं। उनकी मानस भूमि में नाना प्रकार के पवित्र ज्ञान के वृक्ष उगते हैं जिनकी शीतल छाया तथा मधुर फल और फूलों से लोग लाभ उठाते है। अतः यह स्पष्ट रूप से प्राकृतिक विधान जो हमारी दृष्टि के सम्मुख है उसी छिपे हुए विधान की एक साक्षी है जिस की साक्षी को शपथों के रूप में परमेश्वर ने इन पवित्र कथनों में उपस्थित किया है।

सो देखो कितनी रहस्यमय वाणी है जो पवित्र .कुरान में पाई जाती है। यह पवित्र वाणी उसके मुख से निकली जो एक अनपढ़ और जंगल का निवासी था। यदि यह परमेश्वर की वाणी न होती तो इस प्रकार जनसाधारण तथा बड़े २ धुरन्धर शिक्षा शास्त्री और ज्ञानी लोग उसके इस सूक्ष्म तथ्य और गूढ़ रहस्य को समझने में विवश होकर आक्षेप और आरोप के रूप में उसे न देखते। यह एक सीधी सी बात है कि मनुष्य जब एक बातको किसी प्रकार से भी अपनी क्षुद्र-बुद्धि से नहीं समझ सकता तब उस सूक्ष्म तत्व और रहस्य की बात पर आरोप लगा देता है। उसका वह आक्षेप और आरोप इस बात की साक्षी हो जाता है कि वह गूढ़ तत्व साधारण बुद्धि स्तर से महान् था। तभी दो बुद्धिमानों ने अपने को बुद्धिमान कहला कर, फिर भी उस पर आरोप लगा दिया किन्तु जब यह गूढ़ रहस्य खुल गया तो अब इस के बाद कोई बुद्धिमान इसपर शंका नहीं करेगा अपितु इस से लाभ उठाएगा।

स्मरण रहे कि पवित्र .कुरान ने ईशवाणी के आदिकालीन विधान पर प्राकृतिक विधान से साक्षी उपस्थित करने के लिए एक अन्य स्थान पर भी इसी प्रकार की शपथ खाई है और वह यह है :—

وَالسَّمَاءِ ذَاتِ الرَّجْعِ ۝ وَالْأَرْضِ
ذَاتِ الصَّدْعِ ۝ إِنَّهُ لَقَوْلٌ فَصْلٌ
وَمَا هُوَ بِالْهَزْلِ ۝

वस्समाए ज़ातिर्रजए। वल् अर्ज़ें ज़ातिस्सद्ये।
इन्नहू लक़ौलुन फ़स्लुन। व मा होवा बिल् हज़्ले।

अर्थात् उस आकाश की शपथ है जिस की ओर से वर्षा आती है और उस पृथ्वी की शपथ है जो वर्षा से नाना प्रकार की सब्ज़ियां और तरकारियां निकालती है, कि यह पवित्र .क़ुरान ईश्वर प्रणीत और उसी की पवित्र वाणी है। यह पवित्र .क़ुरान सत्य और असत्य में निर्णय करने वाला है। व्यर्थ और निरर्थक नहीं अर्थात् असमय पर नहीं आया अपितु ऋतु के मेंह के समान समय की याचनानुसार आया है।

अब परमेश्वर ने पवित्र .क़ुरान के प्रमाण के लिए, जो उस की ईशवाणी है एक सुस्पष्ट प्राकृतिक विधान को शपथ के रूप में उपस्थित किया है अर्थात् प्राकृतिक विधान में सदैव यह बात पाई जाती है कि आवश्यकतानुसार समय पर वर्षा होती है और पृथ्वी की सम्पूर्ण हरियाली का एक मात्र आधार आकाश से आने वाली वर्षा ही है। यदि आकाश से वर्षा न हो तो शनैः शनैः कुएं भी सूख जाते हैं। अतः यह बात निर्णीत है कि पृथ्वी के जल का अस्तित्व भी आकाश के जल पर ही आश्रित है। यही कारण है कि जब कभी आकाश से जल की वर्षा

होती है तो पृथ्वी के कुओं का भी जल ऊपर चढ़ आता है । क्यों चढ़ आता है ? इस का यही कारण है कि आकाश का जल पृथ्वी के जल को ऊपर की ओर खींचता है । यही सम्बन्ध और यही नाता ईशवाणी और मानवबुद्धि में है । ईशवाणी आकाश का जल है और मानवबुद्धि पार्थिव जल है । यह जल सदैव आकाशके जल से—जो ईशवाणी है—दीक्षा पाकर परिशुद्ध होता है । यदि आकाश का जल अर्थात् ईशवाणी आना बन्द हो जाए तो यह पार्थिव जल भी शनैः २ शुष्क हो जाता है । क्या इस के लिए यह उक्ति पर्याप्त नहीं कि जब एक युग बीत जाता है और कोई ईश्वरीय ज्ञान या ईशवाणी पाने वाला पैदा नहीं होता तो बुद्धिमानों की बुद्धि विकारग्रस्त हो कर निकम्मी पड़ जाती है । पार्थिव जल शुष्क हो जाता है और सड़ जाता है ।

इस रहस्य को समझने के लिए उस युग पर एक दृष्टि डालना पर्याप्त होगा जो हमारे परम-प्रिय अवतार पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब के संसार में आगमन से पूर्व अपना रंग समस्त संसार पर दिखला रहा था । चूंकि उस समय हज़रत ईसा मसीह के युग को छः सौ वर्ष बीत चुके थे और इस अवधि में किसी ईशवाणी पाने वाले (अवतार) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । परिणाम-स्वरूप पतन की घोर आंधियों से संसार की दशा अस्त व्यस्त हो चुकी थी । प्रत्येक देश का इतिहास पुकार-पुकार कर कह रहा है कि हज़रत मुहम्मद साहिब के समय में—आप के प्रादुर्भाव से पूर्व—समस्त संसार के विचारों में भयानक विकार आ चुका था । ऐसा क्यों हुआ था ? और उस का क्या कारण था ? यही तो था कि ईशवाणी का क्रम दीर्घकाल तक रुक गया था । आकाशीय और आध्यात्मिक शासन की बागडोर केवल भौतिक और अध्यात्महीन मानव के हाथ में आ गई थी । फलतः इस त्रुटियों

की प्रति-मूर्ति अध्यात्महीन मानव ने किन किन विकारों के जाल में लोगों को फांसा, इसे कौन नहीं जानता।

देखो ईशवाणी का जल जब दीर्घकाल तक नहीं बरसा तो पार्थिव (बौद्धिक) जल कैसा शुष्क हो गया! अतः इन शपथों में यही प्राकृतिक विधान परमेश्वर उपस्थित करता है कि तुम विचार कर के देखो कि क्या परमेश्वर का यह आदेश और अटल प्राकृतिक नियम नहीं कि पृथ्वी की सम्पूर्ण हरियाली का आधार आकाश (वर्षा) का जल है? अतएव इस गुप्त प्राकृतिक नियम के निमित्त जो ईशवाणी का क्रम है, यह प्रत्यक्ष प्राकृतिक विधान एक साक्षी के रूप में है। अतः इस साक्षी से लाभ उठाओ और अपनी बुद्धि को अपना पथ-प्रदर्शक मत बनाओ क्योंकि वह ऐसा जल नहीं जो आकाशीय जल के बिना स्थिर रह सके। जिस प्रकार आकाश के जल की यह विशेषतः है कि चाहे उस का जल किसी कुएं में पड़े या न पड़े। वह अपने स्वाभाविक गुणों से समस्त कुओं के जल को ऊपर चढ़ा देता है। इसी प्रकार जब ईशवाणी पाने वाले किसी अवतार का प्रादुर्भाव होता है, चाहे कोई सांसारिक बुद्धिजीवी उस का अनुकरण करे या न करे; किन्तु उस ईशवाणी पाने वाले के युग में स्वयमेव सांसारिक बुद्धिजीवियों में ऐसी ज्योति और निखार आ जाता है जो उस से पूर्व नहीं होता। लोग यूं ही सत्यता की खोज में लग पड़ते हैं तथा एक अलौकिक दैवी शक्ति उन की विचारशक्ति में वृद्धिकरती है। अतः यह समस्त बौद्धिक उन्नति और हार्दिक उत्साह उस ईशवाणी पाने वाले (अवतार) की पावन सत्ता के पुण्य चरण कमलों के द्वारा उत्पन्न हो जाता है और अपने स्वाभाविक गुण से पार्थिव जल को ऊपर उठा देता है। जब तुम देखो कि धार्मिक खोज-

वीन में प्रत्येक व्यक्ति खड़ा हो गया है और पार्थिव जल में कुछ ज्वार आ गया है तो उठो तथा सचेत और सावधान हो जाओ एवं निश्चित समझो कि आकाश से ज़ोर का मेंह वर्षा है और किसी हृदय पर ईश-वाणी की अलौकिक वर्षा हो गई है।
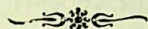
प्रश्न नं०—५

ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मविद्या के क्या साधन हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में विदित होना चाहिए कि इस विषय को जितना पवित्र क़ुरान ने स्पष्ट किया है उस का पूर्ण रूप से यहां वर्णन नहीं हो सकता किन्तु उदाहरण के रूप में कुछ तथ्यों का उल्लेख किया जाता है।

स्मरण रहे कि पवित्र क़ुरान ने ज्ञान तीन प्रकार का बताया है:-

१. इल्मुयक़ीन अर्थात् अनुमानित ज्ञान।
२. ऐनुलयक़ीन अर्थात् दृष्टिगत ज्ञान तथा
३. हक़्क़ुल यक़ीन अर्थात् प्रयोगात्मक ज्ञान।

जैसा कि इस से पूर्व हम सूर: "अल्हाकोमोत्कासुर" की व्याख्या में उल्लेख कर चुके हैं कि आनुमानित ज्ञान वह है जो इच्छित और अभीष्ट वस्तु के विषय में किसी साधन विशेष के विना नहीं अपितु उस साधन के द्वारा प्राप्त किया जाए। जैसा कि हम धुएं से अग्नि के अस्तित्व का अनुमान कर लेते हैं। हमने अग्नि को नहीं, अपितु धुएं को देखा है जिस से हमें अग्नि के अस्तित्व पर विश्वास हुआ। अत: यह आनुमानित ज्ञान है और हम ने यदि अग्नि को ही देख लिया हैं तो यह पवित्र क़ुरान अर्थात् सूर: "अल्हाकोमोत्कासुर" के अनुसार ज्ञान की श्रेणियों में से दृष्टिगत ज्ञान के नाम से अभिहित होगा।

यदि हम उस अग्नि में प्रविष्ट भी हो गए तो ज्ञान के इस रूप का नाम प्रयोगात्मक ज्ञान है। सूर: "अल्हाकोमोत्कासुर" के पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं। पाठक गण उस स्थल से इसकी व्याख्या देख लें।

अब ज्ञात होना चाहिए कि प्रथम प्रकार का ज्ञान जिसे आनुमानित ज्ञान कहते हैं उस का साधन बुद्धि तथा श्रुतियां हैं। परमात्मा नारकीय लोगों को एक कथा के रूप में कहता है :—

قَالُوْا لَوْ كُنَّا نَسْمَعُ اَوْ نَعْقِلُ مَا كُنَّا

فِىْٓ اَصْحٰبِ السَّعِيْرِ۔

"क़ालू लौ कुन्ना नस्मओ औ नाक़ेलो मा कुन्ना फ़ी असहाबिस्सईर।"

अर्थात् नारकीय कहेंगे कि यदि हम बुद्धिमान होते और धर्म तथा विश्वास को उचित प्रकार से आज़माते अथवा उत्कृष्ट मेधावियों, व मनीषियों और खोजियों के लेखों और उनके व्याख्यानों को ध्यानपूर्वक पढ़ते या सुनते तो आज नरक में न पड़ते।

यह आयत उस दूसरी आयत की पुष्टि करती है जहाँ परमेश्वर का कथन है :—

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا۔

लायुकल्लेफ़ुल्लाहो नफ़्सन इल्ला वुसअहा।

अर्थात् परमेश्वर मानव समाज को उसके ज्ञान भण्डार से अधिक किसी बात को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं करता और वही सिद्धान्त और उक्तियां उपस्थित करता है जिनका समझना मानव के लिए सरल हो ताकि उसके आदेश मनुष्य की शक्ति के बाहर और असह्य न हों।

इन पवित्र कथनों में इस बात की ओर संकेत है कि मनुष्य कानों के द्वारा भी आनुमानित ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उदाहरणतया हमने लंडन तो नहीं देखा। केवल देखने वालों से उसका अस्तित्व सुना है किन्तु क्या हम सन्देह कर सकते हैं कि कदाचित् इन सबने झूठ बोल दिया होगा? अथवा जैसे हमने सम्राट् आलमगीर का समय नहीं देखा और न आलमगीर का मुख देखा है किन्तु क्या हमें इस बात में तनिक भी सन्देह हो सकता है कि आलमगीर चुग़ताई शासकों में से एक शासक था। अत: ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? इस का उत्तर यही है कि अनवरत निरन्तर श्रवण करने से।

अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि सुनना भी आनुमानित ज्ञान तक पहुँचाता है। अवतारों के धर्म-शास्त्र यदि प्रक्षिप्त न होगए हों तो वे भी श्रवण किए हुए ज्ञान का एक साधन हैं किन्तु यदि एक धर्म-पुस्तक ईश्वरीय ग्रन्थ कहला कर फिर उसकी पचास साठ प्रतियाँ उस के पास पाई जाएं तथा वे प्रतियाँ परस्पर एक दूसरे की विरोधी हों तो यद्यपि विश्वास भी कर लिया जाए कि उनमें से केवल दो चार शुद्ध और यथार्थ हैं और शेष प्रक्षिप्त या काल्पनिक और कृत्रिम हैं। किन्तु एक विवेकी और खोजी के लिए ऐसा ज्ञान जो किसी भी दृष्टि से सम्पूर्ण और शुद्ध खोज पर आधारित नहीं, व्यर्थ होगा। परिणाम इसका यह होगा कि वे सभी धर्म-ग्रन्थ परस्पर एक दूसरे में समानता न होने के कारण

रही तथा अविश्वसनीय ठहरेंगे तथा यह कदापि उचित नहीं होगा कि ऐसे परस्पर विरोधी सिद्धान्तों को किसी ज्ञान का साधन समझा जाए क्योंकि शुद्ध ज्ञान की परिभाषा यह है कि एक विश्वस्त और सूक्ष्म तत्व का निर्धारण करे, परन्तु मत-भेद पाए जाने वाले ग्रन्थों में किसी प्रकार का निश्चित ज्ञान पाना सम्भव नहीं।

इस स्थान पर स्मरण रखना चाहिए कि पवित्र .कुरान केवल सुनने की सीमा तक सीमित नहीं है क्योंकि उसमें मनुष्य को समझाने के लिए बड़े २ अकाट्य तर्क और उक्तियाँ हैं तथा उसने जितने भी सिद्धान्त और नियम तथा उपनियम उस्थित किए हैं उनमें से कोई भी ऐसा नहीं जिसमें आग्रह और बलप्रयोग किया गया हो। जैसा कि उसने स्वयं कहा है कि समस्त नियम-उपनियम मनुष्य की प्रकृति में प्राचीन काल से अंकित हैं तथा पवित्र .कुरान को "ज़िक्र" की संज्ञा दी है। जैसा कि कहा है :—

هٰذَا ذِكْرٌ مُّبَارَكٌ

हाज़ा ज़िक्रुम्मुरबारकुन।

अर्थात् यह पवित्र .कुरान कोई नवीन वस्तु नहीं लाया प्रत्युत जो कुछ मानव प्रकृति और सृष्टि में भरा पड़ा है उसे स्मरण कराता है। पुनः एक अन्य स्थान पर कहता है :—

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ

ला इकराहाफ़िद्दीन।

अर्थात् यह धर्म कोई बात हठात् या बलात् मनवाना नहीं

चाहता अपितु प्रत्येक बात के ठोस प्रमाण और अकाटय तर्क उपस्थित करता है। इसके अतिरिक्त पवित्र .कुरान में मानव-हृदय में ज्योति का प्रसार करने का अद्भुत गुण है। जैसा कि परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

شِفَاءٌ لِّمَا فِي الصُّدُورِ

शिफ़ाउल्लिमा फ़िस्सुदूर।

अर्थात् पवित्र .कुरान अपने अलौकिक अद्भुत गुणों से समस्त आदि दैविक रोगों को दूर करता है अतः उसको प्राचीन काल्पनिक कथाओं अथवा श्रुतियों का संकलन नहीं कह सकते अपितु वह उत्कृष्टतम अकाट्य तर्क उपस्थित करता है और एक उज्ज्वल प्रकाश उसमें पाया जाता है। इसी प्रकार बौद्धिक तर्क जिनकी आधार-शिला शुद्ध और सरल पृष्ठभूमि पर हो, निस्सन्देह आनुमानित ज्ञान तक पहुंचाते हैं। इसी की ओर परमेश्वर निम्नांकित पंक्तियों में संकेत करता है। जैसा कि उसका कथन है :—

إِنَّ فِي خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ وَ

اخْتِلَافِ اللَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَآيَاتٍ

لِّأُولِي الْأَلْبَابِ ۝ الَّذِينَ يَذْكُرُونَ

اللّٰهَ قِيَامًا وَّقُعُودًا وَّعَلٰى جُنُوبِهِمْ

وَيَتَفَكَّرُونَ فِي خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ

الْاَرْضِ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا

سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ -

इन्ना फ़ी ख़लक़िस्समावाते वल अर्ज़े वख़्तिलाफ़िल्लैले वन्नहारे ल आयातिल्ले उलिल् अल्बाब । अल्लज़ीना यज़्कोरूनल्लाहा क़यामौं व क़ोऊदौं व अला जुनूवेहिम व यतफ़क्करूना फ़ी ख़लक़िस्समावाते वल अर्ज़े । रब्बना मा ख़लक़्ता हाज़ा बातिला । सुबहानका फ़ क़ेना अज़ाबन्नार ।

अर्थात् जब विचारवान् और प्रतिभावान् पुरुष पृथ्वी और आकाश के नक्षत्रों और उसके नाना पदार्थों का पर्यवेक्षण करते हैं तथा रात्रि और दिन के घटने बढ़ने के कारणों और उसकी प्रेरक शक्तियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते और उस पर गम्भीर चिन्तन करते हैं तो उन्हें इस ब्रह्माण्ड की रचना पर दृष्टिपात करने से परमेश्वर की सत्ता पर एक अनुपेक्षणीय प्रमाण मिलता है । अतः उसकी अधिक खोज बीन और उसके सूक्ष्म तत्वों के वेक्षण के लिए परमेश्वर से साहाय याचना करते हैं । वे लोग उसको खड़े होकर और बैठ कर और करवट पर लेट कर स्मरण करते हैं । जिस से उनकी बुद्धि परिमार्जित हो कर कुशाग्र हो जाती है । अतः जब वे अपनी इस ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा से सौर मण्डल के अगणित ग्रहों और उनकी क्रियाओं तथा पृथ्वी की अति सुन्दर बनावट पर विचार करते हैं तो सहसा उनकी वाणी से

यही निकलता है कि यह विश्व-चक्र जो सर्व प्रकार से सम्पूर्ण और अपने भीतर एक दृढ़ व्यवस्था रखता है, कदापि व्यर्थ और अनुपयोगी नहीं प्रत्युत उसमें विश्वकर्मा की प्रतिछाया दिखाई दे रही है। अत: वे विश्वकर्मा को ही वास्तविक परमेश्वर और उपास्यदेव स्वीकार करके यह स्तुति करते हुए प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! तेरी सत्ता महान् और पावन है। तेरी सत्ता कोई माने या न माने या अनुचित एवं अयोग्य दुर्गुणों का स्वामी तुझे बतावे, परन्तु इन आक्षेपों से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं, तू इन से बहुत दूर है, यह आक्षेप तेरे तक कभी नहीं पहुंच सकते। अत: तू हमें नरकाग्नि से बचा अर्थात् तेरी सत्ता का इनकार सर्वथा नरक है तथा हर प्रकार का सुख, चैन तथा सन्तोष तेरे पहचानने में है। जो व्यक्ति तेरी पावन सत्ता को पहचानने से वञ्चित रहे वे निश्चय ही इस संसार में ही नरक की अग्नि में हैं।

इसी प्रकार ज्ञान का एक साधन मानव स्वभाव भी है। जिस का नाम परमेश्वर के पवित्र ग्रन्थ .क़ुरान में मानव-प्रकृति रखा है। जैसा कि परमेश्वर का पवित्र कथन है :—

فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِيْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا

फ़ितरतल्लाहिल्लती फ़तरन्नासा अलैहा।

अर्थात् परमेश्वर की प्रकृति और उस का स्वभाव जिस के अनुरूप मानव की उत्पत्ति हुई है, वह प्रकृति का स्वरूप क्या है? यही कि परमेश्वर को एक अनुपमेय, जिस का कोई साथी नहीं, सम्पूर्ण ब्रह्मांड और पूर्ण सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता, जन्म-मरण से पवित्र और उच्च समझना।

हम मानव स्वभाव को आनुमानित ज्ञान के स्तर पर इस लिए

रखते हैं कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में इस में एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान का अनुमान नहीं पाया जाता और उस में एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान की ओर हमारा ध्यान परिवर्तित नहीं होता। जैसा कि धुएं के ज्ञान से अग्नि का अनुमान होता है और धूम्र से हमारा ध्यान तुरन्त अग्नि की ओर परिवर्तित हो जाता है तथापि एक सूक्ष्म परिवर्तन इस में अवश्य पाया जाता है और वह यह है कि प्रत्येक वस्तु में परमेश्वर ने एक अज्ञात गुण रखा है जिस का मौखिक अथवा लिखित रूप में वर्णन करना दुष्कर है। किन्तु उस वस्तु पर दृष्टि डालने और उस का अनुमान करने से शीघ्र ही उस गुण की ओर ध्यान परिवर्तित हो जाता है। इस का तात्पर्य यह है कि वह गुण उसके अस्तित्व के साथ ऐसा जुड़ा हुआ है जैसा कि अग्नि के साथ धुएं का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। उदाहरणतया जब हम परमेश्वर की सत्ता पर विचार करते हैं कि कैसी होनी चाहिए? या मन में कल्पना कर लेते हैं कि परमेश्वर ऐसा होना चाहिएकि हमारे समान जन्म ले और हमारे समान दुःख उठावे तथा हमारे समान ही काल का ग्रास बने तो तुरन्त इस विचार से हमारा हृदय और हमारी प्रकृति थर्राने और पीड़ा का अनुभव करने लगतीहै और इतना वेग प्रदर्शित करती है कि मानों उस विचार को धक्के देती है और कहती है कि वह परमेश्वर जिस की शक्तियों पर समस्त आशाओं का प्रासाद खड़ा है वह सर्व प्रकार की त्रुटियों से पवित्र, सम्पूर्ण तथा सबल चाहिये। जब भी परमेश्वर की कल्पना हमारे हृदय और मानस-पटल पर उद्भूत होती है तो शीघ्र ही परमेश्वर की एकता और औद्भुत्य तथा परमेश्वर में अग्नि और धुएं की भांति अपितु उस से भी बढ़ कर इतिवृत्तात्मक अखंडता का भाव हमारे मानस में जाग उठता है।

अतएव जो ज्ञान हमें हमारी प्रकृति के द्वारा प्राप्त होता है वह

आनुमानित ज्ञान के प्रकार में सम्मिलित है किन्तु इसके आगे एक और श्रेणी है जो दृष्टिगत अर्थात् नेत्रों द्वारा देखा हुआ ज्ञान है। इस श्रेणी के ज्ञान से वह ज्ञान अभीष्ट है कि जब हमारे विश्वास तथा उस वस्तु में जिस पर किसी प्रकार का विश्वास किया गया है इन में कोई संबन्ध नहीं। यथा जब हम सूंघने की शक्ति के द्वारा सुगन्धि अथवा दुर्गन्धि का ज्ञान प्राप्त करते हैं अथवा स्वाद चखने की शक्ति से मधुर या आम्ल स्वाद का पता लगाते हैं, अथवा स्पर्श करने की शक्ति द्वारा शीत या उष्ण का अनुभव करते हैं। अतः यह सभी प्रकार का ज्ञान देखे हुए ज्ञान के भाग में आता है। किन्तु परलोक के विषय में हमारा परमेश्वरीय ज्ञान उस समय दृष्टिगत ज्ञान की सीमा तक पहुँचता है जब कि स्वयं स्वतन्त्र रूप से ईशवाणी प्राप्त करें, ईशवाणी को अपने श्रुतपुटों से सुनें और ध्यान व समाधि की अवस्था में परमेश्वर का शुद्ध रूप से साक्षात्कार करें (अर्थात् परमात्मा के स्पष्ट और शुद्ध 'कश्फों' को अपने नेत्रों से देखें।) यह बात असन्दिग्ध है कि हमें पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के निमित स्वतन्त्र रूप से परमेश्वर से ईशवाणी की आवश्यकता है तथा उस पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान की अपने हृदय में भूख और तृष्णा भी अनुभव करते हैं। यदि परमेश्पर ने हमारे लिए पहले से इस ब्रह्मज्ञान की सुव्यवस्था नहीं की तो यह तृष्णा और बुभुक्षा हमें क्यों लगा दी है? क्या हम इस जीवन में जो हमारे परलोक के लिए पाथेय का साधन है, इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि हम उस सत्य-सबल-सर्वरूप-सम्पूर्ण-सजीव परमेश्वर पर केवलमात्र कहानियों और कपोल-कल्पित गाथाओं के रूप में विश्वास रखें अथवा केवल बौद्धिक ज्ञान को ही पर्याप्त समझ लें जो अब तक त्रुटि-पूर्ण और अपूर्ण ज्ञान है? क्या परमेश्वर के सच्चे प्रेमियों और सुहृदजनों का हृदय नहीं चाहता कि उस परमप्रिय की पवित्र वाणी का आनन्द प्राप्त

करें ? क्या वे लोग जिन्होंने परमेश्वर के लिए समस्त संसार को ठोकर से मार दिया, हृदय और प्राण सभी कुछ समर्पित कर दिए; वे इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि केवल एक अस्पष्ट और धुन्धले प्रकाश में खड़े रह कर मरते रहें और उस चमकते हुए सूर्य के दर्शन न करें ? क्या यह सत्य नहीं है कि उस सजीव परमेश्वर का "अनल् मौजूद" अर्थात् "मैं मौजूद हूँ" कहना वह ज्ञान-ज्योति प्रदान करता है कि यदि विश्व के समस्त दार्शनिकों और मीमांसकों की स्वरचित पुस्तकें एक ओर रखें और एक ओर "अनल्मौजूद" अर्थात् "मैं मौजूद हूं" परमेश्वर का जयघोष रखें तो इस के सम्मुख वे सभी पुस्तकों के ढेर तुच्छ और नगण्य हैं ? अस्तु, जो दार्शनिक कहला कर अन्धे रहे वे हमें क्या शिक्षा देंगे ?

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि परमेश्वर ने सत्य के जिज्ञासुओं को पूर्ण ब्रह्मज्ञान देने का निश्चय किया है तो अवश्य ही उस ने अपनी ईशवाणी एवं सुवार्ता का क्रम खुला रखा है, उसे वन्द नहीं किया। इस सम्बन्ध में परमेश्वर का यह कथन है :—

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ صِرَاطَ

الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ۔

एहदिनस्सिरात्वल् मुस्तक़ीमा सिरात्वल्लज़ीना अन-अमता अलैहिम् ।

अर्थात् हे भगवन् ! हमें दृढ़ विश्वास का वह सीधा मार्ग वतला जो उन लोगों का मार्ग है जिन पर तेरा पुरस्कार हुआ । इस स्थान पर पुरस्कार से तात्पर्य परमेश्वर की ईशवाणी तथा परमेश्वर

का साक्षात्कार इत्यादि आध्यात्मिक सूक्ष्म ज्ञान है जो मानव को ईश्वर की ओर से निर्बाध रूप से मिलते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहता है :—

إِنَّ الَّذِينَ قَالُوا رَبُّنَا اللَّهُ ثُمَّ

اسْتَقَامُوا تَتَنَزَّلُ عَلَيْهِمُ

الْمَلَائِكَةُ أَلَّا تَخَافُوا وَلَا تَحْزَنُوا

وَأَبْشِرُوا بِالْجَنَّةِ الَّتِي كُنتُمْ تُوعَدُونَ

इन्नल्लज़ीना क़ालू रब्बोनल्लाहो सुम्मस्तक़ाम् तत-नज़्ज़लो अलैहिमुल् मलाएकतो अल्ला तख़ाफ़ू व ला तहज़नू व अबशेरू बिलजन्नतिल्लती कुन्तुम तूअदून।

अर्थात् जो लोग परमेश्वर पर समुचित रूप से पूर्ण विश्वास करके दृढ़ निश्चयी और दृढ़ संकल्प रहते हैं उनपर परमेश्वर के फ़रिश्ते (ईशदूत) उतरते हैं तथा उन्हें ईशवाणी द्वारा यह शुभ सूचना देते हैं कि तुम किसी प्रकार का भय अथवा किसी प्रकार का खेद मत करो। जिस स्वर्ग की तुम्हारे साथ प्रतिज्ञा की गई है वह तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अस्तु, इस पवित्र कथन में स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि परमेश्वर के भक्त दुःख और भय के समय परमेश्वर से सुवार्ता और ईशवाणी प्राप्त करते हैं और परमेश्वर की ओर से ईशदूतों द्वारा उन्हें

प्रोत्साहन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य कथन में कहा है कि :—

لَهُمُ الْبُشْرٰى فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَ

فِى الْاٰخِرَةِ

लहुमुल् बुशरा फ़िल् हयातिद् निया व फ़िल आख़ेरते।

अर्थात् परमात्मा के प्रिय मित्रों और भक्तजनों को ईशवाणी तथा सुवार्ता द्वारा इस मर्त्यलोक में शुभ-सूचना मिलती है और भावी जगत् (परलोक) में भी मिलेगी।

ईशवाणी और सुवार्ता क्या है ?

स्मरण रहे कि ईशवाणी के शब्द से यहाँ पर यह तात्पर्य नहीं कि अपने स्वकल्पित विचारों से कोई बात अपने हृदय में घड़ ली जाए उदाहरणतया जब कवि कोई दोहा रचने का यत्न करता है अथवा एक पाद रचकर दूसरे के लिए विचार करता है तो सहसा दूसरा पाद उसके हृदय में पड़ जाता है इस प्रकार से कोई बात हृदय में पड़ जाना ईशवाणी नहीं है अपितु यह क्रिया तो परमेश्वर के प्राकृतिक विधान के अनुसार अपनी विचारधारा का एक परिणाम है। व्यक्ति अच्छी अथवा बुरी किसी भी बात केलिए विचार करता है, उसके प्रयत्न और खोज के अनुसार कोई न कोई बात उसके हृदय में अवश्य पड़ जाती है। उदाहरणतया एक व्यक्ति पुण्यात्मीय और सत्यव्रती है जो सत्यता और कल्याण के पक्ष में कुछ दोहों का सृजन करता है और दूसरा व्यक्ति जो नीच और कमीना है वह

अपनी कविता में अनृत और झूठ का पक्षपात करता है और सत्य प्रेमियों के प्रति अपशब्द वकता है तो निस्सन्देह ये दोनों व्यक्ति कुछ न कुछ दोहों की अवश्य रचना कर लेंगे। अपितु इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं कि वह सत्यप्रेमियों का शत्रु जो सदैव असत्य का पक्षपाती रहा है झूठ और दोषारोपण लगाना उसकी दिनचर्या में सम्मिलित है. परमेश्वर की ईशवाणी प्राप्त करने वाला कहलाये। संसार में उपन्यासों इत्यादि में अद्भुत जादू और चमत्कारमय वर्णन पाये जाते हैं। तुम देखते हो कि इस प्रकार के सतत-निरन्तर कृत्रिम और झूठे निबन्ध लोगों के हृदय और बुद्धि में पड़ते जाते हैं। अतः क्या हम उनको ईशवाणी कह सकते हैं ?

यदि ईशवाणी हृदय या बुद्धि में कुछ बातें पड़ जाने का नाम है तो एक चोर भी ईशवाणी प्राप्त करने वाला कहला सकता है क्यों-कि वह बहुधा चिन्तन करके सेन्ध लगाने के बड़े अच्छे ढंग निकाल लेता है तथा डाका डालने की उत्तम विधियां तथा वध करने के अद्भुत साधन उसके मानस पटल में उत्पन्न हो जाते हैं; तो क्या यह उचित है कि हम इन सभी अपवित्र और घृणित साधनों का नाम ईशवाणी और सुवार्ता रख दें ? कदापि नहीं, अपितु यह उन लोगों का विचार है जिनको अब तक उस सत्य परमेश्वर का पता नहीं जो स्वयं अपने पवित्र कथनों और मधुर वचनों से हृदयों को ढारस बन्धाता है, सन्तोष देता है तथा इस सूक्ष्म ज्ञान से अनभिज्ञ लोगों को आध्यात्मिक सूक्ष्म ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान की ज्योति प्रदान करता है।

ईशवाणी क्या वस्तु है ? वह सशक्त प्राणवान मधुर सुवार्ता जो परमेश्वर की ओर से उसके परम भक्तों, अलौकिक विभूतियों और अवतारों के साथ अथवा जिन्हें परमेश्वर की ओर से अवतार

बनाना अभीष्ट हो के साथ होती है। यह मधुर सुवार्ता जब पर्याप्त और सन्तोषजनक क्रम से प्रारम्भ हो जाए तथा उसमें दूषित विचारों और विकारों की कलुषता सम्मिलित न हो तथा न ही अधूरे और अपूर्ण निरर्थक शब्द हों अपितु वह सुवार्ता आनन्दप्रद वाक्यों, सारगर्भित शब्दों तथा प्रभावोत्पादक शैली में हो तो वह परमेश्वर की ईशवाणी है जिस के द्वारा वह अपने भक्त को प्रोत्साहन और सन्तोष देना चाहता है तथा पर्दे से बाहर आकर अपने को उस के सम्मुख प्रगट कर देता है।

स्मरण रहे कि कभी कभी सुवार्ता परीक्षा के रूप में भी होती है। ऐसी सुवार्ता पूर्णरूप से कल्याणमयी सामग्री अपने साथ नहीं रखती अपितु उसके द्वारा परमेश्वर के भक्त को उसकी प्रारम्भिक अवस्था में परखा जाता है ताकि वह उस ईशवाणी की सुवार्ता के एक कण का स्वाद लेकर, अपने क्रिया-कलाप वास्तविक रूप में सच्ची ईशवाणी पाने वालों के समान बना ले अथवा यदि वह उसके योग्य नहीं तो ठोकर खाकर पतित हो जाए। यदि वह व्यक्ति ईशवाणी पाने वाले सत्यव्रती लोगों की न्याईं अपने को नहीं बनाता और उसी तरह उस सुवार्ता को नहीं अपनाता तो उस पुरस्कार की उत्कृष्टता से वंचित रह जाता है और उसके पास केवल व्यर्थ की डींग और शेख़ी रह जाती है। करोड़ों ईश्वर भक्तों को ईशवाणी का पुरस्कार मिलता रहा है किन्तु उसकी पदवी परमेश्वर के निकट पाठशाला के बच्चों की प्रथम श्रेणी के बराबर भी नहीं है प्रत्युत परमेश्वर के पवित्र अवतार जो उस की सुस्पष्ट सुवार्ता और ईशवाणी पाने वालों में प्रथम श्रेणी के हैं वे भी पदवी में समान नहीं। परमेश्वर का कथन है :—

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ۔

तिलकरोंसोलो फ़ज़्ज़लना बाज़हुम अला बाज़िन।

अर्थात् कुछ अवतारों को एक दूसरे पर महानता और बड़ाई प्राप्त है! इस से सिद्ध होता है कि ईशवाणी परमात्मा की देन और कृपा है। इस के द्वारा महानता और बड़ाई प्राप्त नहीं हो जाती अपितु बड़ाई उस सत्यता आज्ञाकारी और सेवाभाव के प्रति संलग्नता पर आधारित है जिसे परमेश्वर जानता है। यदि ईशवाणी अपनी शुभ और पुण्य शर्तों के साथ हो तो वह भी उन का एक फल है। इस में कोई सन्देह नहीं कि ईशवाणी इस रूप में हो कि भक्त एक प्रश्न करता है और परमेश्वर उस का उत्तर देता है। इसी प्रकार क्रमानुसार प्रश्नोत्तर का क्रम चलता रहे और परमेश्वरीय प्रताप तथा अलौकिक प्रकाश ईशवाणी में पाया जाए तथा भावी ज्ञान के रहस्य अथवा शुद्ध ब्रह्मज्ञान पर आधारित हो तो वह परमेश्वर की ईशवाणी है। परमेश्वर की ईशवाणी में यह आवश्यक है कि जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र से मिल कर परस्पर वार्तालाप करता है उसी प्रकार परमेश्वर और उस के भक्त के मध्य में वार्तालाप हो। जब भक्त किसी बात के विषय में परमेश्वर से प्रश्न करे तो उस के उत्तर में एक स्वादिष्ट और आनन्दप्रद शब्द परमेश्वर की ओर से श्रवण करे जिसमें अपनी आत्मा, मन या सोच-विचार का लेशमात्र भी अंश न हो और वह ईश्वरीय वार्ता तथा मधुर वचन उसके लिए परमेश्वरीय पुरस्कार और दान रूप में हो तो वह परमेश्वर की ईशवाणी है। ऐसा भक्त परमेश्वर के निकट अति प्रिय है।

किन्तु इस श्रेणी की ईशवाणी जो परमेश्वर की ओर से अलौकिक दान हो, सजीव सशक्त और पावन सुवार्ता का क्रम अपने भक्त को परमेश्वर की ओर से प्राप्त हो। यह पुरस्कार किसी को नहीं मिलता, सिवाय उन लोगों के जो ईमान, विश्वास सेवाभाव एवं शुद्ध सत्कर्मों में उन्नति करें तथा उन क्षेत्रों में जिनके वर्णन करने की यहां पर गुञ्जायश नहीं है। सत्य और पावन ईशवाणी परमेश्वरीय शक्ति के बड़े २ चमत्कार दिखलाती है। प्रायः देखा गया है कि पहले एक अति तीव्र प्रकाश उद्दीप्त होता है और उसके साथ ही एक सशक्त प्रतापवान चमत्कारमय ईशवाणी आ जाती है। इससे बढ़कर और क्या होगा कि ईशवाणी पाने वाला उस परमसत्ता परमेश्वर से वार्तालाप करता है कि जो पृथ्वी और आकाश का निर्माता है। संसार में परमेश्वर का दर्शन यही है कि परमेश्वर से बातें करें। किन्तु हमारे इस वर्णन में मनुष्य की वह अवस्था सम्मिलित नहीं है जो किसी की वाणी पर कोई ऊलजलूल शब्द या वाक्य अथवा दोहा आ जाए और उस के साथ कोई वार्तालाप न हो। स्मरण रखना चाहिये कि ऐसा व्यक्ति परमेश्वर की परीक्षा में ग्रसित है, क्योंकि परमेश्वर इस विधि से आलसी और उपेक्षावृत्ति रखने वाले भक्तों की परीक्षा लेता है कि कभी कोई वाक्य या इबारत किसी के हृदय पर अथवा जिह्वा पर उतारी जाती है और वह अन्धे की भांति हो जाता है। वह नहीं जानता कि वह इबारत कहां से आई? परमेश्वर की ओर से अथवा शैतान की ओर से? अतः ऐसे वाक्यों के पश्चात् परमेश्वर से क्षमा याचना करना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यदि एक पावन विभूति एवं साधु पुरुष को प्रत्यक्ष रूप से परमेश्वर से सुवार्ता प्रारम्भ हो जाए तथा सुवार्ता के रूप में एक प्रकाशमय, आनन्दप्रद, सार्थक, सारगर्भित तथा प्रतापवान् वाणी उस को सुनाई दे तथा बार-बार ऐसी सुवार्ता के सुनने का उसको अवसर मिला हो कि

परमेश्वर तथा उस के मध्य में नितांत जाग्रतावस्था में कम से कम दस बार प्रश्नोत्तर हुआ हो। उसने प्रश्न किया, परमेश्वर ने उसका उत्तर दिया पुनः उसी समय सर्वथा जाग्रतावस्था में उस ने कोई और निवेदन किया और परमेश्वर ने उस का भी उत्तर दिया। पुनः विनम्र निवेदन किया, परमेश्वर में उस का भी उत्तर दिया। इसी प्रकार दस बार तक उस में और परमेश्वर में वार्तालाप होता रहा हो तथा परमेश्वर ने कई बार इस सुवार्ता में उस की प्रार्थनाएं स्वीकार की हों। श्रेष्ठ ज्ञान तत्वों की उस को सूचना दी हो, भावी घटनाओं से उसे अवगत किया हो और अपने सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष वार्तालाप से बारम्बार प्रश्नोत्तर का पुरस्कार उसे प्रदान किया हो, तो ऐसे व्यक्ति को परमेश्वर का अतीव धन्यवादी होना चाहिये तथा अपने को सब से अधिक परमात्मा के मार्ग में न्यौछावर करना चाहिए क्योंकि परमेश्वर ने अपनी विशेष अनुग्रह से अपने समस्त भक्तों में से उसे सुधारक के रूप में चुन लिया तथा उन सत्य-प्रिय लोगों का पुरस्कार उसे प्रदान किया जो उस से पूर्व संसार में अपनी ज्योति दिखा गए। यह पुरस्कार अति कठिन, यदाकदा मिलने वाला एवं सौभाग्य की बात है। जिस को यह पुरस्कार मिल गया, उस के पश्चात् जो कुछ है वह तुच्छ और हेय है।

इस्लाम की विशेषता

इस पदवी और इस श्रेणी के लोग इस्लाम में सदैव जन्म लेते रहे हैं, यह इस्लाम की ही विशेषता है जिसमें परमेश्वर अपने भक्त के निकट हो कर उस से बातें करता है और उस के भीतर बोलता है। वह उसके हृदय में अपना आसन बनाता है तथा उस के भीतर से उसे आकाश की ओर अर्थात् उच्चता की ओर खींचता है और उस को वह सभी पुरस्कार प्रदान करता है जो पहलों को दिए गए। खेद है कि अन्धा

संसार नहीं जानता कि मनुष्य निकट होते होते कहां तक पहुँच जाता है। वे स्वयं तो पग नहीं उठाते और यदि जो पग उठाए तो या तो उस को अधर्मी कहा जाता है अथवा उस को उपास्य कह कर परमेश्वर का स्थान दे दिया जाता है। यह दोनों ही कृत्य अत्याचार और सीमा की उल्लंघना हैं। एक न्यूनता की सीमा के पार जाकर तथा दूसरा अधिकता की सीमा का उल्लंघन कर के पैदा हुआ। किन्तु प्रतिभावान् व्यक्ति को चाहिये कि वह निरुत्साहित न हो और उस स्थान एवं उस श्रेणी का इन्कार न करे तथा उस श्रेणी और उस स्थान की मर्यादा को भंग न करे, उस के मन में अन्तर न आने पाए। तथा न ही उस की पूजा प्रारम्भ कर दी जाये। ऐसे अवसर पर परमेश्वर वह घटनायें उस भक्त पर प्रकट करता है मानों अपने ईश्वरत्व की चादर उस पर डाल देता है। तब ऐसा व्यक्ति परमात्मा की दृष्टि का दर्पण बन जाता है। यही रहस्य है जो हमारे परम प्रिय अवतार हज़रत मुहम्मद साहिब ने कहा कि जिसने मुझे देखा उसने परमेश्वर के दर्शन कर लिए। तात्पर्य यह कि यह भक्तों के लिए कड़ी चेतावनी है। वह समस्त श्रेष्ठ व्यवहारों की प्रतिमूर्ति और स्रोत बना दिया जाता है। तथा उसे पूर्ण सन्तोष दिलाया जाता है।

ईशवाणी का पुरस्कार तथा सुधारक की पदवी मुझे मिली है।

यह बहुत बड़ा अन्याय होगा कि यदि मैं इस समय यह प्रकट न करूं कि वह पदवी जिस की परिभाषा का उल्लेख मैं ने अभी किया है तथा वह ईशवाणी तथा वह परमेश्वरीय वार्तालाप जिसकी व्याख्या मैंने अभी ऊपर की है वह सब कुछ परमात्मा की अपार कृपा ने मुझे प्रदान की है ताकि मैं नेत्रहीनों को नेत्र तथा अन्धों को दृष्टि प्रदान करूं और

खोजने वालों को उस के खोए हुए रत्न का पता बताऊं एवं सत्य के जिज्ञासुओं को उस पवित्र स्रोत से अवगत करूं जिस की चर्चा चारों ओर हो रही है। किन्तु पाने वाले थोड़े हैं। मैं श्रोताओं को विश्वास दिलाता हूं कि वह परमेश्वर जिस के मिलने से मानव की मुक्ति तथा सदैव का सुख और मोक्ष मिलता है वह पवित्र क़ुरान के अतिरिक्त अन्यत्र कदापि नहीं मिल सकता। काश! जो मैं ने देखा, लोग देखें! जो मैं ने सुना है, वह लोग सुने! कपोलकल्पित मन गढ़त कथाओं को छोड़ दें और तथ्य की ओर दौड़ें!! वह सम्पूर्ण ज्ञान का साधन जिस से परमेश्वर दिखाई देता है, वह मैल उतारने वाला जल जिस से समस्त सन्देह दूर हो जाते हैं, वह दर्पण जिस से उस सर्वश्रेष्ठ सत्ता परमेश्वर के दर्शन होते हैं, परमेश्वर की वह ईशवाणी तथा सुवार्ता ही है जिस का मैं अभी उल्लेख कर चुका हूं। जिस की आत्मा में सत्य की जिज्ञासा और तड़प है, वह उठे और ढूँढे। मैं सत्य कहता हूं कि यदि जीवित आत्माओं में वास्तविक खोज की लगन उत्पन्न हो जाए, हृदय में वास्तविक पिपासा बलवती हो उठे तो लोग इस साधन की खोज करें और इस मार्ग को ढूण्ढने लगें। किन्तु यह मार्ग किस प्रकार खुलेगा और यह पर्दा किस उपचार से उठेगा? समस्त जिज्ञासुओं को विश्वास दिलाता हूँ कि केवल इस्लाम ही है जो इस मार्ग की शुभसूचना देता है। दूसरी जातियां तो परमात्मा की ईशवाणी को प्राचीनकाल से ही बन्द कर चुकी हैं। अतः यह निश्चय कर लो कि यह परमात्मा की ओर से अवरोध नहीं प्रत्युत दुर्भाग्यवश उस से वञ्चित रहने के कारण मनुष्य एक बहाना बना लेता है। निश्चय पूर्वक विश्वास करो कि जिस प्रकार यह सम्भव नहीं कि हम बिना नेत्रों के देख सकें अथवा बिना कानों के सुन सकें या बिना वाणी के बोल सकें, उसी प्रकार यह

भी सम्भव नहीं कि विना .कुरान के उस परम प्रिय परमेश्वर के दर्शन कर सकें। मैं जवान था, अब बूढ़ा हुआ, किन्तु मैं ने कोई न पाया, जिस ने इस पावन अलौकिक स्रोत के विना उस सुस्पष्ट प्रत्यक्ष ब्रह्म-ज्ञान का अमृतपान किया हो।

यथार्थ तथा पूर्ण ज्ञान का साधन ईशवाणी है !

प्रिय बन्धुओ ! कोई व्यक्ति परमेश्वर के निर्णय तथा उसकी इच्छाओं में उससे युद्ध नहीं कर सकता । निश्चय जानो कि पूर्ण ज्ञान का साधन परमेश्वर की ईशवाणी है । जो परमेश्वर की पावन विभूतियों अवतारों और पैग़म्बरों को प्राप्त हुई । तदुपरान्त उस परमेश्वर ने जो कृपा का सिन्धु है, यह कदापि न चाहा कि भविष्य में इस ईशवाणी के पुरस्कार पर प्रतिवन्ध लगा दे तथा इस प्रकार संसार को विनाश के गढ़े में डाल दे प्रत्युत उसकी ईशवाणी तथा उस की सुवार्ता के द्वार सदैव खुले हैं। यह आवश्यक है कि उनको उन के मार्गों से ढूंढो तब वे द्वार सुगमता से तुम्हें मिल जाएंगे । वह जीवनामृत आकाश से बरसा तथा उचित स्थान पर ठहरा। अब तुम्हें क्या करना चाहिये, ताकि तुम उस पानी को पी सको । यही करना चाहिये कि गिरते पड़ते अतिशीघ्र उस स्रोत तक पहुँचो और अपना मुख उस स्रोत के सम्मुख रख दो, ताकि उस जीवन के पानी से तृप्त हो जाओ।

मनुष्य का समस्त कल्याण इसी में है कि जहां प्रकाश का पता मिले उसी ओर दौड़े और जहां उस खोए हुए मित्र का चिन्ह मालूम पड़े, उसी मार्ग को ग्रहण करे। देखते हो कि सदैव आकाश से प्रकाश आता है और पृथ्वी पर पड़ता है उसी प्रकार पथ प्रदर्शन और

सत्य मार्ग का निर्देश करने वाला प्रकाश सदैव आकाश से अर्थात् परमेश्वर की ओर से आता है। मनुष्य की अपनी ही बातें तथा अपनी ही कल्पनायें उसे सत्य मार्ग तथा वास्तविक ज्ञान नहीं दे सकतीं। क्या तुम परमेश्वर को उसकी अनुग्रह के बिना पा सकते हो ? क्या तुम बिना भौतिक प्रकाश के घोर तम में देख सकते हो ? यदि देख सकते हो तो कदाचित् इस स्थान पर भी देख लोगे ! किन्तु हमारे चर्मचक्षुओं में चाहे देखने की शक्ति विद्यमान हो तथापि आकाशीय प्रकाश (सूर्य और चन्द्र के प्रकाश) की उन्हें आवश्यकता है। हमारे कर्णपुटों में यद्यपि श्रवण शक्ति विद्यमान है तथापि उन्हें वायु की आवश्यकता है, जो परमेश्वर की ओर से चलती है। वह परमेश्वर सत्य परमेश्वर नहीं है जो मौन है और सब कुछ हमारी अटकलों और कल्पनाओं के सहारे पर है प्रत्युत पूर्ण और सजीव परमेश्वर वह है जो अपनी सत्ता का स्वयं पता देता है और अब भी उसने यही चाहा कि स्वयं अपनी सत्ता का प्रदर्शन करे। आकाश की खिड़कियां खुलने को हैं, निकट के भविष्य में प्रातः होने वाली है। सौभाग्य शाली है वह क़ौम जो उठ बैठे और अब सच्चे परमेश्वर की खोज करे। वही परमेश्वर जिस पर कोई आपत्ति, कोई कष्ट नहीं आता। जिस का प्रताप किसी भी दुर्घटना से मन्द नहीं पड़ता। पवित्र क़ुरान में परमेश्वर का कथन है—

اَللّٰهُ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ

अल्लाहोनूरुस्समावाते वल् अर्ज़े

अर्थात् परमेश्वर ही है, जो सदैव आकाश और पृथ्वी का प्रकाश है। उसी से प्रत्येक स्थान पर प्रकाश पहुंचता है। सूर्य का वही

सूर्य है, पृथ्वी के सभी जीवों का वही प्राण है। सच्चा और सजीव परमेश्वर वही है। भाग्यवान है वह व्यक्ति जो उस को स्वीकार करे।

ज्ञान का तीसरा साधन :—ज्ञान का तीसरा साधन वह तथ्य हैं जो प्रयोगात्मक और परीक्षणात्मक ज्ञान के स्तर पर हैं तथा वे समस्त दुःख, कष्ट, विपत्तियां हैं जो परमेश्वर के अवतारों, पैगम्बरों और सत्यपुरुषों को विरोधियों के द्वारा अथवा परमेश्वर की इच्छा से अर्थात् उनकी परीक्षा और आज़माईश केलिए उन्हें पहुंचती है तथा इस प्रकार कष्टों और विपत्तियों से वे सभी धार्मिक निर्देश जो केवल ज्ञान के रूप में मनुष्य के मानस में थे, उस पर लागू होकर क्रियात्मक रूप में आ जाते हैं तत्पश्चात् क्रियाशीलता के क्षेत्र से विकसित होकर पूर्णत्त्व को पहुँच जाते हैं। उन निर्देशों और आदेशों पर आचरण करने वालों का अपना ही अस्तित्त्व परमेश्वर के आदेशों का एक पूर्ण संग्रह बन जाता है और वह सभी आचरण, क्षमा, प्रतिकार तथा धैर्य एवं दया इत्यादि जो केवल बुद्धि और हृदय में भरे हुए थे अब सभी अंग-प्रत्यगों को क्रियाशीलता के वरदान से परिपुष्टि मिलती है। तथा वह सभी शरीर पर आकर अपने चिन्ह और प्रभाव अंकित कर देते हैं। जैसा कि परमेश्वर का कथन है :—

وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِنَ الْخَوْفِ وَ

الْجُوْعِ وَنَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَالْاَنْفُسِ

وَالثَّمَرَاتِ وَبَشِّرِ الصَّابِرِيْنَ الَّذِيْنَ

اِذَآ اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ قَالُوْٓا اِنَّا

لِلّٰهِ وَاِنَّآ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ؕ اُولٰٓئِكَ

عَلَيْهِمْ صَلَوٰتٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ

وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُوْنَ ۝ لَتُبْلَوُنَّ

فِىْٓ اَمْوَالِكُمْ وَاَنْفُسِكُمْ وَلَتَسْمَعُنَّ

مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ

مِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا اَذًى كَثِيْرًا ط وَاِنْ

تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ

الْاُمُوْرِ۔

व ला नब्लोवन्नाकुम बेशैइम्मिनलख़ौफ़े वल जूए व नक़सिम्मिनल् अमवाले व लअनफ़ोसे वस्समराते । व बश्शेरिस्साबेरीन । अल्लज़ीना इज़ा असाबतहुम्मुसीबतुन

क़ालू इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजेऊन। उलाएका अलैहिम सलवातुम्मिरब्बेहिम व रहमतुन। व उलाएका होमुल मोहतदून। ल तुब्लावुन्ना फ़ी अमवालेकुम व अनफ़ोसेकुम व ला तस्मउन्ना मिनल्लज़ीना ऊतुल् किताबा मिन क़ब्लेकुम। व मिनेल्लज़ीना अशरकू अज़न कसीरा। व इन तसबेरू व तत्तक़ू फ़ इन्ना ज़ालेका मिन अज़मिल उमूर।

अर्थात् हम तुम्हें भय, क्षुधा, बुभुक्षा तथा धन की हानि, प्राणों की हानि, प्रयत्न निष्फल हो जाने तथा सन्तान की मृत्यु हो जाने आदि यातनाओं से आज़मायेंगे और तुम्हारी परीक्षा लेंगे अर्थात् यह समस्त विपत्तियां अज्ञात की ओर से अथवा शत्रु के हाथ से तुम पर आयेंगी। किन्तु उन लोगों को शुभ सूचना है जो कष्टों के समय केवल यह कहते हैं कि हम परमेश्वर की धरोहर हैं और उसी की ओर जायेंगे। उन व्यक्तियों पर परमेश्वर की वदान्यता और उसकी अपार कृपा है। यही वे लोग हैं जो सन्मार्ग की चरम सीमा तक पहुंच गए हैं। उस ज्ञान को कोई बड़ाई और महानता नहीं दी जा सकती जो केवल बुद्धि और हृदय में भरा हुआ है। अपितु वास्तविक ज्ञान वह है जो बुद्धि से उतर कर सम्पूर्ण अवयवों को प्रभावित करे और उसकी शिष्टता, नम्रता का पूरा रंग उनपर चढ़ जाए तथा स्मरण शक्ति की स्मृतियां क्रियात्मक रूप में प्रदर्शित होने लगें।

अतः ज्ञान को परिपक्व करने और उसमें दृढ़ता लाकर उसे उन्नति देने का यह उत्कृष्ट साधन है कि अपने शरीर के प्रत्येक अवयव पर स्पष्टतया क्रियात्मक रूप में उसके चिन्ह अंकित कर लें और उस से अपने सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित कर लें। कोई साधारण ज्ञान भी बिना क्रियाशीलता के

अपनी पूर्णता और दक्षता को प्राप्त नहीं हो सकता। उदाहरणतया दीर्घकाल से हम जानते हैं कि रोटी पकाना अति साधारण तथा सरल है, उसमें कोई सूक्ष्म तत्त्व छिपा हुआ नहीं है। केवल इतना ही है कि आटा गून्ध कर तथा उससे एक रोटी के योग्य पेड़े बनावें और उनको दोनों हाथों के परस्पर मिलाने से चौड़े करके तवा पर डाल दें और इधर उधर घुमाकर और आग पर सेंक कर रख लें। रोटी पक जाएगी। यह तो केवल ज्ञानजन्य मौखिक जमा खर्च है किन्तु जब हम अभ्यास के बिना तथा क्रियात्मक रूप में सीखें बिना पकाने लगेंगे तो सर्वप्रथम हमारे सम्मुख यही कठिनाई आएगी कि आटे को उचित रूप से कितना गून्धे? प्रायः या तो वह पत्थर की भांति कठोर रहेगा अथवा पतला होकर गुलगुलों के योग्य हो जाएगा; और यदि मर २ कर और थक २ कर गून्ध भी लिया जाए तो रोटी की यह दशा होगी कि कुछ जलेगी और कुछ कच्ची रहेगी, मध्य में टिकिया रहेगी और कई तरफ से कान निकले हुए होंगे। यद्यपि पचास वर्ष तक हम रोटी पकती हुई देखते रहे तथापि क्रियात्मक क्षेत्र में बिना अभ्यास के यही अवस्था होगी जिसका उल्लेख उक्त पंक्तियों में हुआ है। अतः यह बात निर्णीत है कि केवल कोरे ज्ञान के अभिशाप से—जो जीवन के क्रियात्मक क्षेत्र और अभ्यास में नहीं आया—हम कई सेर आटे को नष्ट करेंगे।

अस्तु जब छोटी २ और साधारण सी बातों में हमारे ज्ञान की यह दशा है तो बड़ी २ बातों और बड़ी २ समस्याओं में क्रियाशीलता और अभ्यास की उपेक्षा करते हुये केवल कोरे ज्ञान और विद्या पर भरोसा क्योंकर रखें? अतएव परमेश्वर इन पवित्र कथनों में यह सिखाता है कि जो कष्ट मैं तुम पर डालता हूँ, वे भी ज्ञान और

अनुभव प्राप्ति के साधन हैं अर्थात् उससे तुम्हारा ज्ञान पूर्ण होता है।

पुनः आगे परमेश्वर का कथन है कि तुम्हारे धन और जन तथा प्राणों की हानि के द्वारा भी परीक्षा ली जाएगी। लोग तुम्हारे धन को लूट लेंगे। प्राणों की हानि भी तुम्हें पहुँचाई जाएगी, और तुम यहूदियों और ईसाइयों तथा मूर्ति पूजकों के द्वारा बहुत ही सताये जाओगे, वे तुम्हारे प्रति बहुत सी कष्ट-दायक बातें कहेंगे। अतः यदि तुम धैर्य धारण करोगे और अनुचित बातों और शास्त्र विरुद्ध क्रियाओं से बचोगे तो यह बड़े उत्साह और वीरता का कार्य होगा।

इन कथनों का तात्पर्य यह है कि शुभ तथा पुण्य ज्ञान वही होता है जो क्रियात्मक क्षेत्र में अपने जौहर दिखावे तथा निकृष्ट और अशुभ ज्ञान वह है जो केवल ज्ञान की सीमा तक रहे, उसे कभी क्रियात्मक क्षेत्र की ओर जाने की सामर्थ्य ही न मिले।

ज्ञात होना चाहिए कि जिस प्रकार धन व्यापार से बढ़ता और फलता फूलता है उसी प्रकार ज्ञान क्रियात्मक क्षेत्र में पहुंच कर अपने आध्यात्मिक पूर्णत्व और उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। अतः ज्ञान को उत्कृष्ट सीमा पर्यन्त ले जाने का बड़ा साधन क्रियाशीलता और सतत अभ्यास है। क्रियाशीलता से ज्ञान में प्रकाश उत्पन्न होता है। यह भी ज्ञात होना चाहिए कि ज्ञान का "हक़्क़ुलयक़ीन" अर्थात् प्रयोगात्मक और क्रियात्मक ज्ञान के स्तर तक पहुँचना क्या है? यही तो है कि क्रियात्मक रूप में उसका प्रत्येक कोना देखा जाए, प्रत्येक कोने का परीक्षण किया जाए। इस्लाम में ऐसा ही हुआ। जो कुछ परमेश्वर ने पवित्र क़ुरान के द्वारा लोगों को शिक्षा दी, उनको यह अवसर दिया कि क्रियात्मक रूप में उस ज्ञान को विकसित करें और उसकी ज्योति से उज्जवल होकर प्रकाश बरसावें।

हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन के दो युग

इसी लिये परमेश्वर ने हमारे पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग दुःखों और कष्टों तथा विपत्तियों का तथा दूसरा भाग सफलताओं विजयों का, ताकि विपत्तियों के समय उन आचरणों का प्रदर्शन हो जो कष्टों के समय व्यक्त होता है तथा विजय और अधिकार जमा लेने के समय में वे आचरण प्रगट हों जो विना शत्रु पर विजय और अधिकार प्राप्त कर लेने के प्रकट नहीं हो सकते। इस प्रकार हज़रत मुहम्मद साहिब के दोनों प्रकार के आचरण, दोनों समय और दोनों अवस्थायें आ जाने से पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो गए। उदाहरणतया वह विपत्तियों का समय जो हमारे परम प्रिय पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहिब पर तेरह वर्ष तक मक्का में रहा। उस समय की आप की जीवनी का अध्ययन करने से स्पष्टतया विदित होता है कि पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब ने वे आचरण जो विपत्तियों के समय एक पूर्ण सत्यव्रती अवतार को दिखलाने चाहिये—अर्थात् परमेश्वर पर भरोसा रखना, क्रन्दन और चीत्कार करने से सर्वथा दूर रहना, अपने कार्यक्रम में आलस्य न दिखाना, किसी के आतंक से आंतकित न होना आदि—इस प्रकार दिखला दिए जिस से अधर्मी नतमस्तक हो गये और ऐसी दृढ़ता और धैर्य को देखकर आपके अनुयायी बनकर इस्लाम धर्म में सम्मिलित हो गए और साक्षी दी कि जब तक किसी का परमेश्वर पर पूर्ण भरोसा न हो उस समय तक उस में इस प्रकार की दृढ़ता और ऐसी सहन-शीलता नहीं आ सकती। जब दूसरा समय आया—अर्थात् विजय और शक्ति तथा धन-दौलत का समय,

तो उस युग में भी पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब के महान् आचरण जैसे क्षमादान, मुक्तिदान, वीरता आदि ऐसे उत्कृष्ट रूप में प्रदर्शित हुए जिससे अधर्मियों के एक बहुत बड़े ग्रोह ने उन्हीं आचरणों को देख कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। लोमहर्षक कष्ट पहुँचाने वालों को क्षमा किया, नगर से निर्वासित करने वालों को भी क्षमा किया, उनके निर्धनों को धन दौलत से धनवान कर दिया तथा अपने बड़े २ शत्रुओं को अपने अधिकार में आ जाने पर पूर्णक्षमादान दिया। अतः अधिकांश व्यक्तियों ने आप के इन उत्कृष्ट महान आचरणों को देखकर साक्षी दी कि जब तक कोई परमेश्वर की ओर से सत्यव्रती अवतार रूप में न आए, यह सदाचार कदापि नहीं दिखला सकता। यही कारण है कि आपके शत्रुओं के दीर्घकालीन वैमनस्य तत्क्षण दूर हो गए। आपका सब से महान् आचरण जिसको आपने सिद्ध कर के दिखला दिया, वह यह था जिस का पवित्र क़ुरान में इन शब्दों में उल्लेख किया गया है :—

قُلْ اِنَّ صَلٰوتِیْ وَنُسُکِیْ وَمَحْیَایَ وَ

وَمَمَاتِیْ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ۔

क़ुल इन्ना सलाती व नोसोकी व मह्यायी व ममाती

लिल्लाहे रब्बिल् आलमीन।

अर्थात् उनको कह दो कि मेरी उपासनायें, मेरे बलिदान, मेरी भेंटें और मेरा मरना तथा मेरा जीवित रहना सभी कुछ परमेश्वर के लिए है अर्थात् उसका प्रताप प्रदर्शित करने के लिये तथा उसके प्रिय भक्तों को विश्राम और सुख देने के लिए है—ताकि मेरे मरनेसे उनको

जीवन मिले। इस स्थान पर जो परमेश्वर के रास्ते में और भक्तों के कल्याण के लिए मरने की बात बताई गई है, उस से कोई यह न समझे कि—कदाचित् इस विचार से कि किसी उत्तम ढंग से की गई आत्म हत्या दूसरों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी—आप ने नादानों अथवा पागलों की भांति आत्मघात करने का निश्चय कर लिया था। ऐसा कहने से मैं परमात्मा की शरण चाहता हूं। अपितु आप इन कमीनी बातों के कट्टर विरोधी थे। पवित्र क़ुरान ऐसी आत्म हत्या के अपराधी को दण्डनीय ठहराता है। जैसा कि कहा है :—

وَلَا تُلْقُوا بِأَيْدِيكُمْ إِلَى التَّهْلُكَةِ

वला तुलक़ू बे ऐदीकुम इलत्तहलुकते।

अर्थात् आत्म हत्या न करो और अपने हाथों से अपनी मृत्यु का कारण न बनो।

यह बात सर्व विदित है कि यदि मोहन के पेट में पीड़ा हो और राम उस पर दया करके अपना सर फोड़ना प्रारम्भ कर दे तो राम ने मोहन के लिए कोई भलाई नहीं की अपितु अपने मस्तक को बेवक़ूफ़ी की क्रिया से व्यर्थ ही फोड़ा। भलाई का काम तब होता जब कि राम, मोहन की सेवा में समुचित विधि से तत्पर रहता और उसके लिए उत्तम औषधियां जुटाता तथा वैद्यक सिद्धान्तानुसार उस की चिकित्सा और उपचार करता किन्तु उसके सर फोड़ने से मोहन को तो कोई लाभ न पहुंचा, व्यर्थ ही अपमे शरीर के एक उत्कृष्ट अवयव को कष्ट पहुंचाया।

अस्तु, इस पवित्र कथन का तात्पर्य यह है कि पैग़म्बरे इस्लाम

हज़रत मुहम्मद साहिब ने निश्चय ही वास्तविक और सच्चे अर्थों में सहानुभूति तथा परिश्रम करके मानव समाज के कल्याण और मुक्ति के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया था और प्रार्थना तथा प्रचार के द्वारा, कठिनाइयाँ और विपत्तियां सहन करके और प्रत्येक उचित एवं अनुकूल विधि द्वारा अपने प्राण तथा विश्राम को उसके लिए न्यौछावर कर दिया था। परमेश्वर का इस विषय में पवित्र कथन है :—

لَعَلَّكَ بَاخِعٌ نَّفْسَكَ أَلَّا يَكُونُوا

مُؤْمِنِينَ ۔ فَلَا تَذْهَبْ نَفْسُكَ عَلَيْهِمْ

حَسَرَاتٍ ۔

लअल्लका बाख़िउन्नफ़्सका अल्ला यकूनू मोऽमेमीन
फ़ला तज़हब नफ़्सका अलैहिम हसरातिन।

अर्थात् क्या तू इस दु:ख और कठोर परिश्रम में जो लोगों के लिए उठा रहा है अपने आप को मिटा डालेगा और क्या उन लोगों के लिये जो सत्यको स्वीकार नहीं करते तू उनके लिए चिन्ता कर के अपने प्राण देदेगा ? अत: जाति केलिए प्राण देने का उचित ढंग यही है कि जाति की भलाई केलिए प्राकृतिक विधान के उचित नियमों के अनुसार प्राणों को संकट में डाले और उचित प्रयत्न करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दे। यह कदापि उचित नहीं कि जाति को भयंकर परिस्थिति में अथवा उसे पथभ्रष्ट और भयानक दशा में देख कर अपने मस्तक

पर पत्थर मार ले अथवा दो तीन रत्ती संखिया खा कर इस संसार से चल बसे और फिर समझे कि हमने अपनी इस अनुचित क्रिया से जाति को मुक्ति दे दी । इसको पुरुषत्व नहीं कहा जा सकता । यह सर्वथा नपुंसकता है । अधीर लोगों का सदा से यही नियम है कि अपने को कठिनाई के सहन करने के योग्य न पाकर झट पट आत्महत्या की ओर दौड़ते हैं । इसके पश्चात् ऐसी आत्महत्या के कुछ भी अर्थ निकाले जाएं किन्तु यह क्रिया निस्सन्देह बुद्धि और बुद्धिमानों के लिए एक कलंक और निर्लज्जता है । स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति का धैर्य और शत्रु का मुकावला न करना विश्वसनीय नहीं है जिसे वदला लेने का अवसर ही न मिले । इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता कि यदि उसे प्रतिकार और प्रतिहिन्सा की अग्नि निकालने का अवसर मिलता तो क्या कुछ करता ? जब तक मनुष्य पर वह समय न आवे जो कठिनाईयों, विपत्तियों का समय हो तथा एक शक्तिवान होने एवं शासक और धनवान होने का समय हो । उस समय तक उसके वास्तविक आचरण कदापि प्रगट नहीं हो सकते ।

स्पष्ट है कि जो व्यक्ति केवल दुर्बलता, निर्धनता तथा अधीनता की अवस्था में लोगों की मारें खा खा कर प्राण दे दे और शक्ति सम्पन्नता, राज्य सत्ता तथा धन दौलत का समय न पावे उसके आचरण में से कुछ भी सिद्ध न होगा और यदि किसी युद्ध क्षेत्र में नहीं गया तो यह भी प्रमाणित न होगा कि वह वीर था अथवा कायर । उसके आचरण के विषय में कुछ नहीं कह सकते क्योंकि हम नहीं जानते कि यदि वह अपने शत्रु पर अधिकार कर लेता और उसे अधीन कर लेता तो उससे क्या व्यवहार करता और यदि वह धनाढ्य हो जाता तो उस धन को कोष में एकत्र करता अथवा जनता में बांट

देता। यदि वह किसी युद्ध क्षेत्र में जाता तो दुम दबा कर भाग जाता अथवा वीरों की भांति दो दो हाथ दिखाता किन्तु परमेश्वर की कृपा और अनुग्रह ने हमारे पावन पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब को उन आचरणों को प्रदर्शित करने का अवसर दिया। उदाहरण के रूप में दान-वीरता, विशाल हृदयता, क्षमा, न्याय अपने अपने अवसर पर अपने पूर्ण प्रताप से इस प्रकार प्रगट हुए कि उसकी उपमा संसार में खोजना व्यर्थ है। अपने दोनों समयों में—दुर्बलता और सबलता तथा निर्धनता श्री सम्पन्नता में—समस्त संसार को दिखला दिया कि वह पावन सत्ता कैसे महान और सर्वश्रेष्ट आचरणों की स्वामी थी! कोई ऐसा मानवीय उच्च आचरण नहीं जिसको प्रदर्शित करने के लिए परमेश्वर ने आपको अवसर न दिया हो। शूरवीरता, दानवीरता दृढ़ता, धैर्य, क्षमाशीलता, विशाल हृदयता तथा सहिष्णुता इत्यादि इत्यादि समस्त सदाचार इस प्रकार सिद्ध हो गए कि संसार में उसकी उपमा ढूंढना असम्भव है। परन्तु जिन्होंने अत्याचारों को चरमसीमा तक पहुँचा दिया और इस्लाम का समूल विनाश करना चाहा, परमात्मा ने उन्हें भी दण्ड दिए बिना नहीं छोड़ा क्यों कि उन्हें बिना दण्ड के छोड़ना मानो सत्यव्रत लोगों और साधु पुरुषों का उनके पैरों के नीचे कुचल कर नाश करना था।

पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद साहिब के युद्धों का यह उद्देश्य कदापि न था कि अकारण ही लोगों का रक्त बहाया जाए। वह अपने पूर्वजों के देश से निर्वासित किए गये थे तथा कतिपय मुसलमान स्त्रियां और पुरुष बेक़सूर अकारण ही शहीद (बलिदान) कर दिए गए। यही नहीं अपितु दुष्ट अपनी दुष्टता में बढ़ते जा रहे थे और इस्लाम की शिक्षा में बाधाएं डालते चले जा रहे थे अतएव परमेश्वर के रक्षाविधान

ने यह चाहा कि निरपराध पीड़ितों का इस प्रकार से नरसंहार होने से बचाया जाये और उन साधु पुरुषों की रक्षा की जाए। इस लिए जिन्हों ने तलवार उठाई उन्हीं के साथ मुकाबला हुआ। सारांश यह कि हत्या-कांड रचने वाले, नृशंस, हिंस्र वृत्ति रखने वालों की नृशंसता के प्रतिकार और निवारणार्थ रक्षात्मक युद्ध हुए जब कि नृशंस और अत्याचारी ग्रोह सत्य प्रिय और साधु स्वभाव मानव समाज को मिटाना चाहता था। उस अवस्था में यदि इस्लाम रक्षात्मक युद्ध न करता तो सहस्रों निरपराध बच्चे और स्त्रियां उनकी नृशंसता का आखेट बन जाते तथा इस्लाम का नाम ही मिट जाता।

स्मरण रहे कि विरोधियों का यह विचारना सर्वथा अन्यायपूर्ण हैकि ईशवाणी की दीक्षा ऐसी होनी चाहिए जिस के किसी भी स्थान और किसी भी अवसर पर शत्रुओं के मुकाबला की शिक्षा न हो और सदैव सहिष्णुता और दया के रूप में प्रेम और सहानुभूति प्रदर्शित होती रहे। ऐसे लोग अपने विचार में परमेश्वर की बड़ी प्रतिष्ठा कर रहे हैं कि जो उस के सम्पूर्ण गुणों और पूर्ण विशेषताओं को केवल नर्मी, दया, द्रवता तक ही सीमित रखते हैं। किन्तु इस विषय में ध्यानपूर्वक विचारने और चिन्तन करने वालों को भली प्रकार विदित हो सकता है कि यह लोग बड़ी ही मोटी और भारी भूल करते हैं।

परमेश्वर के प्राकृतिक विधान पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वह परमेश्वर संसार के लिए दया का सागर अवश्य है परन्तु वह दया सदैव और प्रत्येक दशा में नर्मी तथा द्रवता के रूप में अभिव्यक्त नहीं होती अपितु वह दया और कृपा की याचना के अनुरूप एक सुदक्ष वैद्य की न्याईं कभी मधुर रस हमें पिलाता है और कभी कटु औषधि भी देता है। उस की दया और वदान्यता

मानव समाज पर उसी रूप में अवतरित होती है जैसे हम में से एक व्यक्ति अपने सम्पूर्ण शरीर पर दयालु होता है।

इस बात में किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्ण शरीर से प्यार रखता है। यदि कोई हमारे शरीर का एक बाल उखाड़ना चाहे तो हम उस पर क्रोध करने लगते हैं। किन्तु ऐसा गुण होते हुए भी कि हमारा प्रेम—जो हम अपने शरीर से रखते हैं हमारे पूर्ण शरीर में विभक्त है यद्यपि शरीर के समस्त अंग हमें प्रिय हैं तथा हम किसी भी अंग की हानि नहीं चाहते परन्तु फिर भी यह बात प्रत्यक्ष है कि हम अपने समस्त अंगों से एक जैसा प्यार नहीं रखते। अपितु बड़े और महत्वपूर्ण प्रधान अंगों जिन पर बहुधा हमारी इच्छा और उद्देश्य आधारित हैं का प्यार हमारे हृदयों पर छाया रहता है। इसी प्रकार हमारी दृष्टि में एक अंग के प्यार की अपेक्षा बहुत से अंगों का प्यार अधिक होता है। अतः जब कभी हमारे लिये कोई ऐसा अवसर आ पड़ता है कि एक प्रधान महत्वपूर्ण अंग की रक्षा का आधार निकृष्ट और साधारण अंग के घायल करने अथवा काटने अथवा तोड़ने पर हो तो हमें प्राणों की रक्षा के लिये निस्संकोच उस अंग को आहत करने अथवा काटने के लिए उद्यत हो जाते हैं। यद्यपि उस समय हमारे हृदय में दुःख होता है कि हम अपने एक प्यारे अंग को घायल करते अथवा काटते हैं किन्तु इस विचार से कि इस अंग का दूषित प्रभाव किसी अन्य प्रधान और महत्वपूर्ण अंग को भी साथ ही नष्ट कर सकता है हम उसे काटने के लिए विवश हो जाते हैं।

अस्तु, इस उदाहरण से समझ लेना चाहिए कि परमेश्वर भी जब देखता है कि उस के सत्यप्रिय और भक्तजन झूठ और अनृत

सेवी, अधर्मी लोगों के हाथों मिट रहे हैं तथा कलह और अशान्ति बढ़ रही है तो साधु पुरुषों की रक्षा के लिये तथा अशान्ति और कलह को दूर करने के लिये उचित उपाय और साधन अपनाता है। चाहे वह साधन और उपाय अलौकिक हो अथवा लौकिक, आकाशीय हो अथवा पार्थिव। यह इस लिए कि वह जैसा कृपालू है वैसा ही नीतिज्ञ भी है।

ٱلْحَمْدُ لِلَّهِ رَبِّ ٱلْعَٰلَمِينَ

अल्हम्दो लिल्लाहे रब्बिल आलमीन

सर्व प्रकार की प्रशंसाएँ जो हो सकती हैं उस परमेश्वर के लिए हैं जो समस्त ब्रह्माण्डों का निर्माता और उनका पालनहार है।

॥ समाप्तम् ॥
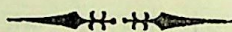
निष्कलङ्क अवतार

हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब

के

पवित्र-कथन

अवतारों और धर्म के संस्थापकों के विषय में शिक्षा :—

"यह सिद्धांत अति प्रिय, शान्ति-प्रद, प्रेम और मैत्री की नींव डालने वाला एवं सदाचार और चारित्रिक अवस्थाओं को बल देने वाला है कि हम उन समस्त अवतारों को सत्यवादी स्वीकार कर लें, जिन का इस जगत में प्रादुर्भाव हुआ। वे चाहे आर्यवर्त्त में प्रकट हुये हों अथवा ईरान में, चीन देश में उन का जन्म हुआ हो अथवा किसी अन्य देश में। किन्तु उस सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ने करोड़ों हृदयों में उन की प्रतिष्ठा अंकित कर दी तथा उन के धर्म की नींव को सुदृढ़ कर दिया।......यही सिद्धान्त है जो पवित्र क़ुरान ने हमें सिखलाया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार हम समस्त धर्मों के संस्थापकों को जिन का जीवन उक्त परिभाषा और विशेषत: के अन्तर्गत आ जाता है आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।"

(तोहफ़ा क़ैसरिया)

युगावतार हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब के जन्म का उद्देश्य :—

"परमेश्वर ने मुझे आदेश दिया है कि शांति पूर्वक, विनीत भाव और शीतल वाणी से उस सत्य सनातन और अपरिवर्तनशील परमेश्वर की ओर लोगों को आमन्त्रित करूं जो परम शुचि, परम-ज्ञानी, परम दयालु, एवं परम न्यायशील है।

इस अन्धकारमय युग की ज्योति मैं ही हूँ। जो व्यक्ति मेरा अनुसरण करता है वह उन गढ़ों और गह्वरों से बचाया जाएगा जो शैतान (राक्षसीय शक्ति) ने अन्धकार में चलने वालों के लिए तैयार किये हैं। मुझे उस ने इस लिए (अवतार बना कर संसार में) भेजा है ताकि मैं शान्ति पूर्वक संसार का सत्य परमेश्वर की ओर पथ-प्रदर्शन करूं तथा इस्लाम में सदाचार की परम स्थिति को पुनः स्थापित करूं। मुझे उस ने सत्य के जिज्ञासुओं की तृप्ति के लिए आसमानी निशान (अलौकिक चमत्कार) प्रदान किए हैं तथा अद्भुत चमत्कारों द्वारा मेरा समर्थन किया है। भविष्य की बातों तथा आगामी रहस्यों का उद्घाटन मेरे द्वारा किया है जो ईश्वरीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार सत्यवादी अवतार की पहचान के लिए वास्तविक मानदण्ड होता है। मुझे ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्म विद्या के ख़ज़ाने दिए गए हैं। अतएव उन आत्माओं ने मुझ से शत्रुता की जो सत्यता को नहीं चाहतीं किन्तु मैं ने चाहा कि जहां तक मुझ से हो सके मानव समाज से सहानुभूति करूं।

(मसीह हिन्दोस्तान में, पृष्ठ ११)

"वह कार्य जिस के लिए परमेश्वर ने मुझे नियुक्त किया है वह यह है कि परमेश्वर में तथा उस की सृष्टि के सम्बन्ध में जो कटु अन्तर

पड़ चुका है उसे दूर करके शुचि और पावन प्रेमके सम्बन्ध को स्थापित करूं तथा सत्य के प्रचार से धार्मिक युद्धों की समाप्ति कर के सुलह और शांति की नींव डालूं तथा वे धार्मिक सत्य जो संसार की दृष्टि से लुप्तप्राय हो गए हैं उन को पुनः प्रकट करूं। वह आध्यात्मिकता जो तामसिक अन्धकार के नीचे दब गई है उसे प्रकाश में लाऊं तथा परमेश्वर की शक्तियां जो मानव के भीतर प्रविष्ट हो कर ध्यान अथवा प्रार्थना के द्वारा प्रकट होती हैं केवल बातों के द्वारा नहीं अपितु कार्यरूप में उन की स्थिति दर्शाऊं और सब से अधिक यह कि परमेश्वर की वह शुद्ध और पावन तथा चमत्कारमय एकता जो हर प्रकार के द्वैतवाद की अशुद्धता से पवित्र है तथा जो अब नष्ट हो चुकी है उस का पुनः .कौम में सदैव हरा भरा रहने वाला पौधा लगाऊं। यह सब कुछ मेरे बल से नहीं अपितु उस परमेश्वर की शक्ति से होगा जो पृथ्वी और आकाश का (अर्थात् समस्त ब्रह्मांडों का और सर्वशक्तिमान) परमेश्वर है।"

(लेक्चर सियालकोट पृष्ठ ३४)

परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ो—

"क्या ही अभागा है वह व्यक्ति जिस को अब तक पता नहीं कि उसका एक ऐसा परमेश्वर है जिसका अधिकार सब पर है। हमारा स्वर्ग हमारा परमेश्वर है, हमारे समस्त सुखैश्वर्य हमारे परमेश्वर में हैं क्योंकि हमने उस को देखा तथा हर प्रकार का सौन्दर्य उस में पाया। यह धन लेने योग्य है चाहे प्राण देकर मिले। यह अमूल्य रत्न ख़रीदने के योग्य है चाहे समस्त व्यक्तित्व खोने से प्राप्त हो। हे वे लोगो जो अभी तक इस से वंचित हो ! इस अलौकिक स्रोत की ओर दौड़ो क्योंकि यह तुम्हारी प्यास बुझाएगा ! मैं क्या करूं और किस

प्रकार इस शुभ सन्देश को हृदयों में बिठाऊं तथा किस मृदंग के साथ बाज़ारों में घोषणा करूं कि तुम्हारा यह परमेश्वर है ताकि लोग सुन लें !! और कौन सा उपचार करूं ताकि सुनने के लिए लोगों के कान खुलें !!!

यदि तुम परमेश्वर के हो जाओगे तो निश्चय ही परमेश्वर तुम्हारा ही है । तुम निद्रा में होगे परन्तु परमेश्वर तुम्हारे लिए जागेगा । तुम शत्रु से असावधान होगे परन्तु परमेश्वर उसे देखेगा और उसकी योजनायें भंग करेगा ।"

पुनः आप का कथन है:—

"मैं तुम्हें उचित और नियत सीमा तक भौतिक साधनों के प्रयोग से नहीं रोकता अपितु इस बात से रोकता हूं कि तुम दूसरी जातियों की न्याईं केवल मात्र साधनों के ही दास बन जाओ तथा उस परमेश्वर को विस्मरण कर दो जो साधनों को भी जुटाता है । यदि तुम्हारे नेत्र हैं तो तुम्हें दृष्टिगत हो जाए कि ईश्वर ही ईश्वर है शेष सब कुछ हेय है । तुम उसकी इच्छा और आज्ञा के बिना न हाथ लम्बा कर सकते हो और न इकट्ठा कर सकते हो । एक अध्यात्महीन इस पर परिहास करेगा किन्तु यदि वह मर जाता तो इस हंसी में उस के लिये अच्छा होता । सावधान ! तुम दूसरी जातियों को देख कर उनकी रीस मत करो कि चूंकि उन्होंने सांसारिक योजनाओं में अत्यधिक उन्नति कर ली है, अतः हम भी उन्हीं के चरण चिन्हों पर चलें । सुनो और समझो कि वे उस परमेश्वर से विमुख और बहुत दूर और नितान्त अनभिज्ञ हैं जो तुम्हें अपनी ओर बुलाता है । उनका परमेश्वर क्या वस्तु है ! केवल एक पार्थिव मनुष्य !! अतः वे भूल भुलैयों में छोड़ दिए गए हैं । मैं तुम्हें संसार के कार्य व्यापार से नहीं रोकता किन्तु तुम उन लोगों के चरण चिन्हों पर मत चलो जिन्होंने सब कुछ संसार को ही समझ

रखा है। तुम्हारे प्रत्येक कार्य में चाहे वह सांसारिक हो अथवा धार्मिक परमेश्वर से सामर्थ्य याचना की प्रार्थना का क्रम चलता रहे। यह सामर्थ्य याचना केवल शुष्कवाणी मात्र से नहीं अपितु तुम्हारा यह पूर्ण विश्वास हो कि प्रत्येक सफलता और प्रत्येक वरदान उसी की ओर से आता है।

तुम सदाचारी उस समय बनोगे जबकि तुम ऐसे हो जाओ कि प्रत्येक कार्य के समय तथा प्रत्येक बाधा के उपस्थित होने पर कोई उपाय करने से पूर्व अपना द्वार बन्द करो और एकान्त में परमेश्वर के श्रीचरणों में गिर जाओ और कहो कि हमें यह बाधा और यह कठिनाई उपस्थित है तू हम पर दया करके कठिनाई दूर कर दे। तब परमेश्वर की विशेष अलौकिक शक्ति (रुहुलक़ुदस) तुम्हारी सहायता करेगी। गुप्त रूप से ईश्वरीय सहायता से तुम्हारे लिए कोई मार्ग खोला जाएगा। सो तुम अपने प्राणों पर दया करो।

जो लोग परमेश्वर से पूर्णतया नाता तोड़ चुके हैं तथा सांसारिक साधनों के दास बन गए हैं यहां तक कि सामर्थ्य याचना केलिए मुख से "इन्शा अल्लाह" (अर्थात् यदि परमेश्वर चाहेगा तो अमुक कार्य सम्पन्न हो जाएगा।) भी नहीं कहते, उनके अनुयायी मत बन जाओ। परमेश्वर तुम्हारे नेत्र खोले ताकि तुम्हें विदित हो कि तुम्हारा परमेश्वर तुम्हारी समस्त योजनाओं का शहतीर है। यदि शहतीर गिर जाये तो क्या कड़ियां छत पर स्थिर रह सकती हैं। नहीं, अपितु एक साथ गिरेंगी। यह भी सम्भव है कि उस से कईयों को प्राणो से भी हाथ धोना पड़े। इसी प्रकार तुम्हारी योजनायें परमेश्वर की सहायता के बिना स्थिर नहीं रह सकतीं। यदि तुम उस से सहायता नहीं मांगोगे और उससे सामर्थ्य याचना का अपना नियम नहीं बनाओगे तो तुम्हें कोई सफलता नहीं होगी।'

हमारे कुछ अन्य प्रकाशन

क्र० सं०	नाम पुस्तक	भाषा	मूल्य
१.	पवित्र क़ुरान	अंग्रेज़ी	१०—००
२.	अहमदियत अर्थात् हक़ीक़ी इस्लाम	,,	५—००
३.	हज़रत मुहम्मद साहिब का पवित्र जीवन	,,	३—००
४.	पवित्र क़ुरान की विशेषतायें ...	,,	१—००
५.	नया युग नवीन योजना	,,	१—५०
६.	हज़रत मसीह की क़ब्र	,,	०—५०
७.	इस्लाम की आर्थिक योजना ...	,,	१—७५
८.	इस्लाम धर्म की दर्शन भूमि ...	,,	२—००
९.	पवित्र क़ुरान की भूमिका ...	,,	७—००
१०.	,, ,, का प्रथम पारा ...	,,	१—००
११.	इस्लाम और कम्यूनिज्म	,,	०—२५
१२.	इस्लाम में आर्थिक और सामाजिक कठिनाईयों का समाधान	,,	०—३१
१३.	मैत्री सन्देश	,,	०—३१
१४.	मैं इस्लाम धर्म को क्यों मानता हूं ...	,,	०—१३
१५.	अहमदियत का आन्दोलन	,,	०—५०
१६.	युगावतार हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब की संक्षिप्त जीवनी... ...	,,	०—३१
१७.	समय की याचना : इस्लाम ...	,,	०—२५
१८.	हज़रत मुहम्मद साहिब का पवित्र जीवन	हिन्दी	४—००
१९.	मैत्री सन्देश	,,	०—५०

क्र० सं०	नाम पुस्तक	भाषा	मूल्य
२०.	आकाशीय सन्देश	,,	०—५०
२१.	मैं इस्लाम धर्म का क्यों अनुगामी हूं ...	,,	०—१३
२२.	आवागमन का सिद्धान्त बुद्धि की तुला पर	,,	०—२०
२३.	कृष्ण अवतार का सन्देश हिन्दू भ्राताओं के नाम	,,	०—२०
२४.	आकाशीय भेंट	,,	०—०५
२५.	वही हमारा कृष्ण	,,	०—०५
२६.	सिख मुस्लिम इत्तेहाद का गुलदस्ता ...	उर्दू	२—००
२७.	अहमदियत का पैग़ाम	,,	०--५०
२८.	महामद ख़ातमन्नबीईन	,,	०—५०
२९.	तहरीके अहमदियत भारत वासियों की दृष्टि में	,,	०—५०
३०.	ख़त्मे नबुव्वुत की हक़ीक़त... ...	,,	०—७५
३१.	इस्लामी उसूल की फ़िलास्फ़ी ...	,,	१—५०
३२.	किश्ती नूह	,,	०—६२
३३.	इल्लाम का इक़्तेसादी निज़ाम ...	उर्दू	१—००
३४.	निज़ामे नौ	,,	१—००
३५.	अहमदी जमाअत : अल्लामा न्याज़ फ़तेहपुरी की नज़र में	,,	०—२५
३६.	चौणवें फूल	पंजाबी	२—००
३७.	नमाज़	,,	०—३७
३८.	जमाअत अहमदिया के संक्षिप्त हालात	,,	०—५ड
३९.	मैं इस्लाम को क्यों मानता हूँ ...	,,	०—१३
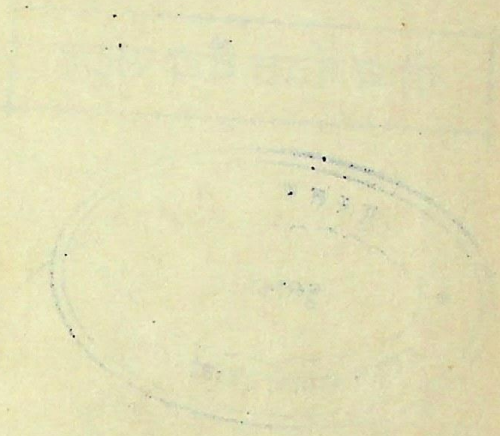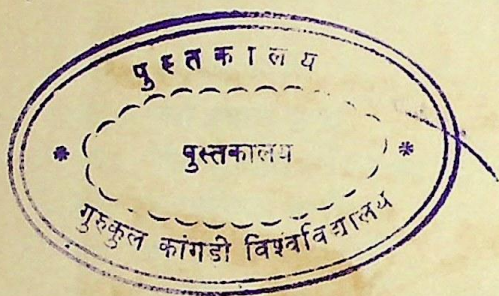
इस्लाम और अहमदियत की खोज एवं तत्सम्बन्धी हर प्रकार के साहित्य के विषय में निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करें।

नाज़िर दावतो तब्लीग़

(अध्यक्ष प्रचार विभाग)

क़ादियान

ज़िला—गुरदासपुर (पन्जाब)